* श्रीहरिः *

सामवेदसंहिता

सायणाचार्यकृत संस्कृतभाष्य

और तदनुकूल

सान्वय भाषानुवाद सहित

मुरादाबादनिवासि भारद्वाजगोत्र पण्डित भोलानाथात्मज

सनातनधर्मपताका—सम्पादक

ऋषिकुमार रामस्वरूप शर्मा गौड़

द्वारा सम्पादित.



SAMVED SAMHITA

With-

SAYAN BHASHYA

&

HINDI TRANSLATION

Edited Printed & Published

by

RAMSWARUP SHARMA

at

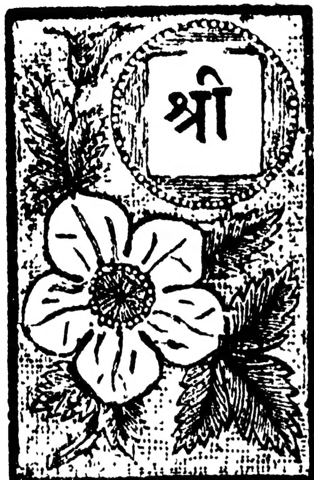
THE SANATANDHARM PRESS

MORADABAD.

1917

॥ श्रीहरिः

भूमिका



सनातनधर्मके प्रेमी सज्जनों! लीजिये यह आपका सर्वस्वधन, आपके भवनको पवित्र करनेवाली और संसारभरके कल्याणकी साधन श्रीसामवेद संहिता आपके पवित्र करकमलोंमें सादर समर्पित है, जिन सनातनधर्मके प्रेमी ग्राहक महानुभावोंके हाथमें यह अलभ्यरत्न पहुँचेगा, उनमेंसे कितने ही लोगोंको यह जिज्ञासा होना भी सम्भव है, कि—इस अमूल्यरत्नके द्वारा हम अपना, क्या और किसप्रकार कल्याणसाधन करैं, प्रियसज्जनों! एक समय वह था, कि—हमारे पूर्वपुरुषा इस वेदशास्त्रको धारण करके संसार संग्राममें पूर्ण विजय पातेहुए सब प्रकारसे सफलमनोरथ हुआ करते थे, पुत्रैषणा, धनैषणा और लोकैषणाको सफल करनेमें वह सदा सिद्धहस्त रहते थे, इसीकारण उनको अवर्षा, सन्तानहीनता आदि कोई भी कष्टदशा शोक नहीं देती थी इस ही वेदके अनुष्ठानसे संसार भरके अजेय और जगद्गुरु वनेहुए थे, परन्तु आज उस ही वेदके होतेहुए उन ही महर्षियोंके वंशधर ऐसा कौनसा दुःख शेष है जिसको नहीं भोगरहे हैं? क्या आजकल के अग्रणी बननेवाले द्विज कभी इस वातके तत्त्वकी खोज करते हैं, आजकलका जगत् अन्तःसार शून्य होगया है, बाहरी दृष्टि है, सो भी नव प्रकाशसे ऐसी चौंधागई है, कि—उसके आगे तिलमिले आकर वस्तुका स्वरूप कुछका कुछ दीखनेलगा है, तभी तो वेदके माननेवालोंमें बहुतसे हमारे भाई वेदके अन्तःसारको वेदके अलौकिक तत्त्वको भूलकर उसको आजकलके प्रकृति प्रेमी वैज्ञानिकोंके अनुभवका छोटा भाई वनाना चाहते हैं, अर्थात् मनुष्यके विचारस्फुरणरूप रेल तार आदिका स्मारकमात्र बना वेदके अलौकिक भावको अज्ञानकी गुफामें को ढकेलरहे हैं, संसारमें अहङ्कार भी वह वस्तु है कि—उसके प्रतापसे प्राणी हिरण्यकशिपुके भाई बनतेहुए ईश्वरीय इतिकर्त्तव्यातामें भी दोषदृष्टि रखकर वेदोंके मन्त्रोंका भी मनमाना अर्थ कर भारतके द्विजसमाजको अवनति-

सागरकी अथाह तलीमें डुबोना चाहते हैं, पहिले महापुरुष शास्त्रोक्त विधिसे गर्भाधान कर स्वच्छ रजवीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तानको वैदिक संस्कारोंसे सम्मार्जित करतेहुए वैदिक अनुष्ठानपूर्वक ,वेदाध्ययन कराते थे, वह वेदपाठी योगसाधनासे दिव्य दृष्टि पाकर वेदमंत्रोंका उच्चारण करतेहुए भारतीय प्रजाकी हरएक मनःकामनाको पूर्ण किया करते थे, परन्तु अब भारतका वह उदयकाल नहीं है, भारतके मन्त्रपूत रुधिरकी जो रेड़ लगरही है, उसको स्मरण करनेसे भी रोमाञ्च खड़े होते हैं, ऐसे मलिनांतःकरणवाले वेदभाष्य या वैदिक अनुष्ठान करने बैठें तो क्या उससे कुछ लाभ होनेकी आशा कीजा-सकती है? कहां तो दिव्यदृष्टिवाले महापुरुष भाष्य और अनुष्ठान करके वेदका महत्त्व दिखा जगत्को चमत्कृत करते थे और कहां अब हियेकी दिव्यदृष्टिसे शून्य और नवीन प्रकाशके कारण बाहरकी शास्त्रीय दृष्टिको तिलांजलि देनेवाले विषमदृष्टि स्वार्थान्ध अपनेको वेदभाष्यका कर्त्ता वा वैदिकतत्त्वका आविष्कर्त्ता कहनेलगे, यदि उनको वेदका शत्रु द्विजसमाजका शत्रु और प्रलापी कहाजाय तो कुछ अनुचित नहीं है, हमारे छोटेसे विचारके अनुसार हमारे पूर्वपुरुषा वेदको जिस दृष्टिसे देखते थे, आजकल उस दृष्टिसे देखनेवालोंका अभावसा हो गया, आजकलके द्विजोंका यह कहना, कि—हम वेदको मानते हैं, हम वैदिक हैं, और हमारी वेद पर श्रद्धा है, यह केवल वाणीका विनोद मात्र है, वेद कोई कहानी या इञ्जीनियरीकी पुस्तक नहीं है, कि—जिसको बाँचकर आप मनोविनोद या कोई शिल्पविज्ञानकी प्राप्ति करके उसके माननेवाले बनबैठें ! वेद अनुष्ठान-ग्रन्थ है, प्यारे सनातनधर्मियो ! वेदका अर्थमात्र बांचलेनेसे तुम वेदके प्रेमी वा वैदिक नहीं होसकते, यदि सच्चा वैदिक बनना है तो पश्चिमकी ओरसे पूर्वको मुख करो, यदि सब नहीं तो प्रतिसैंकडा दश द्विजकुमार वेदोद्धारकी भारतोद्धारकी ओर अपने मनुष्यजन्मको सार्थक करनेकी सुधलें यज्ञोपवीतको केवल सामाजिक रूढ़ि ही न समझें, किन्तु यज्ञोपवीत धारणके साथ २ समझलें कि—हमने अपने शरीरको वैदिक अनुष्ठानमें दीक्षित करदिया, इस शरीरको सदा वेदसेवामें लगावेंगे, प्यारे मित्रो ! यह वेदके मन्त्र और २ ग्रन्थोंमें लिखी अक्षरोंकी पंक्तियोंकी समान नहीं हैं, इनमें वह कल्याणमयी किरणें गुथीहुई हैं, जो तपस्वियोंकी साधनासे उद्भूत होकर संसारभरका दुःखान्धकार दूर करती हैं, और ग्रन्थोंका केवल अर्थ ही कार्यसाधक होता है परन्तु वेदके सनातन क्रमबद्ध अक्षर ही यथावत् उच्चारित होने पर इष्टसिद्धि देते हैं

इसीकारण वेदके यथावत् उच्चारणके लिये उदात्त अनुदात्त आदि स्वरोंका बन्धन रक्खा है, वह स्वर अर्थानुगत होते हैं अथवा वेदका अर्थ ही स्वरानुगत होता है, इसलिये वेदका अर्थ स्वरमर्यादाके अनुसार ही ठीक होसकता है और वही सायण,उव्वट, महीधर आदि ने लिखा है । अतः सायणाचार्यकृत संस्कृत भाष्य और उसके अनुसार ही यह अनुवाद लिख दियागया है,इसमें मेरी अपनी कल्पना कुछ नहीं है,देखाजारहा है कि-आजकल कितनेही अभिमानियोंको अपनी योग्यताका विचार विना किये ही वेदभाष्यकार बननेकी सनक सवार हुई है, यह रोग सनातनधर्म और आर्यसमाज दोनों दलोंमें है, आर्यसमाजके प्रसिद्ध नेता परलोकगत स्वामी तुलसीरामजी इस सायणभाष्य की ही कुछएक काट छाँट करके सामवेदभाष्यकार बनगये, इस बातको इस पुस्तकके पाठक अनायास ही समझसकेंगे, वेदका भाष्य रचनेके लिये साङ्गोपाङ्ग वैदिक भण्डारके कितना आयत्त होनेकी आवश्यकता है, उसका पता आजकलके प्रसिद्धिलोलुप पण्डितोंको लगना कठिन है, मेरा लिखा यह भाषार्थ भाष्य नहीं है किन्तु सायण भाष्यके आधार पर अनुवादमात्र है ।

आशा है इस ग्रंथरत्नको पाकर हमारे धार्मिक पाठकोंको सन्तोष होगा

ज्येष्ठ कृष्णा ११ }
विक्रमाब्द १९७४ }

निवेदक—(ऋ० कु०) प० रामस्वरूप शर्मा
मुरादाबाद.



॥ ओ३म् ॥

सामवेदसंहितायाः

छन्द आर्चिकस्य आग्नेयं पर्व.

सायणभाष्येण भाषानुवादेन च सहितम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

प्रथमे खण्डे अग्न आयाहीत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा गायत्री आग्नेयी । सैषा प्रथमा । हे अग्ने अङ्गनादिगुणविशिष्ट ! त्वम् आयाहि अस्मद्यज्ञं प्रत्यागच्छ । किमर्थम् ? वीतये हविषां चरुपुरोडाशादीनां भक्षणाय । कीदृशः सन् ? गृणानः अस्माभिः स्तूयमानः (व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः) पुनश्च किमर्थम् ? हव्यदातये देवेभ्यो हविः प्रदानाय । अपरञ्च होता देवानामाह्वाता सन् बर्हिषि आस्तीर्णे दर्भे निषत्सि निषीद (सदेश्छान्दसः शपो लुक्) ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वीतये) हविको भक्षण करनेके निमित्त (गृणानः) हमारे स्तुति किये हुए (आयाहि) आइये और (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचाने के निमित्त (होता) उनको बुलाने वाले बनकर (बर्हिषि) बिछेहुए कुशासन पर (निषत्सि) विराजिये १

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वमग्ने यज्ञानाᳬ होता विश्वेषाᳬ हितः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

त्वमग्ने इत्यस्या ऋष्याद्याः पूर्ववत् ।।सैषा द्वितीया । हे अग्ने त्वं विश्वेषां यज्ञानाम्, अग्निष्टोमात्यग्निष्टोमादीनां सम्बन्धी होता होम-निष्पादनशीलः (जुहोतेस्ताच्छीलिकस्तृन्) यद्वा यज्ञानां यष्टव्यानां

'विश्वेषां देवानां होता आह्वाता । एवंभूतस्त्वं मानुषे मनोरपत्यभूते यजमानलक्षणे देवेभिः देवैः (छान्दसो भिस ऐसभावः) देवनशीलै-र्ऋत्विग्भिः हितः निहितः गार्हपत्यादिरूपे संस्थापितो भवसि । यद्वा देवै-रेवेन्द्रादिभिरुक्तरूपः सन् यज्ञानां निष्पादनाय यजमाने नियुक्तोऽसि २

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (विश्वेषाम्) सकल (यज्ञा-नाम्) यज्ञोंके (होता) होमको सिद्ध करनेवाले । अथवा (यज्ञानाम्) यजन के योग्य (विश्वेषाम्) देवताओंके (होता) आह्वान करने वाले तुम (मानुषे) मनुष्य यजमानके विषयमें (देवेभिः) स्तुति करनेवाले ऋत्विजों करके (हितः) गार्हपत्य आदिरूपसे स्थापन किये जाते हो ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

अग्निं दूतमित्येषा कण्वपुत्रेण मेधातिथिना दृष्टा, छन्दोदैवते पूर्व-वत् । सैषा तृतीया । दूतम् देवानां दौत्ये विनियुक्तम् अग्निं देवम् वृणीमहे स्तुतिभिर्हविर्भिः सम्भजामहे [अस्य च दूतत्वं तैत्तिरीयके समाम्नातम्-"अग्निर्वै देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणाम्" इति] कथंभूतम् ? होतारं साधुदेवानामाह्वातारम् [ह्वयतेः साधुकारिणि तृन् बहुलं छन्दसि (६, १, ३४) इति सम्प्रसारणम्] विश्ववेदसं विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः तम् [विदेरसुन्] यद्वा, वेद इति धननाम, विश्वं सर्वं वेदो धनं यस्य,तम्,[बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६,२,१०६), इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्]अस्य प्रवर्त्तमानस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् निष्पा-दकत्वेन शोभनकर्माणम्, अथवा क्रतुरिति प्रज्ञा नाम शोभनप्रज्ञं वा । तं त्वां वृणीमहे इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ३ ॥

(होतारम्) देवताओंका भलेप्रकार आह्वान करनेवाले (विश्व-वेदसम्) सकल के ज्ञाता अथवा सकल धनके स्वामी (अस्य, यज्ञ-स्य, सुक्रतुम्) इस वर्त्तमान यज्ञको सुसिद्ध करनेवाले (दूतम्) देवताओंका दूतकर्म करनेवाले (अग्निम्) अग्निदेवको (वृणीमहे) भले प्रकार भजते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।

१ २ ३ १ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥

अग्निर्वृत्राणीत्येषा भारद्वाजेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा चतुर्थी । द्रविणस्युः द्रविणं धनं स्तोतॄणामिच्छन् छन्दसि परेच्छायां क्यच् । प्रातिपदिकेभ्यः इच्छायां क्यचि सुगागमः, यद्वा । हविर्लक्षणं धनं तदात्मन इच्छन्नग्निः विपन्यया पनतिः स्तुत्यर्थः अस्माभिः क्रियमाणया स्तुत्या स्तूयमानः सन् वृत्राणि बलेन जगतामावरकाणि रक्षःप्रभृतीनि, तमांसि वा जंघनत् भृशं हन्तु [हन्तेर्यङ्लुगन्ताल्लिङर्थे लेट् (३,४,७)] कीदृशोऽग्निः ? समिद्धः समिदादिभिर्हविर्भिः सम्यग्दीपितः, अतएव शुक्रः दीप्यमानः । आहुतः हविर्भिराहुतः ॥ ४ ॥

(द्रविणस्युः) अपने उपासकोंको धन देना चाहनेवाला वा अपने लिये हविरूप धनकी इच्छा वाला (समिद्धः) समिधा आदिसे प्रज्वलित किया हुआ (शुक्रः) प्रदीप्त (आहुतः) आहुतियें दिया हुआ (अग्निः) अग्नि देवता (विपन्यया) हमारी की हुई स्तुतियों से (वृत्राणि) बलसे जगत् को कष्ट देनेवाले राक्षसादिकों को वा बलात्कारसे जगत्को आच्छादित करनेवाले अज्ञानान्धकारों को (जंघनत्) नष्ट करै ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
प्रेष्ठं वो अतिथिꣳ स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
२ ३ २ ३ १ २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

प्रेष्ठं व इत्येषा उशनसा दृष्टा छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा पञ्चमी । हे अग्ने वः त्वां पूजार्थं बहुवचनं स्तुषे स्तौमि, अहमुशना इति शेषः । कीदृशम् ? प्रेष्ठं स्तोतॄणामस्माकं धनदानेन प्रियतमम् । अतिथिं सर्वैरतिथिवत् पूज्यम् । यद्वा अत सातत्यगमने । ऋतन्यञ्जीत्यादिना अतेरिथिन् सततं देवानां हविः प्रदातुं गच्छन्तम् । मित्रमिव सखायमिव प्रियं स्तोतुः प्रीणनकरम् । रथं न रथमिव वेद्यं वेदो धनं धनहितं लाभहेतुं, यथा रथेन धनं लभते तद्वत् स्तोतारोऽनेन धनं लभन्ते, तादृशधनलाभकारणम् । अग्ने इति छन्दोगानाम्, अग्निम् इति बह्वृचानां पाठः ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (प्रेष्ठम्) स्तुति करनेवालों को धनदाता होने से परमप्रिय (अतिथिम्) अतिथिकी तुल्य सबके पूज्य (मित्र-

मिव प्रियम्) सखाकी समान प्रसन्नता देनेवाले (रथं न वेद्यम्) रथकी समान लाभके हेतु अर्थात् जैसे रथसे धन मिलता है तैसे स्तुतिकर्त्ता अग्निसे धन पाते हैं ऐसे (वः) पूज्य आपको (स्तुषे) स्तुतिसे प्रसन्नता करता हूँ ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।
३ २ ३ १ २र
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

त्वं न इत्येषा सुदीतिपुरुमीढाभ्यां तयोरन्यतरेण वा दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा षष्ठी । हे अग्ने त्वं न अस्मान् महोभिः पूजाभिः महद्भिर्धनैर्वा पाहि रक्ष । कस्याः पाहि ? विश्वस्याः बहुविधात् अरातेः अदातुः सकाशात् अदानाद्वा पाहि । त्वमेव महद्धनं दत्त्वा अदातुरदानाद्वा सकाशाद्रक्षेत्यर्थः । यद्वा महोभिः युक्तस्त्वमिति योज्यम् । उत अपि च । द्विषः द्वेष्टुः मर्त्यस्य मर्त्यात् सकाशात् पाहि अस्मभ्यं बलं दत्त्वेति भावः । अथवा मर्त्यस्य द्विषो द्वेषाद्रक्षेति सम्बन्धः । अरातेरित्यस्य अदानादिति पक्षे तत्रापि मर्त्यस्यादानादिति सम्बन्धनीयम् ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (नः) हमें (महोभिः) बहुतसा धन देकर (अरातेः) धन न देनेवालों से (उत) और बल देकर (द्विषः) द्वेष करनेवाले (मर्त्यस्य) मनुष्यों से (पाहि) रक्षा करो ॥ ६ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥

एह्यूष्वित्येषा भरद्वाजेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा सप्तमी । हे अग्ने एहि आगच्छ ते तुभ्यं त्वदर्थं गिरः स्तुतीः इत्था इत्थमनेन प्रकारेण सु सुष्ठु ब्रवाणि इत्याशास्यते । ताः स्तुतीः शृणु इत्यर्थः । उ इत्येताः इतराः असुरैः कृताः, स्तुतीः शृणु इति शेषः । [तथाच ब्राह्मणम्—अग्निरित्थेतरा गिर इत्यसुर्य्याह वा इतरा गिरः इति] अपिच । आगतस्त्वं एभिः एतैः इन्दुभिः सोमैः वर्द्धास वर्द्धस्व ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (एहि) आइये (ते) तुम्हारे लिये (गिरः)

स्तुतियें (इत्था) इसप्रकार (सु-प्रवाणि) भले प्रकार उच्चारण करूँगा उनको सुनिये, (उ) और (इतराः) असुरोंकी स्तुतियोंको सुनिये । तथा आये हुए आप (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमरसोंसे (वर्धास) वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥

आ ते वत्स इत्येषा काण्वगोत्रेण वत्सेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा अष्टमी । वत्सः एतन्नामा ऋषिः ते तव मनः परमाच्चित् उत्कृष्टादपि सधस्थात् सहस्थानात् द्युलोकात् आ यमत् आ यमयति । केन साधनेन? गिरा स्तुत्या । शिष्टं प्रत्यक्षकृतम् । हेअग्ने त्वां कामये, त्वदीयं मनो मय्येव नियच्छामीति प्रार्थये । "त्वाङ् कामये" इति छन्दोगाः ।"त्वाम् कामये" इति बह्वृचाः, सुबन्तत्वादवगृह्य पठन्ति॥८॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वत्सः) वत्स (गिरा) स्तुति से (ते) तुम्हारे (मनः) मनको (परमाच्चित्) परमोत्तम भी (सधस्थात्) द्युलोक धामसे (आयमयत्) आकर्षण करता हुआ (त्वाम्) तुम्हें (कामये) चाहता हूँ अर्थात् आपका मन मेरी ओरको लगै यह प्रार्थना करता हूँ ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
३ १ २र ३ १ २
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

त्वामग्न इत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा नवमी । हे अग्ने अथर्वा एतत्संज्ञ ऋषिः त्वां पुष्करादधि पुष्करे पुष्करपर्णे निरमन्थत अरण्योः सकाशादजनयत् । कीदृशात् पुष्करात् ? मूर्ध्नः मूर्द्धवद्धारकात् । विश्वस्य सर्वस्य जगतः वाघतः वाहकात् । पुष्करपर्णे हि प्रजापतिर्भूमिमप्रथयत् तत् पुष्करपर्णेऽप्रथयत् इति श्रुतेः । भूमिश्च सर्वजगत आधारभूतेति पुष्करपर्णस्य सर्वजगद्धारकत्वम् । अत्र पुष्करशब्देन पुष्करपर्णमभिधीयते, इत्येतच्च तैत्तिरीयके बिस्पष्टमाम्नातम्, त्वामग्ने पुष्करादधीत्याह पुष्करपर्णे ह्येनमुपश्रुतमविन्दत, इति ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अथर्वा) अथर्वा (त्वाम्) तुमको (मूर्ध्नः) मूर्धाकी समान धारण करनेवाले (विश्वस्य वाघतः) सकल जगत् के धारणकर्त्ता (पुष्करात् अधि) कमलके पत्तेमें (निरमन्थत) अरणियोंसे मथकर उत्पन्न करता हुआ ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे ।
३ १ २र ३ २
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

सैषा दशमी । पूर्वोक्तासु ऋक्षु बह्वृचानामनुक्रमणिकाग्रन्थं पर्यालोच्य तत्रोक्ता ऋषिच्छन्दोदेवता योजिताः । एवमुत्तरास्वपि योजनीयाः । अग्ने विवस्वदित्येषा तु बह्वृचैर्नाम्नाता, तथाप्यस्याः छन्दोदेवते पूर्ववद्विस्पष्टे, ऋषिस्तु वामदेव इति ग्रन्थान्तरादवगतः ॥ हे अग्ने त्वम् अस्मभ्यम् अस्माकं महे ऊतये महते रक्षणाय, अव रक्षणे इति धातोः ऊतियूतिजूतीति सूत्रेण निपातितं रूपम्, विवस्वत् स्वर्गादिलोकेषु विशेषेण निवासस्य हेतुभूतमिदं कर्म आभर सम्पादय । हृग्रहोर्भश्छन्दसीति भत्वम् । हि यस्मात् त्वं नः अस्माकं दृशे दर्शनार्थं देवः द्योतमानः असि । इन्द्रादयो नास्माभिर्दृश्यन्ते, त्वं तु गार्हपत्यादिदेशेऽतिद्योतमानः प्रत्यक्षेण दृश्यते तस्मात्त्वां विशेषेण प्रार्थयामहे इत्यभिप्रायः ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (अस्मभ्यम्) हमारी (महे) बड़ी (ऊतये) रक्षाके लिये (विवस्वत्) स्वर्गादि लोकोंमें विशेषरूपसे निवास के हेतु इस कर्म को (आभर) सिद्ध करो (हि) क्योंकि (नः) हमको (दृशे) दर्शन देने के निमित्त (देवः) प्रकाशवान् (असि) हो ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

---

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
१ २ ३ १ २
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे । सेयं प्रथमा । आयुङ्क्ष्वाहिर्ऋषिः । हे अग्ने ! देव ! ते तुभ्यं नमो गृणन्ति नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति । किमर्थम् ?

ओजसे बलाय । के ? कृष्टयः मनुष्याः, यजमानाः अतोऽहमपि गृणामी-त्यर्थः । त्वं च अमैः बलैः । अमित्रं शत्रुम् । अर्दय नाशय ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (कृष्टयः) मनुष्य (ओजसे) बलके निमित्त (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार शब्दको (गृणन्ति) उच्चारण करते हैं । इसकारण मैं भी तुम्हें नमस्कार करता हूं (अमैः) बलोंसे (अमित्रम्) शत्रुको (अर्दय) नष्ट करो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दूतं वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम् ।
१ २ ३ २
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥

सैषा द्वितीया । वामदेव ऋषिः । हे अग्ने ! विश्ववेदसं विश्वं समस्तं वेदो धनं यस्यासौ विश्ववेदाः तम् सर्वविदं वा । हव्यवाहं देवेभ्यो हविषां वोढारम् । अमर्त्यं अमरणधर्माणम् । यजिष्ठं अतिशयेन यष्टारम् । दूतम् देवानाम् वः त्वाम् । गिरा स्तुतिरूपया वाचा । ऋञ्जसे यजमानोऽहं प्रसाधयामि वर्द्धयामीत्यर्थः । ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा इति यास्कः ॥ २ ॥

हे अग्निदेव (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (हव्यवाहम्) हवियों को देवताओंके समीप पहुँचानेवाले (अमर्त्यम्) अमर (यजिष्ठम्) यज्ञ के परम साधन (दूतम्) देवताओंके दूत (वः) तुम्हें (गिरा) स्तुतिकी वाणीसे (ऋञ्जसे) वृद्धि को प्राप्त करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
२ १ २र
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥

सैषा तृतीया । प्रयोग ऋषिः । हे अग्ने ! हविष्कृतः यजमानार्थम् । गिरः स्तुतयः जामयः स्वसार इव । देदिशतीः तव गुणान् दिशन्त्यः । त्वा त्वाम् उपतिष्ठन्ते । वायोः अनीके समीपे त्वां समेधयन्त्यः । अस्थिरन् अतिष्ठंश्च ॥ ३ ॥

हे अग्निदेव ! (हविष्कृतः) यजमानकी (गिरः) स्तुतियें (जामयः) बहिनों की समान (देदिशतीः) गुणकीर्त्तन करती हुई (त्वा, उप) तुम्हारे समीप उपस्थित होती हैं (वायोः, अनीके) वायुके समीप (अस्थिरन्) तुम्हें प्रज्वलित करती हुई स्थित होती हैं ॥ ३ ॥

१२ ३१२ ३ १२ ३२ ३२
उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
२३ १२३ १२
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥

सैषा चतुर्थी । मधुच्छन्द ऋषिः । हे अग्ने वयम् अनुष्ठातारः, दिवे दिवे प्रतिदिनं, दोषावस्तः रात्रावहनि च, धिया बुद्ध्या, नमो भरन्तः नमस्कारं सम्पादयन्तः, उप समीपे त्वा एमसि त्वामागच्छामः । उप शब्दस्य निपात-स्वरः । त्वामौ द्वितीयायाः [८, १, २३] इति युष्मच्छब्दस्यानुदात्तस्त्वादेशः।दोषाशब्दो रात्रिवाची। वस्तः इत्यहर्वाची। द्वन्द्वसमासे कार्त्तकौजयादित्वादाद्युदात्तः । सावेकाच इति धियो विभक्तिरुदात्ता । नमः इति निपातः । यद्वा, नब्विषयस्येत्याद्युदात्तः । भरन्त इत्यत्र शपः पित्त्वात् शतुर्लसार्वधातुकत्वाच्च अनुदात्तत्वे सति धातुस्वरः शिष्यते । एमसीति इदन्तोमसि इत्यनेन इकारः, तिङः इति निघातः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वयम्) हम अनुष्ठान करनेवाले (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रातमें और दिनमें (धिया) बुद्धिसे (नमः भरन्तः) नमस्कार करते हुए (त्वा, उप) तुम्हारे समीप (एमसि) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

१२ ३१२ ३१ २ ३१ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।
१ २ ३१२ ३२
स्तोमꣳ रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । शुनःशेप ऋषिः । हे जराबोध ! जरयास्तुत्या बोध्यमानाग्ने ! विशेविशे तत्तद्यजमानरूपप्रजानुग्रहार्थम् । यज्ञियाय यज्ञसम्बन्ध्यनुष्ठानसिद्ध्यर्थम् । तद् देवयजनम् । विविड्ढि प्रविश । यजमानोऽपि रुद्राय क्रूरायाग्नये तुभ्यम् । दृशीकं दर्शनीयम् समीचीनं स्तोमं स्तोत्रं करोतीति शेषः । अत्र यास्क एवं व्याख्यातवान् । जरा स्तुतिः,जरतेः स्तुतिकर्मणः तद्बोधतया बोधयितरिति वा तद् विविड्ढि तत् कुरु । मनुष्यस्य यजमानाय । स्तोमं रुद्राय दर्शनीयम् इति । जराबोध । जॄष् वयोहानौ अत्र तु स्तुत्यर्थः । 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' इत्यङ् प्रत्ययः, अतष्टाप् । जरया स्तुत्या बोधो यस्यासौ जराबोधः । यद्वा, जरया बोध्यते इति जराबोधः, कर्मणि आमन्त्रिताद्युदात्तत्वम्

विविड्ढि, विश प्रवेशने, लोटो हिः, बहुलं छन्दसि, इति शपः श्लुः, अभ्यासहलादिशेषौ, हुझल्भ्यो हेर्धिः, इति हेर्धिरादेशः, षत्वष्टुत्वे, यद्वा विप्लृव्याप्ताविरयस्य लोगमध्यमैकवचने अभ्यासस्य गुणाभावः। विशेविशे साधेकाच इति चतुर्थ्या उदात्तत्वम्, अनुदात्तञ्च इत्याम्रेडितानुदात्तत्वम्। यज्ञियाय यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ इति घः। दृशीकम् अनिदृशिभ्याश्चेति कीकन्, निरवादाद्युदात्तः॥५॥

(अवबोध) हे स्तुतिसे बोध्यमान अग्ने (विशे विशे) प्रत्येक यजमानरूप प्रजा पर अनुग्रह करनेको (यज्ञियाय) यज्ञसम्बन्धी अनुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त (तत्) यज्ञस्थानमें (विविड्ढि) प्रवेश करो। यजमान भी (रुद्राय) तुझ क्रूर अग्निके अर्थ (दृशीकम्) देखने योग्य (स्तोमम्) स्तुतिको, करता है॥५॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे।

३ १ २ ३ १ २

मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ६॥

अथ षष्ठी। मेधातिथिर्ऋषिः। त्यच्छब्दः सर्वनामतच्छब्दपर्यायः। हे अग्ने! यो यज्ञः चारुः अङ्गवैकल्यरहितः। त्यं तथाविधम् चारुम्, अध्वरम् प्रति लक्ष्य। गोपीथाय सोमपानाय। प्रहूयसे प्रकर्षेण त्वं हूयसे। तस्मादस्मिन्नध्वरे त्वं मरुद्भिर्देवविशेषैः सह, आ गहि आगच्छ। सेयमृग् यास्केनैवं व्याख्याता-तं प्रति चारुमध्वरं सोमं पानाय प्रहूयसे सोऽग्निर्मरुद्भिः सहागच्छ [१०, ३, १२] इति॥ ६॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (तम्) उस (चारुम्) अङ्गवैकल्यरहित (अध्वरं प्रति) यज्ञकी ओर लक्ष करके तुम (गोपीथाय) सोमपान करनेके लिये (प्रहूयसे) अधिकतासे आह्वान किये जाते हो (मरुद्भिः आगहि) देवताओं के सहित आइये॥ ६॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।

३ १ २ ३ १ २

सम्राजं तमध्वराणाम्॥ ७॥

अथ सप्तमी। शुनःशेप ऋषिः। अध्वराणां यज्ञानां, सम्राजम् तं सम्राट्स्वरूपं स्वामिनम् अग्निम् त्वां, नमोभिः स्तुतिभिः, वन्दध्यै वन्दितुं प्रवृत्ताः इति शेषः। अग्नेर्दृष्टान्तः-वारवन्तं बालयुक्तम्। अश्वं

न अश्वमिव । अश्वो यथा बालैर्व्यथकान् मशकमक्षिकादीन् परिहरति, तथा त्वमपि ज्वालाभिरस्मद्विरोधिनः परिहरसीत्यर्थः ॥ ७ ॥

(वारवन्तम्) पूंछवाले (अश्वं न) घोड़ेकी समान (अध्वराणाम्) यज्ञोंके (सम्राजम्) स्वामी (तं त्वां अग्निम्) तुझ प्रसिद्ध अग्निको (नमोभिः) स्तुतियोंसे (वन्दध्यै) वन्दना करनेको प्रवृत्त हुए हैं अर्थात् जैसे घोड़ा पूंछके बालोंसे पीड़ा देनेवाले मच्छर आदिको दूर करदेता है तैसे ही तू भी ज्वालाओंसे हमारे विरोधियोंको हटा ॥ ७ ॥

३ १ २र ३ १ २र
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निꣳसमुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । प्रयोग ऋषिः । समुद्रवाससं समुद्रमध्यवर्त्तिनं बाडवं शुचिं शुद्धम्, अग्निम् और्वभृगुवत् तथा और्वभृगुः अप्नवानवत् यथा अप्नवानः, तथा आहुवे अहमाह्वयामि ॥ ८ ॥

(और्वभृगुवत्) और्वभृगु की समान (अप्नवानवत्) अप्नवान की समान (समुद्रवाससम्) समुद्र के मध्य में वर्त्तमान बाड़वनामा (शुचिम्) शुद्ध (अग्निम्) अग्नि को (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥८॥

३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धानो मनसा धियꣳसचेतमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । प्रयोग ऋषिः । मर्त्यः मनुष्योऽग्निमिन्धानः काष्ठैः प्रज्वलयन् मनसा एव श्रद्दधानः धियं कर्म सचेत काले भजेत । विवस्वभिः ऋत्विग्भिश्च अग्निम्-एव इन्धे प्रज्वलयति । बह्वृचानाम् ईधे इति पाठः ॥ ९ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम् इन्धानः) अग्नि को समिधाओं से प्रज्वलित करता हुआ (मनसा) मानासिक श्रद्धा से (धियम्) कर्म को (सचेत) यथासमय करै (विवस्वभिः) ऋत्विजों के द्वारा (अग्निम्, इन्धे) अग्नि को प्रज्वलित करै ॥ ९ ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २
परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥

अथ दशमी। वत्स ऋषिः। परोदिवि दिवः परस्तात् व्यत्ययेन सप्तमी (३, ४, ८८)। बह्वृचानां दिवेति तृतीयान्तेन व्यत्ययः। दिवि द्युलोकस्योपरि, यद् यदा। अयं वैश्वानरोऽग्निः सूर्य्यात्मना इध्यते दीप्यते आदित् अनन्तरमेव प्रत्नस्य चिरन्तनस्य रेतसः गन्तुः री गतिरेषणयोः अस्मात् सुरीभ्यां तुड्वेत्यतसुन् तुडागमश्च। यद्वा रेतस इत्युदकनाम (नि० १, १२, १६) रेतस्विन उदकवतः सामर्थ्यान्मत्वर्थो लक्ष्यते ईदृशस्येन्द्रस्य सूर्यात्मनः वासरं नियामकं वासरस्य निवासहेतुभूतं वा ज्योतिः द्योतमानं तेजः पश्यन्ति सर्वे जनाः। यद्वा वासरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया (२, ३, ५), कृत्स्नमहः उदयप्रभृत्यास्तमयात् ज्योतिः पश्यन्तीत्यर्थः। इसुसोः सामर्थ्ये (८, ३, ४४) इति विसर्जनीयस्य षत्वम् ॥ १० ॥

(दिवि परः) द्युलोक से ऊपर (यत्) जब, यह वैश्वानर अग्नि सूर्य रूपसे (इध्यते) दीप्त होता है (आदित्) अनन्तर ही सकल जीव (प्रत्नस्य) चिरन्तन (रेतसः) गमन करनेवाले सूर्य के (वासरम्) निवास के हेतुभूत (ज्योतिः) प्रकाशवान् तेज को (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३१२ ३१ २ ३१२
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
२ ३ २३ १२
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

अथ तृतीयखण्डे। सैषा प्रथमा। प्रयोग ऋषिः। अध्वराणां अहिंस्यानां बलिनाम्। नप्त्रे बन्धुम्। सहस्वते बलवन्तम्। विभक्तिव्यत्ययः वृधन्तं ज्वालाभिर्वर्द्धमानम्। पुरूतमम् अतिशयेन बहुमग्निम्। हे ऋत्विजः वः यूयम्। अच्छा अभिगच्छत ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो! (वः) तुम (अध्वराणाम्) हिंसा न करने योग्य बलवानों के (नप्त्रे) बन्धु (सहस्वते) बलवान् (वृधन्तम्) ज्वालाओंसे बढ़ते हुए (पुरूतमम्) बहुत अधिक (अग्निम्) अग्निको (अच्छा) अभिगमन करो वा पूजो ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ १२
अग्निस्तिग्मेन शोचिषायꣳसद्विश्वं न्या३त्रिणम्
३ १ २ २ ३
अग्निर्नो वꣳसते रयिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । अयम् अग्निः, तिग्मेन तीक्ष्णेन शोचिषा तेजसा । विश्वं सर्वम् । अत्रिणाम् अत्तारम् राक्षसादिकम् । नियंसत् निहन्तु । [बह्वृचा अनुस्वारस्थाने आकारं कृत्वा यासत् इति पठन्ति] अपिच न अस्मभ्यमग्निः,रयिं धनं ,वंसते ददातु । वंसते इति छन्दोगाः । वनते इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

(अयं, अग्निः) यह अग्नि (तिग्मेन, शोचिषा) तीक्ष्ण तेजसे (विश्वं, अत्रिणाम्) सकल भक्षक राक्षसादि को (नियंसत्) नष्ट करे (अग्निः) अग्नि (नः) हमें (रयिम्) धन (वंसते) देय ॥२॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

अग्ने मृड महाँ२ असयय आ देवयुं जनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वामदेव ऋषिः । हे अग्ने ! मृड अस्मान् सुखय । स त्वं महान् असि प्रभूतो भवसि । यः त्वम् अयः गन्ता देवयुं देवानां कामयितारं जनं यजमानं बर्हिः दर्भम् आसदम् यज्ञे आसत्तुम् । आ इयेथ आगच्छसि । अयः इति छन्दोगाः । ययीम् इति बह्वृचाः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (मृड) हमें सुख दो (महान्, असि) तुम महान् हो (अयः) गमन करनेवाले तुम (देवयुम्) देवताओं का दर्शन चाहनेवाले (जनम्) यजमान के समीप (बर्हिः, आसदम्) दर्भासन पर विराजने को (आ–इयेथ) आते हो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अग्ने रक्षाणो अꣳहसः प्रति स्म देव रीषतः ।

१ २ ३ १ २

तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । वसिष्ठ ऋषिः । हे अग्ने ! त्वं न अस्मान् अंहसः पापात् रक्ष पाहि [संहितायां दीर्घश्छान्दसः]अपि च हे देव द्योतमानाग्ने ! अजरः जरारहितस्त्वं रीषतः हिंसतः शत्रून् [संहितायां दीर्घश्छान्दसः] तपिष्ठैः अतिशयेन तापकैस्तेजोभिः प्रति दह स्म भस्मीकुरु । स्मेति सकारस्य संहितायां प्रति ष्म इति षत्वं बह्वृचाः कुर्वन्ति ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (नः) हमें (अंहसः) पापसे (रक्ष) रक्षा करो (देव) हे प्रकाशमान विभावसो ! (अजरः) जरारहित

तुम (रीषतः) हिंसा करना चाहने वाले शत्रुओं को (तपिष्ठैः) अत्यन्त ताप देनेवाले तेजोंसे (प्रति दह स्म) भस्म करो ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र २र १ २ ३ १ २
अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देवसाधवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । भरद्वाज ऋषिः । हे देव द्योतमान ! अग्ने ! तानश्वान् युंक्ष्व आत्मीये रथे योजय [बह्वृचास्तैत्तिरीयाश्च विकरणप्रत्ययस्य लोपं कृत्वा युक्ष्व इति पठन्ति] ये तव त्वदीयाः साधवः साधकाः सुशीला वा अश्वासः अश्वाः आशवः क्षिप्रगामिनः अरम् अलं पर्याप्तं त्वदीयं रथं वहन्ति । वहन्त्याशवः इति छन्दोगाः । वहन्ति मन्यवः इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(देव, अग्ने) हे प्रकाशवान् अग्ने ! उन घोड़ोंको अपने रथमें (युंक्ष्वा) जोड़ो (ये हि,) जो (तव) तुम्हारे (आशवः) शीघ्रगामी (साधवः) सुशील (अश्वासः) घोड़े (अरम्) ठीक (वहन्ति) तुम्हारे रथ को लेजाते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २
नित्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।
३ १ २
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वशिष्ठ ऋषिः । नक्ष्य ! उपगन्तव्य ! नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा विश्पते विशाम्पते ! आहुत सर्वैर्यजमानैरभिहुत ! हे अग्ने ! द्युमन्तं दीप्तिमन्तं सुवीरं कल्याणस्तोतृकं त्वा त्वां वयं नि धीमहे निहितवन्तः । धीमहे वयम् इति छन्दोगाः । देव धीमहि इति बह्वृचाः ॥ ६ ॥

(नक्ष्य) उपासना करने योग्य (विश्पते) धनपते (आहुत) अनेकों यजमानों से होमेहुए (अग्ने) हे अग्निदेव (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (सुवीरम्) जिस की स्तुति करनेवाले कल्याण के भागी होते हैं ऐसे (त्वा) तुम्हें (वयम्) हमने (निधीमहे) स्थापन किया है ॥ ६ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

३ १ २र
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विरूप ऋषिः । मूर्ध्वा देवानां श्रेष्ठः दिवः द्युलोकस्य ककुत् उच्छ्रितः पृथिव्याः च पतिः अयम् अग्निः अपां रेतांसि स्थावरजङ्गमात्मकानि भूतानि जिन्वति प्रीणयति ॥ ७ ॥

(मूर्ध्वा) देवताओं में श्रेष्ठ (दिवः, ककुत्) द्युलोक से ऊँचा (पृथिव्याः. पतिः) पृथिवी का स्वामी (अयं, अग्निः) यह अग्नि (अपां, रेतांसि) जलों के वीर्यरूप स्थावर जङ्गम प्राणियों को (जिन्वति) प्रेरणा करता है ॥ ७ ॥

३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २र
इममूषु त्वमस्माकꣳसनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । शुनःशेप ऋषिः । हे अग्ने ! त्वम् अस्माकम् अस्मत्सम्बन्धिनम् [अस्मभ्यम् इति तैत्तिरीयाः] इममूषु पुरोदेशेऽनुष्ठीयमानमपि सनिं हविर्दानं नव्यासं नवतरं [नवीयांसम् इति तैत्तिरीयाः] गायत्रं स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानाम् अग्रे प्रवोचः प्रब्रूहि ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अस्माकम्) हमारे (इममूषुम्) इस अनुष्ठान किये जाते हुए (सनिम्) हविर्दान को (नव्यासम्) अतिनवीन (गायत्रम्) स्तुतिरूप वचन को (देवेषु) देवताओं के आगे (प्रवोचः) कहो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१ २ ३ १ २
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोपवन ऋषिः । हे अग्ने ! तं त्वा त्वां गोपवनः ऋषिः गिरा स्तुत्या जनिष्ठत् जनयति वर्द्धयति स्तूयमाना हि देवता वर्द्धन्ते तादृशाग्ने अङ्गिरः सर्वत्र गन्तः, आङ्गिरसां पुत्रो वा हे पावक शोधक ! गोपवनस्य हवम् आह्वानं श्रुधि शृणु । तं त्वां इति जनिष्ठत् इति च छन्दोगाः, यं त्वा इति जनिष्ठत् इति च बह्वृचाः ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तं, त्वाम्) उन आपको (गोपवनः) गोपवन (गिरा) स्तुतिसे (जनिष्ठत्) उत्पन्न करता है या बढ़ाता,

हे (अङ्गिरः) हे सर्वत्र गमन करनेवाले (पावक) शोधक अग्निदेव ! (हवम्) आह्वानको (श्रुधि) सुनो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । वाजपतिः वाजानामन्नानां पतिः पालकः [परि वाजपतिः कविरित्येव हि वाजानां पतिरिति ब्राह्मणम्] कविः क्रान्तदर्शी मेधावी वा । दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि दधत् प्रयच्छन् अग्निः हव्यानि हवींषि पर्यक्रमीत् परिक्रामति व्याप्नोतीत्यर्थः ॥ १० ॥

(वाजपतिः) अन्नोंके पालक (कविः) अतीत विषयोंको देखनेवाले (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (रत्नानि) रमणीय धनोंको (दधत्) देतेहुए (अग्निः) अग्निदेव (हव्यानि) हवियोंको (पर्यक्रमीत्) व्याप्त करते हैं ॥ १० ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
३ १ २र ३ १ २
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ ११ ॥

इयं सौरी । आग्नेयसमाख्यानं छत्रिणो गच्छन्तीतिवत् प्राणभृत उपदधातीतिवच्च द्रष्टव्यम् । अथैकादशी । कण्व ऋषिः । केतवः प्रज्ञापकाः सूर्य्याश्वाः यद्वा, सूर्य्यरश्मयः सूर्य्यम् सर्वस्य प्रेरकमादित्यम् उद्वहन्ति ऊर्ध्वं वहन्ति उ । इति पादपूरणः । [उक्तञ्च— "मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिद्विति"] किमर्थम् ? विश्वाय विश्वस्मै सर्वस्मै भुवनाय दृशे द्रष्टुम् । यथा सर्वे जनाः सूर्यं पश्यन्ति तथोर्ध्वं वहन्तीत्यर्थः । कीदृशं सूर्य्यम् ? त्यं तं प्रसिद्धम्, जातवेदसं जातानां प्राणिनां वेदितारं, जातप्रज्ञं, जातधनं वा, देवं द्योतमानम् [अत्र निरुक्तम्—उद्वहन्ति जातवेदसं देवमश्वाः केतवो रश्मयो वा सर्वेषां भूतानां सन्दर्शनाय सूर्य्यम् (१२, २, ४) इति] ॥ ११ ॥

(केतवः) सूर्यकी किरणें (विश्वाय, द्रष्टुम्) सकल भुवनोंको देखनेको (त्यम्) प्रसिद्ध (जातवेदसम्) प्राणियोंके ज्ञाता (देवम्) दीप्तिमान् (सूर्यम्) सूर्यको (उद्वहन्ति–उ) ऊपरको उठाती हैं ॥११॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
३ १ २ ३ १ २
देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे स्तोतृसंघ ! अध्वरे क्रतौ अग्निम् उपस्तुहि उपेत्य स्तुतिं कुरु । कीदृशम्? कविं मेधाविनं सत्यधर्माणम् सत्यवचनरूपेण धर्मेणोपेतं, देवं द्योतमानम्, अमीवचातनम् अमीवानां हिंसकानां शत्रूणां वा घातकम् ॥ १२ ॥

हे उपासकों ! (अध्वरे) यज्ञमें (कविम्) मेधावी (सत्यधर्माणम्) सत्यवचन रूप धर्मसे युक्त (देवम्) द्योतमान (अमीवचातनम्) शत्रुओंके नाशक (अग्निम्) अग्निदेवको (उपस्तुहि) उपस्थित होकर स्तुति करो ॥ १२ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
२उ ३ १ २
शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १३ ॥

अथ त्रयोदशी । सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषो वा त्रित आप्तो वा ऋषिः । नः अस्माकं पापापमोदद्वारेण शं सुखं भवन्तु । देवीः देव्यः आपः अभिष्टये अस्मद्यज्ञाय भवन्तु, यज्ञाङ्गभावाय च भवन्तु इत्यर्थः । अपिच, नः अस्मत्सम्बन्धिने पीतये पानाय च शं सुखं भवन्तु । तथा. शम् उत्पन्नानां रोगाणां शमनम्, योः यापनम् अनुत्पन्नानां पृथक्करणं च कुर्वन्तु । अपि च, नः अस्माकम् अभि उपरि स्रवन्तु, अत्यर्थं सिञ्चन्तु । शन्नो भवन्तु इति छन्दोगाः। आपो भवन्तु इति बह्वृचाः तैत्तिरीयाश्च१३

(नः, शम्) हमारे पाप दूर होकर सुख प्राप्त हो (देवी, आपः, अभिष्टये, भवन्तु) दिव्य जल हमारे यज्ञके अङ्ग बनें (नः पीतये, शं, भवन्तु) हमारे पीनेके लिये सुखरूप हों (शम्) उत्पन्नहुए रोगोंको शान्त करनेवाले हों (योः) न उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करें (नः, अभि, स्रवन्तु) हमारे ऊपर अमृतरूपसे टपकें ॥ १३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥

अथ चतुर्दशी । उशना ऋषिः । हे सत्पते सतां पते ! अग्ने ! नूनम् इदानीं, कस्य कीदृशस्य जनस्य, परीणासि ब्रह्मणि धियः कर्माणि जिन्वसि प्रीणयसि । यस्य ते तव सम्बन्धिन्यः गिरः स्तुतयः गोषाता गोसातौ गवां लाभे भवन्तु खलु । तस्मात्त्वं कुत्र तिष्ठसि ? अस्माकमिदानीं गवेच्छा प्रवर्त्तते । यद्वा, हे अग्ने ! त्वमिदानीं कस्य कर्माणि प्रीणयसि ? न कस्यापीत्यर्थः । अस्माकमेव कर्माणि प्रीणयेतिभावः । परीणसि इति सत्पते इति च छन्दोगाः । परिणसः इति दम्पते इति च बह्वृचाः ॥ १४ ॥

(सत्पते) हे सज्जनों के पालक अग्ने । (नूनम्) इस समय (कस्य) कैसे मनुष्यके (धियः) कर्मोंको (परीणसि) ब्रह्म में (जिन्वसि) पहुँचा रहे हो (यस्य) जिस (ते) तेरे सम्बंधकी (गिरः) स्तुतियें (गोषाता) गौओंका लाभ करानेवाली [भवन्तु] हों । अर्थात् इस समय आप किस भगवद्भक्त का कार्यसाधन करते हुए कहां हो ? इस समय हमको गौओंको पानेकी इच्छा है ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खंडः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ।

अथ चतुर्थखण्ड-सेयं प्रथमा । शंयुऋर्षिः । हे स्तोतारः ! वः यूयं यज्ञा यज्ञा यज्ञे यज्ञे सर्वेषु यागेषु दक्षसे प्रवृद्धाय अग्नये गिरा गिरा स्तुतिरूपया वाचा स्तोत्रं कुरुतेति शेषः [च शब्दो भिन्नक्रमो व इत्यस्मात्परो द्रष्टव्यः] यूयं च स्तोत्रं कुरुत, वयमपि तमग्निं प्र प्र शंसिषम् प्रसमुपोदः पादपूरणे (८, १, ६०) इति प्रशब्दस्य द्विरुक्तिः पादपूरणार्था । व्यत्ययेनैकवचनं (३, ४, ९८) । छान्दसो लुङ् प्रशंसामः । कीदृशम् ? अमृतं मरणरहितम् । जातवेदसं जातानां वेदितारं जातप्रज्ञानं जातधनं वा । मित्रं न सखिभूतमिव प्रियमनुकूलम् । यद्वा व्यत्ययेन त्वामित्यस्य वसादेशः (३, ४, ९८) । अग्नय इति च कर्मणि चतुर्थी, क्रियाग्रहणमपि कर्त्तव्यम्, इति कर्मणः सम्प्रदानत्वात् । च शब्दश्चणितिनिपातश्चेदर्थे वर्त्तते । दक्षस इति दक्षेर्वृद्धिकर्मणः अन्तर्भावितण्यर्थाल्लटि रूपम् । चणयोगान्निपातैर्यद्यादिहन्त इति निघातप्रतिषेधः । तत्रायमर्थः—हे स्तोतस्त्वं यज्ञे इममग्निं गिरा स्तुत्या दक्षसे च वर्द्धयसि चेत्, वयमपि अमृतत्वादिगुणकं तं प्रशंसामः ॥ १ ॥

हे स्नाताओं ! (घः च) तुम भी (यज्ञायज्ञा) सब यज्ञोंमें (दक्षसे) वृद्धिको प्राप्त (अग्नये) अग्निके अर्थ (गिरागिरा) स्तुति रूप वाणी करके [स्तुति करो] (वयम्) हम (अपि) भी (अमृतम्) मरणरहित (मित्रं, न) मित्रकी समान (प्रियम्) अनुकूल (जातवेदसम्) प्राणिमात्रके ज्ञाता अग्निको (प्रप्रशंसिषम्) स्तुति करते हैं १

१ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३१ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो २

अथ द्वितीया । भर्गऋषिः । हे अग्ने ! नः अस्मान् एकया ऋचा गिरा पाहि रक्ष । उत अपि च । द्वितीयया ऋचा पाहि पालय । तिसृभिः गीर्भिः स्तुतिभिः ऊर्जाम् अन्नानां बलानां वा हे पते ! स्वामिन् ! तथा पाहि । हे वसो ! वासक ! अग्ने ! चतसृभिः गीर्भिः पाहि ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (नः) हमको (एकया) एक ऋचारूप वाणी से (उत) और (द्वितीयया) दूसरी ऋचासे (पाहि) रक्षा करो, (ऊर्जाम्) बलोंके वा अन्नोंके (पते) स्वामिन् अग्ने ! (तिसृभिः) तीन (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो (वसो) हे अग्ने ! (चतसृभिः) चार स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ रेवत्पावक दीदिहि ॥३॥

अथ तृतीया । शंयुऋषिः । हे देव ! दानादि-गुण-युक्त ! यविष्ठ युवतम ! पावक शोधक ! अग्ने ! शुक्रेण निर्मलेन शोचिषा तेजसा । भरद्वाजे अस्मद्भ्रातरि समिधानः समिध्यमानस्त्वं बृहद्भिर्महद्भिस्तेजोभिः, नः अस्मदर्थं रेवत् धनयुक्तं यथा भवति तथा दीदिहि दीप्यस्व । रेवत्पावक इति छन्दोगाः । रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक इति बह्वृचाः ॥३॥

(देव) दानादि गुणयुक्त (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (पावक) शोधन करने वाले (अग्ने) हे अग्ने (शुक्रेण) निर्मल (शोचिषा) तेज करकै (भरद्वाजे) हमारे भ्राताके विषयमें (समिधानः) प्रज्वलित होते हुए तुम (बृहद्भिः) बड़े (तेजोभिः) तेजों करके (नः) हमारे निमित्त (रेवत्) धनयुक्त होकर (दीदिहि) दीप्त हूजिये ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ४

अथ चतुर्थी। वसिष्ठऋषिः। हे अग्ने! स्वाहुत यजमानैः सुष्ठुभिः हुत! त्वे तव सूरयः प्रेरकाः स्तोतारः प्रियासः प्रियाः सन्तु भवन्तु किञ्च। ये मघवानः धनवन्तः यन्तारः प्रदातारः जनानाम् अस्मदीयानाम् ऊर्वम् समूहम्। गोनां गवां च ऊर्वं समूहं दयन्त प्रयच्छन्ति, ते च तव प्रियाः सन्तु इति पूर्वेणान्वयः ऊर्वम् इति छन्दोगाः। ऊर्वान् इति बह्वृचाः ॥४॥

(स्वाहुत) यजमानों के द्वारा भले प्रकार हवन किये हुए (अग्ने) हे अग्निदेव! (त्वे) तुम्हारे (सूरयः) प्रेरक स्तोता (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों। (ये) जो (मघवानः) धनवान् (यन्तारः) देनेवाले (जनानाम्) हमारे पुरुषोंके (गोनाम्) गौओंके (ऊर्वम्) समूहको (दयन्त) देते हैं [वह भी आपके प्रिय हों] ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः। अप्रोषि-
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
वान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५॥

अथ पञ्चमी। भारद्वाज ऋषिः। हे अग्ने! देव! जरितः स्तोतः! स्तुत्य इत्यर्थः। विश्पतिः प्रजानां पालकः रक्षसः राक्षसानां तपानः सन्तापकः असि। हे गृहपते-यजमानगृहस्य पालकाग्ने! त्वम् अप्रोषिवान् यजमानस्य गृहमत्यजन् महान् अतिशयेन पूज्योऽसि। दिवः द्युलोकस्य पायुः पाता। दुरोणयुः यजमानगृहस्य मिश्रयित्वा सर्वदा वर्त्तमान इत्यर्थः। तादृशस्त्वं महानसीत्यर्थः। तपान तपान इति पाठौ। गृहपते गृहपतिः इति च ॥ ५ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव (जरितः) स्तुतिके योग्य (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (रक्षसः) राक्षसजातिका (तपानः) सन्तापदायक (असि) है (गृहपते) हे यजमानके घरकी रक्षा करनेवाले अग्ने (अप्रोषिवान्) यजमान के घरको न त्यागने वाले तुम (महान्) परम पूज्य (असि) हो। (दिवः) द्युलोकके (पायुः) रक्षक (दुरोणयुः) यजमानके घर सदा वर्त्तमान (असि) हो ॥ ५ ॥

१ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र २
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य । आ
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳउषर्बुधः ॥६॥

अथ षष्ठी । प्रस्कण्वऋषिः । हे अग्ने त्वम् उषसः उषोदेवतायाः सकाशात् राधः धनं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय आवह आनीय प्रापय । सोऽग्निर्विशिष्यते । अमर्त्य मरणरहित ! हे जातवेदः जातानां वेदितः कीदृशं राधः विवस्वत् विशिष्टनिवासोपेतम् । चित्रं नानाविधम् । किञ्च । अद्य अस्मिन् दिने उषर्बुधः उषःकाले प्रबुद्धान् देवानावह ॥६॥

(अमर्त्य) मरणधर्मरहित (जातवेदः) प्राणिमात्रके ज्ञाता (अग्ने) अग्निदेव (त्वम्) तुम (उषसः) उषा देवता से (विवस्वत्) विशिष्ट निवासयुक्त (चित्रम्) नानाप्रकारके (राधः) धनको (दाशुषे) हवि देने वाले यजमानके अर्थ (आवह) लाकर प्राप्त कराओ (अद्य) आज (उषर्बुधः) उषःकालमें जागे हुए (देवान्) देवताओंको (आवह) ला कर पहुँचाइये ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

अथ सप्तमी । तृणपाणि ऋषिः । हे वसो वासक ! अग्ने ! चित्रः दर्शनीयस्त्वं ऊत्या रक्षया सह राधांसि धनानि नः अस्मभ्यं चोदय प्रेरय । अस्य लोके परिदृश्यमानस्य राधः धनस्य त्वं रथीः असि रंहिता नेता भवसि । अतः कारणात् अस्मभ्यं धनानि प्रेरयेत्यर्थः । अपि च नः अस्माकं तुचे [अपत्यनामैतत् नै० २, २, १] अपत्याय अपतनहेतुभूताय पुत्राय गाधं प्रतिष्ठां तु क्षिप्रं विदाः लम्भय ॥ ७ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) अग्निदेव (चित्रः) दर्शनीय तुम (ऊत्या) रक्षासहित (राधांसि) धन (नः) हमारे अर्थ (चोदय) प्रेरणा करो (अस्य) इस लोकमें दीखतेहुए (राधः) धनके (रथीः) प्रेरक (असि) हो [इसकारण हमारे अर्थ भी धनको प्रेरणा करिये और] (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (गाधम्) प्रतिष्ठाको (तु) शीघ्र (विदाः) दीजिये ॥ ७ ॥

२उ ३ १र२ ३ १ २ ३ २ ३ २ १
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः । त्वां
२र ३ १ २ ३ १ २
विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८

अथाष्टमी । विरूप ऋषिः । हे अग्ने ! त्रातः रक्षक ! ऋतः सत्यभूतः कविः क्रान्तप्रज्ञः त्वमित् त्वमेव सप्रथाः सर्वतः पृथुः असि भवसि । हे समिधान समिध्यमान ! हे दीदिवः दीप्ताग्ने ! त्वां विप्रासः विप्राः मेधाविनः विधातारः स्तोतारः आविवासन्ति विचरन्ति।

(त्रातः) रक्षक (अग्ने) अग्निदेव (ऋतः) सत्य (कविः) ज्ञानदृष्टि (त्वमित्) तुम ही (सप्रथाः) सबसे बड़े (असि) हो (समिधानः) प्रज्वलित होतेहुए (दीदिवः) हे दीप्त अग्ने (विप्राः) मेधावी (वेधसः) स्तुति करनेवाले (त्वाम्) तुमको (आविवासन्ति) उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृधꣳ रयिं पावक शꣳस्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳ सुनीती सुयशस्तरम् ।

अथ नवमी । शुनःशेप ऋषिः । हे अग्ने ! पावक शोधक ! वयोवृधम् अन्नस्य वर्द्धकं शंस्यं स्तुतिवन्तं रयिं धनं नः अस्मभ्यम् आभरेति शेषः । आहृत्य च हे उपमाते उपास्मात्समीपे मातिर्घृतमित्युपमातिः, हे तादृश अग्ने नः अस्मभ्यं सुनीती ! सुनीत्या शोभनयनेन पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं सुयशस्तरम् अत्यन्तस्वभूतं कीर्त्ति-धनं रास्व देहि । सुयशस्तरं स्वयशस्तरम् इति पाठो ॥ ९ ॥

(पावक) शोधक (अग्ने) हे अग्निदेव ! (वयोवृधम्) अन्नको बढ़ानेवाले (शंस्यम्) स्तुतिके योग्य (रयिम्) धनको (नः) हमारे अर्थ (आभर) लाइये । (उपमाते) हे घृतकी समीपतावाले अग्ने (नः) हमारे अर्थ (सुनीती) सुन्दर नीतिके द्वारा (पुरुस्पृहम्) अनेकों के चाहने योग्य (सुयशस्तरम्) सर्वथा हमारी अपनी कीर्त्ति रूप धन (रास्व) दीजिये ॥ ९ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यो विश्वादय ते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
३ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यंत्वग्नये १०

अथ दशमी । सौभरि ऋषिः । होता देवानामाह्वाता मन्द्रः मोदनः यः अग्निः विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि जनानां जनेभ्यः दयते प्रयच्छति । तस्मै अस्मै अग्नये मधोः न मदकरस्य सोमस्येव प्रथमानि मुख्यानि पात्रा पात्राणि स्तोमाः स्तोत्राणि प्रयन्ति गच्छन्ति ॥

(होता) देवताओंका आह्वान करनेवाला (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (यः) जो अग्नि (जनानाम्) यजमानोंको (विश्वा) सकल (वसु) धन (दयते) देता है (अस्मै) ऐसे इस (अग्नये) अग्नि के अर्थ (मधोः) मदकारी सोमके (प्रथमानि) मुख्य (पात्रा, न) पात्रों की समान (स्तोमाः) स्तोत्र (प्रयन्तु) प्राप्त हों ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् १

अथ पञ्चमखण्डे—सेयं प्रथमा । वामदेवऋषिः । ऊर्जः बलस्य नपातं पुत्रं प्रियम् अस्माकं, चेतिष्ठम् अतिशयेन ज्ञातारं प्रज्ञातारं प्रज्ञापकं वा । अरतिं गन्तारं स्वामिनं वा स्वध्वरं सुयज्ञं, विश्वस्य सर्वस्य यजमानस्य दूतम् अमृतं नित्यम् अग्निम् एना एनेन नमसा स्तोत्रेण [यद्यप्यत्रान्वादेशो नास्ति तथापि छान्दसत्वादिदंशब्दस्यैनादेशः] । हे स्तोतारः ! वः युष्मदर्थम् आहुवे आह्वयामि ॥ १ ॥

हे स्तोताओं ! (वः) तुम्हारे निमित्त (ऊर्जः) बलके (नपातम्) पुत्र वा रक्षक (अस्माकम्) हमारे (प्रियम्) प्यारे (चेतिष्ठम्) पूर्ण ज्ञाता (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) सुन्दर यज्ञवाले (विश्वस्य) सकल यजमानोंके (दूतम्) दूत (अमृतम्) नित्य (अग्निम्) अग्निको (एना) इस (नमसा) स्तोत्रसे (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि २

अथ द्वितीया । भर्ग ऋषिः । हे अग्ने ! वनेषु मातृषु च ऋपापि वर्त्तसे तथाभूतं त्वा त्वां मर्तासः मनुष्याः अध्वर्य्वादयः, मन्थनेना-

त्पाद्य समिन्धते । पश्चात्प्रवृद्धस्त्वं अतन्द्रः अनलसः सन् हविष्कृतः यजमानस्य हव्यः हव्यं वहसि देवान् प्रति । आदित् अनन्तरमेव देवेषु मध्ये राजसि दीप्यसे । मातृषु मात्रो इति पाठौ । हव्यं हव्यः इति च ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (वनेषु) वनोंमें (मातृषु) माताओं में (शेषे) वर्त्तमान रहते हो, ऐसे (त्वा) तुम्हें (मर्त्तासः) मनुष्य [मन्थनके द्वारा उत्पन्न करके] (समिन्धते) प्रज्वलित करते हैं । तब पूर्णरूपसे बढ़े हुए तुम (अतन्द्रः) आलस्यरहित होकर (हविष्कृतः) यजमान के (हव्यम्) हविको (वहसि) देवताओंके समीप पहुँचाते हो (आदित्) अनन्तर (देवेषु) देवताओं में (राजसि) शोभा पाते हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपोषु जातमार्य्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ३

अथ तृतीया । सौभरि ऋषिः । यस्मिन् अग्नौ व्रतानि कर्माणि आदधुः यजमानाः आहितवन्तः गातुवित्तमः अतिशयेन मार्गाणां ज्ञाता सोऽग्निः अदर्शि प्रादुरभूत् । किञ्च । सुजातं सम्यक् अस्य आर्यस्य उत्तमवर्णस्य वर्द्धनं वर्द्धयितारं अग्निं नः अस्माकं गिरः स्तुतिरूपाः वाचः उपो नक्षन्तु उपगच्छन्तु । नक्ष गताविति धातुः । नक्षन्तु नो गिरः इति बहवृचाः ॥ ३ ॥

(यस्मिन्) जिस अग्निमें (व्रतानि) कर्मोंको (आदधुः) यजमानोंने स्थापन किया (गातुवित्तमः) मार्गोंका पूर्ण ज्ञाता वह अग्नि (अदर्शि) दीखा (सुजातम्) भले प्रकार प्रकट हुए (आर्यस्य) श्रेष्ठ वर्णोंके (वर्द्धनम्) बढ़ाने वाले (अग्निम्) अग्निको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें (उपोनक्षन्तु) प्राप्त हों ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ४

अथ चतुर्थी । मनुः प्रार्थयते । उक्थे स्तोत्रशस्त्रात्मके अध्वरे हिंसारहिते अस्मिन् यज्ञे अग्निः पुरोहितः यज्ञात्पुरतः उत्तरवेद्याम् ऋत्वि-

ग्भिर्निहितोऽभूत् । यथा ग्रावाणः सोमाभिषवार्थे पुरतो निहिताः । बर्हिः च पुरतो निहितम् आसादितम् । एवं सामाग्र्यां मत्यां हे मरुतः एकोनपञ्चाशन्मरुद्गणाः । हे ब्रह्मणस्पते स्तोत्रस्य पालक ! एतन्नामक ! देव ! हे देवाः द्योतनादि-गुणयुक्ताः ! इन्द्रादयः ! । वरेण्यं वरणीयं भजनीयम् अवः रक्षणम् ऋचा सूक्तरूपया स्तुत्या वः युष्मान् यामि मनुरहं याचामि । याचतेर्लटि रूपम् । वर्णलोपश्छान्दसः ॥ मरुतः ब्रह्मणस्पते-देवाः इति श्रीएयामन्त्रितत्वेन छन्दोगाः पठन्ति । मरुतः-ब्रह्मणस्पतिं-देवान् इति द्वितीयान्तत्वेन बह्वृचाः ॥ ४ ॥

(उक्थे) स्तोत्र ही है शस्त्र जिसमें ऐसे (अध्वरे) हिंसारहित इस यज्ञमें (अग्निः) अग्नि (पुरोहितः) यज्ञसे आगे उत्तर वेदीमें ऋत्विजोंके द्वारा स्थापित किया गया [यथा] जैसे (ग्रावाणः) पाषाण सोमका रस निकालनेको आगे रक्खे गए (बर्हिः) कुश आगे रक्खे गए [ऐसा होने पर] (मरुतः) हे उनचास मरुद्गणों ! (ब्रह्मणस्पते) हे स्तोत्रके रक्षक ब्रह्मणस्पति देव ! (देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! (वरेण्यम्) वरणीय (अवः) रक्षाको (ऋचा) सूक्तरूप स्तुतिके द्वारा (वः) तुम्हारी शरणमें आया हुआ मैं (यामि) याचना करता हूँ ॥ ४ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २
अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निꣳराये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ५

अथ पञ्चमी । सुदीतिर्ऋषिः पुरुमीढो वा स्कम्भोवा । हे पुरुमीढ त्वम् अग्निम् अवसे रक्षणाय ईडिष्व स्तुहि गाथाभिः गाथेति वाङ्-नाम [१,११,३६] मन्त्ररूपाभिः वाग्भिः । कीदृशम् ? शीरशोचिषं शयन-स्वभाव-रोचिषम् । तथा राये धनाय ईडिष्व । श्रुतम् एनं नरः अन्येऽपि यजमानाः स्तुवन्ति स्वार्थम् । तस्मात् सुदीयते मह्यम् । अग्निः त्वयाभिष्टुतः सन् छर्दिः गृहं प्रयच्छत्वित्येवं सुदीतिः पुरुमीढं ब्रूते । अग्निः सुदीतये छर्दिः इति छन्दोगाः । अग्निं सुदीतये छर्दि इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(पुरुमीढ) हे पुरुमीढ तू (शीरशोचिषम्) फैली हुई ज्योतिरूप (अग्निम्) अग्निको (अवसे) रक्षाके अर्थ (राये) धनके अर्थ (गाथाभिः) मंत्ररूप वाणियों से (ईडिष्व) स्तुति कर (श्रुतम्) ऐसे सुनेहुए इसकी (नरः) अन्य यजमान भी अपने मनोरथ के

निमित्त स्तुति करते हैं (अग्निः) वह अग्नि देवता (सुदीतये) मेरे अर्थ (छर्दिः) घर (प्रयच्छतु) देय ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १२ ३१२ ३१२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ।

अथ षष्ठी । प्रस्कण्व ऋषिः । बृहतीच्छन्दः । अग्निः देवता । हे श्रुत्कर्ण ! श्रवणसमर्थाभ्यां कर्णाभ्यां युत ! अग्ने ! अस्मदीयं वचनं श्रुधि शृणु । यः मित्रः देवः अर्य्यमा देवश्च अन्यैः प्रातर्यावभिः प्रातः-काले देवयजनं गच्छद्भिः देवैः सर्वैः सयावभिः आहवनीयाग्निना त्वया समानगतिभिः अन्यैः वह्निभिः देवैः सह अध्वरे क्रतुनिमित्ते बर्हिषि दर्भे आ सीदतु उपमविशतु । आसीदतु बर्हिषि मित्रो अर्य्यमा प्रातर्यावभिध्वरे इति छन्दोगाः । आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्य्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् इति बहृवृचाः ॥ ६ ॥

(श्रुत्कर्ण) श्रवणसमर्थ कानोंवाले (अग्ने) हे अग्निदेव हमारे वचनको (श्रुधि) सुनो [यः] जो (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता है वह (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल देवजनमें जानेवाले देव-ताओंके साथ (सयावभिः) आहवनीय अग्निकी समान गतिवाले (वह्निभिः) वह्नि देवताओंके साथ (अध्वरे) यज्ञके विषैं (बर्हिषि) कुशासन पर (आसीदतु) विराजमान होय ॥ ६ ॥

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना । अनु
३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १२
मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।

अथ सप्तमी । सौभरि ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । देवः द्योतमानः इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः दैवोदासः दिवोदासेनाहूयमानः, अग्निः मातरं सर्वस्य लोकस्य धारणात् पृथिवी माता, ताम्, पृथिवीम् अनु प्र वि वावृते देवान् प्रति हविर्वोढुं विशेषेण प्रवर्त्तयति । यस्माद्देनमग्निं दिवोदासः मज्मना बलेन आजुहाव तस्मादयम् अग्निः नाकस्य स्वर्गस्य शर्मणि गृहे स्वायतने एव तस्थौ अतिष्ठत् । अग्निर्देव इन्द्रः इति । नाकस्य शर्मणः इति छन्दोगाः । अग्निर्देवाँ३ अच्छ इति नाकस्य सामावि, इति च बहृवृचाः ॥ ७ ॥

(देवः) दीप्तिमान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवाला (दैवोदासः) देवभक्तों

करके आह्वान कियाहुआ (अग्निः) अग्नि (मातरम्) सब लोकोंको धारण करनेवाली माता (पृथिवीम्) पृथिवीको (अनु प्र वि वावृते) देवताओंके समीप हवि पहुँचानेको विशेष करके प्रवृत्त करता है, क्योंकि यजमान इसको (मज्मना न) बल करके मानों (आजुहाव) पुकारता हुआ, इसकारण यह (नाकस्य) स्वर्गके (शर्मणि) अपने स्थानपर (तस्थौ) स्थित हुआ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि। अया

२ ३क २र ३ २उ ३ १ २

वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

अथाष्टमी। मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्चोभावृषी । छ० बृहती। देवता इन्द्रः। हे इन्द्र। अध अधुना। ज्मः जमन्ति गच्छन्त्यस्यामिति ज्मा पृथिवी तस्याः सकाशात् । अध वा अपि वा दिवः अन्तरिक्षात् बृहतः महतः रोचनात् नक्षत्रैर्दीप्यमानात् स्वर्गाद्वा आगत्य । अधि पञ्चम्यर्थानुवादी। अया अनया तन्वा तथा विस्तृतया ममा मदीयया गिरा स्तुत्या वर्द्धस्व वृद्धो भव। हे सुक्रतो! शोभनकर्मवन्निन्द्र ! जाता जातान् अस्मदीयान् जनान् अभिलषितैः फलैः आपूरय ॥ ८ ॥

हे इन्द्र (अध) इस समय (ज्मः) पृथिवीसे (अध वा) या(दिवः) अन्तरिक्षसे (बृहतः) बड़े (रोचनात् अधि) नक्षत्रोंसे दीप्यमान स्वर्गसे [आगत्य] आकर (अया) इस (तन्वा) शरीर करके, तथा विस्तार वाली (ममा) मेरी (गिरा) स्तुतिसे (वर्द्धस्व) वृद्धिको प्राप्त हो (सुक्रतो) हे शोभनकर्मा इन्द्र ! (जाता) हमारे जनोंको (पृण) इच्छित फलों से पूर्ण करो ॥ ८ ॥

१ २ ३ २र ३ १ २र ३ २

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः।

अथ नवमी। विश्वामित्र ऋषिः। छ० बृहती। दे० अग्निः । हे अग्ने ! वना वनानि काननानि भक्षितुं कायमानः कामयमानः त्वं यत् यस्मात् कारणात् तानि विहाय मातृः मातृभूताः अपः अजगन् अगमः गतवानसि । अप्सु प्रविष्टत्वाच्छान्तो वर्त्तसे। तत् तस्मात् ते तव निवर्त्तनं नितरां तत्रैव वर्त्तनं, तेन च विनाशो लक्ष्यते । सः न प्रमृषे (कृत्यार्थे केन् प्रत्ययः) न प्रमृष्यते न सह्यते। कुतः ? इत्यत

आह यत् यस्मात्कारणात् दूरे सन् दूरे अदृश्यतया वर्त्तमानस्त्वं इह अस्मत्सम्बन्धिष्वरणीरूपेषु काष्ठेषु आ भुवः समन्तात् भवेः । मन्थनात् क्षणमात्रेणास्माकं समीपे भवसि, तस्मात् तव दूरतो वर्त्तनम् अस्मभ्यं न रोचते । इहाभुवः इति इहाभव इति च पाठौ ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वना) वनोंको (कायमानः) इच्छा करता हुआ भी (त्वम्) तू (यत्) जो, उनको त्यागकर (मातॄः) मातारूप (अपः) जलोंको (अजगन्) प्राप्त हुआ है अर्थात् जलोंमें प्रविष्ट होकर शान्तभावसे स्थित है (तत्) तिससे (ते) तेरा (निवर्त्तनम्) तहाँ अत्यन्त वास (न) नहीं (प्रमृषे) सहाजाता है, (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) अदृश्यरूपसे रहकर भी (इह) इन हमारे अरणी काष्ठों में (आभुवः) सब ओरसे प्रकट होजाते हो । अर्थात् मथन करनेपर आप क्षणमात्रमें हमारे समीप आजाते हैं, इस कारण आपके दूर रहनेको हम नहीं सहसकते, क्योंकि-आपके विना तो कल्याणकारी यज्ञक्रिया ही लुप्त हो जायगी ॥ ९ ॥

२ २र ३ १२ ३ २ ३१ २ ३ १ २
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥

अथ दशमी । कण्व ऋषिः । छ० बृहती । दे०अग्निः । हे अग्ने ज्योतिः प्रकाशरूपं शश्वते बहुविधाय यजमानाय मनुः प्रजापतिः निदधे देवयजनदेशे स्थापितवान् । हे अग्ने ! त्वम् ऋतजातः ऋतेन यज्ञेन निमित्तभूतेनोत्पन्नः उक्षितः हविर्भिस्तर्पितः सन् कण्वे एतन्नामके महर्षौ मयि दीदेथ दीप्तवानसि । यम् अग्निं कृष्टयः मनुष्याः नमस्यन्ति नमस्कुर्वन्ति स त्वमिति पूर्वत्रान्वयः ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ज्योतिः) प्रकाशरूप (त्वाम्) तुझको (शश्वते) अनेक प्रकारके यजमानके अर्थ (मनुः) प्रजापति (निदधे) देवयजन स्थानमें स्थापन करताहुआ (ऋतजातः) यज्ञके निमित्तसे उत्पन्न हुआ (उक्षितः) हवियोंसे तृप्त हुआ (कण्वे) कण्वके विषैं (दीदेथ) दीप्त हुए हो (यम्) जिसको (कृष्टयः) मनुष्य (निमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः

---

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उद्धा सिंचध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते १

अथ षष्ठे खण्डे—सेयं प्रथमा। वाशिष्ठ ऋषिः। छ० बृ०। दे० अग्निः द्रविणोदाः धनानां दाता देवः अग्निः युष्मदीयां पूर्णाम् हविषा आसिक्तम् आसिक्तां च स्रुचं विवष्टु कामयताम्। अतः उत्सिञ्चध्वं वा सोमेन पात्रम्। उपपृणाध्वं वा सोमं वाशब्दौ समुच्चयार्थौ। ध्रुव ग्रहेण होत्रचमसं पूरयत च अग्नये सोमं प्रयच्छत चेत्यर्थः आदिद् अनन्तरमेव देवः अग्निः वः युष्मान् ओहते वहति। विवष्टु विवष्टी इति पाठौ॥ १॥

(द्रविणोदाः) धनोंका दाता (देवः) अग्निदेवता (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्) हविसे पूर्ण (आसिक्तम्) चारों ओर से सिंचित (स्रुचम्) स्रुक्को (विवष्टु) चाहो (वा) और (उत्सिञ्चध्वम्) सोमसे पात्र को सींचो (वा) और (उपपृणाध्वम्) होताके चमसको सोमसे पूर्ण करो अर्थात् अग्निके निमित्त सोम अर्पण करो (आदित्) इसके अनन्तर ही (देवः) अग्नि (वः) तुम्हें (ओहते) आहुति पहुँचाकर पूर्ण मनोरथ करता है॥ १॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा वीरं नर्य्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥

अथ द्वितीया। अस्या उत्तरस्याश्च कण्व ऋषिः। छ० बृहती। दे० अग्निः। ब्रह्मणस्पतिः देवः प्रैतु अस्मान् प्राप्नोतु अस्मान् प्राप्नोतु। सूनृता देवी प्रियसत्यभूता वाग्देवता प्रैतु अस्मान् प्राप्नोतु। देवाः ब्रह्मणस्पत्यादयो देवताः वीरं शत्रुं निःशेषेण दूरे प्रेरयन्तु। तं नर्यं मनुष्येभ्यो हितम्। पङ्क्तिराधसं ब्राह्मणोक्तहविषा पंक्त्यादिभिः समृद्धं यज्ञं प्रति न अस्मान् अच्छ आभिमुख्येन नयन्तु प्रापयन्तु॥२॥

(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति देवता (प्रैतु) प्राप्त हो (सूनृता) सत्य और प्रिय (देवी) वाग्देवता (प्रैतु) हमें प्राप्त हो (देवाः) ब्रह्मणस्पति आदि देवता (वीरम्) शत्रुको [दूरे] निःशेषभाव से दूर करें। तिस (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारी (पंक्तिराधसम्) ब्राह्मणोक्त हवि करके पंक्ति आदि के द्वारा सम्पन्न हुए (यज्ञम्) यज्ञ के समीप (नः) हमें (अच्छा) अभिमुख करके (नयन्तु) पहुँचावें॥२॥

३ २ ३ १ २ ३२३ १ २ ३ १ ३र ३ २
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
३ १ १र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे

अथ तृतीया । ऋषिः स एव । हे यूप ! यद्वा, यूपात्मकदारुनिष्ठाग्ने नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय ऊर्ध्वः उन्नतः तिष्ठा तिष्ठ । सविता देवः न यथा सूर्य्यो दिव उन्नतस्तिष्ठति, तद्वत् ऊर्ध्वः उन्नतः सन् वाजस्य अन्नस्य सनिता दाता भविष्यसि । यद् यस्मात् कारणात् अञ्जिभिः यज्ञेन यूपमञ्जद्भिः वाघद्भिः यज्ञं वहद्भिः ऋत्विग्भिः सह विह्वयामहे । अन्नस्य दानाय त्वां विशेषेणाह्वयामः, तस्मादन्नस्य दाता भवेति पूर्वत्रान्वयः ॥ ३ ॥

हे यूपकाष्ठस्थित अग्निदेव (नः) हमारी (ऊतये) रक्षाके निमित्त (ऊर्ध्वः) ऊँचा होकर (सुतिष्ठा) सुन्दर प्रकार से स्थित हो (सविता, देवः न) सूर्य देवताकी समान (ऊर्ध्वः) ऊँचे पद पर स्थित होता हुआ (वाजस्य) अन्नका (सनिता) देनेवाला हो (यत्) क्योंकि (अञ्जिभिः) यज्ञसे यूपको अञ्जित करने वाले (वाघद्भिः) यज्ञको समाप्ति पर पहुँचानेवाले ऋत्विजों के साथ (विह्वयामहे) आह्वान करते हैं अर्थात् हम अन्नदान के लिये आपसे प्रार्थना करते हैं, इसकारण आप हमें अन्नदान दीजिये ॥ ३ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
प्र यो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत् । स
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वीरं धत्ते अग्न उक्थश ्सिनं त्मना सहस्रपोषिणम्

अथ चतुर्थी । सौभरिर्ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । हे वसो वासकाग्ने ! त्वां ये तव स्तोता राये धनार्थं प्रानिनीषति प्रणेतुमिच्छति यः मर्त्तः मनुष्यः ते तुभ्यं दाशत् हवींषि प्रयच्छति । सः मनुष्यः उक्थशंसिनम् उक्थानां शस्त्राणां शंसितारम् त्मना आत्मनैव सहस्रपोषिणं बहुधनम् वीरं पुत्रं धत्ते धारयति । प्र योराये निनीषति प्रयं राये निनीषसि इति पाठौ ॥ ४ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) अग्निदेव ! (यः) जो तुम्हारा भक्त (राये) धनके निमित्त (प्रनिनीषति) तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (ते) तुम्हारे अर्थ (दाशत्) हवि देना चाहता है (सः) वह मनुष्य (उक्थशंसिनम्) वेदपाठी (त्मना)

अपने द्वारा (सहस्रपोषिणम्) सहस्रों मनुष्योंका पालन करनेवाले अर्थात् बहुधनी (वीरम्) पुत्रको (धत्ते) धारण करता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्। अग्निꣳ
३ २ ३ १ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यꣳ समिदन्यं इन्धते ५

अथ पञ्चमी । कण्व ऋषिः । छ० बृ० । दे० अग्निः । हे ऋत्विग्यजमानाः देवयतीनां देवान् कामयमानानां पुरूणां बहूनां विशां प्रजारूपाणां वः युष्माकमनुग्रहार्थं यह्वं महान्तम् अग्निं, सूक्तेभिः, सूक्तरूपैः वचोभिः, वाक्यैः प्रवृणीमहे । अन्ये इत् अन्येऽप्यृषयः यम् एनमग्निं समिन्धते सम्यग्दीपयन्ति तमाग्निमिति पूर्वत्रान्वयः । वचोभिर्वृणीमहे इति । अन्य इन्धतम् इति च छन्दोगाः । वचोभिरीमहे इति अन्यइच्छते इति च बह्वृचाः ॥ ५ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (देवयतीनाम्) देवताओंकी शरण जाने वाले (पुरूणाम्) बहुतसे (विशाम्) प्रजाके ऊपर (वः) तुम्हारे, अनुग्रहके निमित्त (यह्वम्) महान् (अग्निम्) आगनको (सूक्तेभिः) सूक्त रूप (वचोभिः) वाणियोंसे (वृणीमहे) आराधना करते हैं (अन्य, इत्) अन्य ऋषि भी (यम्) जिस अग्निको (समिन्धते) भले प्रकारसे दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अयमग्निः सुवीर्य्यस्येशे हि सौभगस्य ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ।६।

अथ षष्ठी । अभिनोत्कीलः स्तौति । छ० बृहती । दे० अग्निः । अयम् यजनीयत्वेनांगुल्या निर्दिश्यमानोऽग्निः सुवीर्य्यस्य शोभनसामर्थ्योपेतस्य सौभगस्य, त्वम् ईशे हि ईष्टे खलु । ईश्वरो भवसि सर्वस्य बलारोग्यहेतुतया सौभाग्यकारित्वात् तथा गोमतः गवादिपशुयुक्तस्य स्वपत्यस्य शोभनापत्यस्य रायः धनस्य ईशे ईष्टे, पुत्रपश्वाद्युद्देशेन क्रियमाणकर्मफलसम्पादकत्वेन तत्स्वामित्वात् । तथा एवम्भूतोऽग्निः वृत्रहथानां हननं हथः शत्रुभूतपापविनाशानामपि ईशे त्वयि समर्पित कर्मणामस्माकं त्वत्प्रसादात् पापक्षयो भवतीति तस्यापि स्वामी । ईशीहे इति ईशेमहे इति च पाठौ ॥ ६ ॥

(अयम्) यह यजन करनेयोग्य (अग्निः) अग्नि (सुवीर्यस्य) शोभन सामर्थ्ययुक्त (सौभगस्य) सौभाग्यका (हि) निश्चय (ईशे) स्वामी है, अर्थात् सबोंको बल और आरोग्यका दाता होनेसे सौभाग्यदाता है (गोमतः) गौ आदि पशुयुक्त (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तानका (रायः) धनका (ईशे) स्वामी है (वृत्रहथानाम्) शत्रुभूत पापोंके विनाशों का (ईशे) स्वामी है, अर्थात् हे अग्ने ! हम अपने किये कर्म तुम्हें समर्पण करते हैं, तुम्हारे अनुग्रह से हमें धन, जन, पशु आदि की प्राप्ति होती है और हमारे पापोंका भी नाश होता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳहोता नो अध्वरे ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्य्यम् ७

अथ सप्तमी । वशिष्ठ ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । हे अग्ने ! नः अस्माकम् अध्वरे यज्ञे त्वं गृहपतिः यजामानोऽसि । त्वं होता देवानामाह्वतासि । हे विश्ववार ! सर्वैर्वरणीयाग्ने ! त्वं पोता एतन्नामक ऋत्विगसि । अतः प्रचेताः प्रकृष्टमतिस्त्वं वार्यं वरणीयं हविः यक्षि यज । यासि च अस्माकं धनं प्रापय । यक्षि यासि च इति छन्दोगाः । यक्षि वेषि च इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(अग्ने) अग्निदेव ! (नः) हमारे (अध्वरे) यज्ञमें (त्वम्) तुम (गृहपतिः) यजमान (त्वम्) तुम (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले [असि] हो (विश्ववार) हे सबके आराधन करनेयोग्य अग्ने (त्वम्) तुम (पोता) पोता नामवाले ऋत्विक् हो (प्रचेताः) उत्तम (वार्यम्) वरणीय हविको (यक्षि) यजन करो (च) और (यासि) हमको धन प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपां नपातꣳ
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुभगꣳ सुदꣳससꣳ सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । विश्वामित्रः स्तौति । हे अग्ने ! सखायः सौभाग्यादिहविःप्रदानेनोपकारकत्वात् मित्राणि मर्त्तासः मनुष्याः ऋत्विजो वयम् अपां नपातम् अपां नप्तारं सुभगं शोभनधनयुक्तम् । सुदंससं सुकर्माणं सुप्रतूर्त्तिं शोभनप्रतरं कर्मानुष्ठातृभिः सुखेन गन्तव्यम्,

अनेहसम् उपद्रवरहितम्। एतादृशम्त्वाम् ऊतये रक्षणाय ववृमहे वृणीमहे ॥ ८ ॥

हे अग्ने! (सखायः) सोम घृतादि हवि देनेके कारण उपकारी होनेसे मित्ररूप (मर्त्तासः) मनुष्य, हम ऋत्विज् (अपां नपातम्) जलोंके नप्ता (सुभगम्) शोभन धनयुक्त (सुदंससम्) श्रेष्ठ कर्म करनेवाले (सुप्रतूर्त्तिम्) कर्मानुष्ठान करनेवालों को सुखपूर्वक प्राप्त होने योग्य (अनेहसम्) उपद्रवरहित तुम्हें (ऊतये) रक्षाके लिये (ववृमहे) करते हैं ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृह-
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पतिं दधिध्वम् । इडस्पदे नमसा रातहव्य ँ
३ १ २ ३ २ ३क २र
सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

अथ सप्तमखण्डे। सेयं प्रथमा। श्यावाश्वऋषिः वामदेवो वा। छ० त्रिष्टुप्। अग्निः देवता। हे ऋत्विजः! आ जुहोता अग्निमाह्वयत किञ्च हविषा मर्जयध्वं मृडयध्वं सुखयध्वम्। डकारस्य जकारश्छान्दसः। अपि च, इडः इलायाः पदे उत्तरवेद्यामित्यर्थः। होतारं देवानामाह्वातारम्। गृहपतिं गृहपालकं अग्निम्। निदधिध्वं निःशेषेण धारयध्वम्। किञ्च नमसा नमस्कारेण हविषा वा युक्तम्। अतएव रातहव्यं दत्तहविष्कम्। पस्त्यानां यज्ञगृहाणां मध्ये। यजतं यजनीयं पूजनीयमग्निम्। सपर्य्यत परिचरत ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो (आजुहोता) अग्निका आह्वान करो (हविषा) हवि करके (मर्जयध्वम्) सुखीकरो (इडः) भूमिकी (पदे) उत्तरवेदी में (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (गृहपतिम्) गृहरक्षक अग्निको (निदधिध्वम्) पूर्णरूपसे स्थापन करो (नमसा) नमस्कार वा हविसे युक्त (राहतव्यम्) दिया है हवि जिसे ऐसे (पस्त्यानाम्) यज्ञगृहों में (यजतम्) पूजनीय अग्निको (सपर्यता) आराधन करो ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरा-

३ २३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
वन्वेति धातवे। अनूधा यदजीजनदधा चिदा
३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २
ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वार्ष्टिहव्यो वा वार्षहव्यो वेति ऋषिः । जगतीछन्दः अग्निः देवता। शिशोः शिशुभूतस्य। अत एव तरुणस्य अग्नेः। वक्षथः वक्षेरौणादिकोऽथस् प्रत्ययः । हविर्वहनं चित्रइत् आश्चर्यभूतमेव । य जातोऽग्निः । मातरौ सर्वस्य निर्मात्र्यौ सर्वस्य मातृभूते द्यावापृथिव्यावरणौ वा । धातवे धेट् पाने तुमर्थे इति (३,४,९) तवेन् प्रत्ययः स्तनपानाय न अन्वेति न गच्छति। इण् गतौ लटि उपसर्गेण समासः। तिङि चोदात्तवतीति (८,१,७१) गतेर्निघातः। अनूधाः नञा बहुव्रीहिसमासः, तस्मिन् अनूङ्स्त्रियामिष्टत्वात् अत्रानङ्भावः, प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ऊधोरहितः सन् अयं लोकोऽसौ लोकश्च। यत् यदि। एममग्निम्। अजीजनत् जनयेत्, तर्हि स्तनपानाय न गच्छतीति युक्तम्, तथा न भवति, किन्तु द्यावापृथिव्यौ हि सर्वेषां कामदुघे खलु। तथापि न याति । तस्मादस्य हविर्वहनं विचित्रम्। अध चित् उत्पत्त्यनन्तरमेव । सद्यः तदानीमेव। शीघ्रं, महि महत्त्वम्, दूत्यं दूतस्य भागकर्मणी (४,४,१२०) इति कर्मणि यत् प्रत्ययः, दूतकर्म चरन्। आचरन्। आववक्षत् देवान् प्रति हवींष्यावहति ॥ २ ॥

(शिशोः) बालरूप (तरुणस्य) तरुण अग्निका (वक्षथः) हवि को पहुँचाना (चित्र इत्) आश्चर्यभूत है (यः) जो उत्पन्न हुआ अग्नि (मातरौ) सबके निर्माता वा सबके माता समान द्यावापृथिवीको [illegible] दोनों अरणियों को (धातवे) स्तन पीने के लिये (न, अन्वेति) नहीं प्राप्त होता है (यद्) जो (अनूधाः) ऐनरहित यह लोक (अजीजनत्) इस अग्नि को उत्पन्न करे [तब यदि स्तन पीनेको न जाय तो ठीक है, परन्तु सबकी अभिलाषा पूरी करनेवाले द्यावापृथिवी उत्पन्न करते हैं फिर भी यह स्तन पीनेको नहीं जाता अतः इसका हविर्वहन आश्चर्य है] (अधचित्) उत्पत्तिके अनन्तर ही (सद्यः) तत्काल (महि) बड़ेभारी (दूत्यम) दूतकर्मको (चरन्) करता हुआ (चरन्) देवताओं को हवि पहुँचाता है ॥ २ ॥

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं

२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
विशस्व। संवेशनस्तन्वे ३चारुरेधि प्रियो देवानां
३२ ३ १ २
परमे जनित्रे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। बृहदुक्थ ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । दे० अग्नि। एतया बृहदुक्थो वाजिनं नाम स्वपुत्रं मृतं वदति। हे मृतपुत्र! ते तव। इदम् उपरि ज्योतिषेति वक्ष्यमाणत्वात्, अत्रेदं शब्देन ज्योतिरभिधीयते इदं ज्योतिरग्न्याख्यम् एकम् एकोऽशः अतः ते तव देहगताग्न्यंशेन बाह्यमग्निं संविशस्व सङ्गच्छस्व। तथापरः ऊ अन्योऽपि ते तव एकं वाय्वाख्योऽशः तेन च प्राणवाय्वाख्येन अंशेन बाह्यं वायुं संविशस्व शरीराग्निप्राणवायोः बाह्याग्निवाय्वोश्चैकत्वादंशत्वमिति भावः तथा, तृतीयेन ज्योतिषा आदित्याख्येन तेजसा तवात्मना संविशस्व सूर्य्यगतात्मचैतन्ययोरभेदादंशत्वम्,योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं सूर्य्य आत्मा जगतः इत्यादिश्रुतेः आत्मनः सूर्य्यप्रवेशो युक्तः, तन्वे ततवे पुनः शरीरग्रहणाय चारुः कल्याणो भूत्वा तस्मिन् सूर्य्ये संवेशनः सम्यक् प्रवेष्टा। एधि भव। कीदृशस्त्वम्? प्रियः तेन सह प्रीयमाणः। कीदृशि तस्मिन्? देवानां परमे उत्तमे। जनित्रे जनके। देवानां ह्येतत् परमं जनित्रं यत् सूर्य्यः इति हि श्रुतिः॥ ३॥

हे मृत प्राणिन्! (ते) तेरी (इदम्) यह अग्नि नामक ज्योति (एकम्) एक अंश है, अतः अपने देहव्यापी अग्निके अंशसे बाहर के अग्निमें मिल जा (ऊ) और (ते) तेरा (एकम्) एक वायु नामक अंश है, उस प्राणवायु नामक अंशसे बाहरके वायुमें मिल जा,शरीर में को अग्नि और प्राणवायु तथा बाहर के अग्नि और वायु एकरूप हैं, इसकारण अंश कहा (तृतीयेन) तीसरे (ज्योतिषा) आदित्य-नामक तेजसे अपने आत्माको (संविशस्व) मिला, क्योंकि—सूर्य-गत चैतन्य और आत्मचैतन्यमें कोई भेद नहीं है (तन्वे) फिर शरीर ग्रहण करनेके निमित्त (चारुः) कल्याणरूप होकर (प्रियः) उसके साथ प्रीति करता हुआ (देवानाम्) देवताओं के (परमे) उत्तम (जनित्रे) उत्पादक सूर्य में (संवेशनः) भलेप्रकार प्रवेश करने वाला (एधि) हो॥ ३॥

३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने

३ १ २र ३ १ २र
सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । कुत्स ऋषिः । जगतीछन्दः । अग्निः देवता । अर्हते पूज्याय । जातवेदसे जातानामुत्पन्नानां वेदित्रे, जातप्रज्ञाय जातधनाय वा अग्नये । मनीषया निशितया बुद्ध्या । इमं स्तोमम् एतत् स्तोत्रम् । रथामिव, यथा तक्षा रथं संस्करोति तथा । सम्महेमा सम्यक् पूजितं कुर्मः । अस्य अग्नेः संसदि सम्भजने । नः अस्माकम् । प्रमतिः प्रकृष्टा बुद्धिः । भद्रा हि कल्याणी समर्था खलु । अतस्तया बुद्ध्या कुर्म इत्यर्थः । हे अग्ने ! तव सख्ये, अस्माकं त्वया सह सखित्वे सति । वयं मा रिषाम हिंसिता न भवाम । अस्मान् रक्षेत्यर्थः ॥ ४ ॥

(अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) प्राणिमात्रके ज्ञाता (जातवेदसे) अग्नि के अर्थ हम (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्रको (रथं इव) जैसे तक्षा रथका संस्कार करता है तैसे (संमहेम) सम्यक् प्रकारसे पूजित करते हैं (अस्य) इस अग्नि के (संसदि) सम्यक् प्रकार सेवन में (नः) हमारी (प्रमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (भद्रा, हि) निःसन्देह कल्याणमयी और समर्थ होय (अग्ने) हे अग्निदेव (तव, सख्ये) तुम्हारे साथ हमारा मित्रभाव होने पर हम (मा रिषामः) किसी से कष्ट न पावें अर्थात् आप हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

३ १२ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३२३२उ
मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत
३ २३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
आ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी । द्वयोर्भारद्वाज ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । अग्निः देवता । मूर्द्धानं शिरोभूतम् । कस्य ? दिवः द्युलोकस्य । पृथिव्याः प्रथितायाः भूमेः । अरतिं गन्तारम् । यद्वा गन्तव्यं स्वामिनम् । वैश्वानरं विश्वेषां सर्वेषां नराणां सम्बन्धिनम् । ऋते ऋतमिति सत्यस्य यज्ञस्य वा नाम । निमित्तसप्तम्येषा ऋतनिमित्तम् । आ आभिमुख्येन जातम् सृष्ट्यादावुत्पन्नम् । कविं क्रान्तदर्शिनम् । सम्राजं सम्यग्राजमानम् । यजमानानाम् अतिथिं हविर्वहनाय सततं गन्तारम् । यद्वा, अतिथिवत्पूज्यम् ।

आसन् आसनि आस्यं, द्वितीयार्थे सप्तमी, आस्यभूतम् । अग्निलक्षणमास्येन हि देवा हवींषि भुञ्जते । पात्रं पालारं रक्षकम् । यद्वा, आस्येन धारकम् । एवं गुणविशिष्टं वैश्वानराग्निम् । नः अस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे । देवाः स्तोतार ऋत्विजः, देवा एव वा । आ जनयन्त आभिमुख्येनाजनयन् । अरण्योः सकाशाद् उदपादयन् ॥ ५ ॥

(दिवः) द्युलोकके (मूर्द्धानम्) शिरोभूत (पृथिव्याः) भूमि के (अरतिम्) स्वामी (वैश्वानरम्) सकल पुरुषोंके सम्बन्धी(ऋतम्) सत्य वा यज्ञके साधन (आ) सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए(कविम्) भूत विषयों के ज्ञाता (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान (अतिथिम्) यजमानों का हव्य पहुँचाने के निमित्त निरन्तर गमन करने वाले अथवा अतिथिकी समान पूज्य (आसन्) देवताओं के मुखरूप (पात्रम्) रक्षक अथवा मुखरूप से धारण करनेवाले अग्निको (नः) हमारे यज्ञमें (देवाः) ऋत्विजोंने वा देवताओं ने (आजनयन्त) अरणियों में से उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जन-
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यन्त देवाः । तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजय-
३ १ २र३ १ २ ३ १ २
न्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । भरद्वाज ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । अग्निः देवता । हे अग्ने ! त्वत् त्वत्सकाशात् । उक्थेभिः उक्थैः स्तोत्रैः यज्ञैर्हविर्भिश्च । देवाः स्तोतारः । कामान् आत्मनः व्यजनयन्त विविधं जनयन्ति । तत्र दृष्टान्तः । पर्वतस्य मेघस्य पृष्ठात् उपरिभागात् आपो न आप उदकानि यथा तद्वत् । अपि च, हे गिर्ववाहः ! गीर्भिः स्तुतिरूपाभिः वाग्भिर्वहनीयाग्ने ! भरद्वाजाः स्तोतारः । तं प्रसिद्धम् । त्वा त्वाम् । वाजयन्ति बलिनं कुर्वन्ति । यद्वा । वाजमन्नमिच्छन्ति । अपि च । त्वां सुष्टुतयः शोभनस्तुतिरूपाः । गिरः वाचः । जिग्युः जयन्ति वशीकुर्वन्ति । तत्र दृष्टान्तः । अश्वाः वाहाः आजिन्न संग्रामं यथा शीघ्रं जयन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वत्) तुमसे (उक्थेभिः) स्तोत्र, यज्ञ और हवियों करके (देवाः) स्तोता अपने मनोरथों को (व्यजनयन्त) नानाप्रकार से उत्पन्न करते हैं (पर्वतस्य) मेघके (पृष्ठात्)

ऊपरके भागसे (आपः, न) जलोंको जैसे। और (गिर्ववाहः) स्तुतिरूप वाणियोंके अनुसार चलनेवाले हे अग्ने, स्तुति करनेवाले (तम्) तिस प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (वाजयन्ति) बलवान् करते हैं अथवा तुमसे अन्न चाहते हैं और तुम्हें (सुष्टतयः) सुन्दर स्तुति रूप वेदवाणियें (जिग्युः) वशमें कर लेती हैं (अश्वाः) घोड़े (आजिं, न) जैसे शीघ्र ही संग्रामको वशमें कर लेते हैं ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳ सत्य-
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
यजꣳ रोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता-
१ २ ३ १ २
द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वामदेवो ब्रूते । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । हे ऋत्विग्यजमानाः ! अध्वरस्य यज्ञस्य । राजानम् अधिपतिम् । होतारं देवानामाह्वातारम् । रुद्रं रोरूयमाणं द्रवन्तम्, शत्रून् रोदयन्तं वा । यद्वा, एषा वा घोरा तनूर्यद्रुद्रः इति रुद्रात्मकम् । रोदस्योः द्यावापृथिव्योः सत्ययजं सस्यस्यान्नस्य दातारम् । यद्वा सत्ययजं सत्येन हविषा देवान् यजन्तम् । यद्वा, सत्यस्यानन्द–लक्षणस्य सङ्गमयितारं रोदस्योर्व्याप्य वर्त्तमानम्। हिरण्य–रूपं सुवर्णप्रभम् । एवं विधं अग्निं वः युष्माकम् अवसे रक्षणाय तनयित्नोः तनयित्नुरशनिः सद्याकस्मिकः, तत् सदृशाद् अचित्तात् न विद्यते चित्तं यस्मिन् तदचित्तम्, चित्तोपलक्षित-सर्वेन्द्रियोपसंहारो मरणमिति यावत् तस्मान्मरणात् पुरा प्रागेव आ कृणुध्वं यूयं समन्ताद्धविर्भिरग्निं भजध्वम् ॥ ७ ॥

हे ऋत्विक् और यजमानो ! (अध्वरस्य) यज्ञके (राजानम्) अधिपति (होतारम्) देवताओंका आह्वान करने वाले (रुद्रम्) शत्रुओं को रुलानेवाले (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीके (सत्ययजम्) अन्नके दाता अथवा आनन्दस्वरूप सत्यको प्राप्त कराने वाले (हिरण्यरूपम्) सुवर्णकी समान कान्तिमान् (अग्निम्) अग्निको (वः) तुम्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (तनयित्नोः) वज्रकी समान (अचित्तात्) मरणसे (पुरा) पहिले ही (आकृणुध्वम्) चारों ओरसे हवियोंके द्वारा आराधन करो ॥ ७ ॥

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्धे राजा समर्यो नमोभिः यस्य प्रतीकमाहुतं
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
घृतेन। नरो हव्येभिरीडते सबाध अग्निरग्रमुष-
२
सामशोचि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। वसिष्ठ ऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः। राजा दीप्तः अर्य्यः स्वामी हविषां प्रेरको वा अग्निः नमोभिः स्तुतिभिः सह समिन्धे समिध्यते। यस्य अग्ने प्रतीकं रूपं घृतेन आहुतं भवति। ये च नरः अस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः सञ्जातबाधाः हव्येभिः हव्यैः सार्द्धम् ईडते स्तुवन्ति। सः अग्निः उषसाम् अग्रम् आ अशोचि आ दीप्यते ॥ ८ ॥

(राजा) दीप्त (अर्यः) स्वामी वा हवियोंका प्रेरणा करनेवाला (अग्निः) अग्नि (नमोभिः) स्तुतियोंके साथ (समिन्धते) प्रदीप्त होता है (यस्य) जिस अग्निका (प्रतीकम्) रूप (घृतेन, आहुतम्) घृत करके चारों ओरसे होमा हुआ होता है। और जिसको (नरः) मनुष्य, (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त होकर (हव्येभिः) हवियोंके साथ (ईडते) स्तुति करते हैं। वह (अग्निः) अग्नि (उषसाम्) उषः कालसे (अग्रम्) पहिले (आ अशोचि) सब ओरसे दीप्त होता है ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
रोरवीति। दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे
३ १ २
महिषो ववर्द्ध ॥ ९ ॥

अथ नवमी। त्रिशिरास्त्वाष्ट्रऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः। अग्निः बृहता केतुना प्रज्ञानेन युक्तः सन् आ इदानीं रोदसी द्यावापृथिव्यौ प्रयाति प्रकर्षेण गच्छति। किञ्च, देवानामाह्वानकाले वृषभः इव रोरवीति अत्यर्थं शब्दं करोति। दिवश्चित् अन्तरिक्षलोकस्यापि अन्तात् पर्य्यन्तात् उपमाम् (उपमेत्यन्तिकनाम) मेघस्य समीपम् उदानट् उदश्नुते ज्वलनात्मनादित्यात्मनावस्थितः सन् ऊर्ध्वं व्याप्नोति

अश्नोतेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् । तिपो हल्ङ्याब्दिलोपः । अपां वृष्टिलक्षणानामुदकानाम् उपस्थे उपस्थाने अन्तरिक्षे वैद्युतात्मना महिषः महान् ववर्द्ध वर्द्धते ॥ ९ ॥

(अग्निः) अग्नि (बृहता) बड़े (केतुना) ज्ञान करके युक्त हो (आ) इस समय (रोदसी) द्यावा पृथिवी को (प्रयाति) प्राप्त होता है और देवताओं को बुलाने के समय (वृषभः) वृषभकी समान (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है (दिवश्चित्) अन्तरिक्ष लोकके भी (अन्तात्) समीपसे (उपमाम्) मेघके समीप (उदानट्) प्रकाशमय आदित्यरूप होता हुआ ऊपरको फैल जाता है (अपाम्) वृष्टिरूप जलों के (उपस्थे) स्थान अन्तरिक्षमें विद्युत्रूप से (महिषः) महान् (ववर्द्ध) बढ़ता है ॥ ९ ॥

३ २उ ३ १ २ ३२ ३ १ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वसिष्ठऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । नरः नेतार ऋत्विजः प्रशस्तं प्रकर्षेण स्तुतं दूरे दृशं दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यन्तं वा गृहपतिं गृहाणां पालकम् अथव्युं अथर्वतिर्गत्यर्थः अगम्यम् अतनवन्तं वा हस्तच्युतं हस्तेन जातम्, अरण्योः विद्यमानम् अग्निः दीधितिभिः अंगुलिभिः जनयत जनयन्ति । [अत्र यास्कः—दीधितयोऽगुलयो भवन्ति, धीयन्ते कर्मस्वरणी प्रत्यृत एने अग्निः समरणाज्जायत इति वा, हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्या जनयन्त प्रशस्तं दूरे दर्शनं गृहपतिमननवन्तम् (५,२,११)] इति ॥ १० ॥

(नरः) ऋत्विज् (प्रशस्तम्) अत्यन्त स्तुति किये हुए (दूरेदृशम्) दूर से दीखते हुए (गृहपतिम्) घरों के रक्षक (अथव्युम्) अगम्य (हस्तच्युतम्) हाथों से उत्पन्न हुए अग्निको (दीधितिभिः) अंगुलियों से (जनयत) उत्पन्न करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवाय-
२ ३ १ २ ३ १ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३
तीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २
प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

अथ अष्टमखण्ड । प्रथमा । बुधश्च गविष्ठिरश्च ऋषी । त्रिष्टुप्-छन्दः । दे० अग्निः । अयम् अग्निः जनानाम् अध्वर्य्यादीनां समिधा समिद्भिः अबोधि प्रबुद्धोऽभूत् । धेनुमिव अग्निहोत्रार्थं धेनुं प्रति यथा प्रातर्बुध्यते तद्वद् आयतीम् आगच्छन्तीम् उषासम् प्रति उषःकाले इत्यर्थः । अथ प्रबुद्धस्याग्नेः भानवः रश्मयो ज्वालाः यह्वाः महान्तः वयां शाखां प्रोज्जिहानाः प्रोद्गमयन्तो वृक्षा इव । यद्वा महान्तः प्रोज्जिहानाः स्वाधिष्ठानं त्यजन्तो भानवः नाकम् अन्तरिक्षम् अच्छ अभिमुख्येन प्र सस्रते प्रसरन्ति । सस्रते सिस्रते इति पाठौ ॥ १ ॥

(अग्निः) यह अग्नि (जनानाम्) अध्वर्यु आदिकोंकी (समिधा) समिधाओंसे (अबोधि) प्रज्वलित हुआ (धेनुम, इव) अग्निहोत्र की गौके निमित्त जैसे प्रातःकालमें जागा जाता है तैसे (आयतीम्) आते हुए (उषासम्) उषःकालके समय सावधान रहना होता है । और प्रज्वलित हुए अग्निकी (भानवः) लपटें (यह्वाः) बड़े (वयाम्) शाखाओंको फैलाते हुए वृक्षोंकी समान (प्रोज्जिहानाः) अपने स्थान को त्यागती हुई (अच्छ) भलेप्रकार (नाकम्) अन्तरिक्ष पर्यन्त (प्रसस्रते) फैलती हैं ॥१॥

२ ३ १२ ३१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमुरं पुरां दर्मा-
२ १२ ३ २ ३ १ २र ३ १२ ३
णम् । नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं
१ २र ३ २
न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वत्सप्रिर्ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । अग्निः देवता । हे स्तोतः ! त्वम् जयन्तम् असुरसेनानां जेतारं महां महान्तं विपोधां मेधाविनः धर्त्तारं मूरैः मूढराधिष्ठितानां पुरां शरीराणां दर्माणम् आदरेण रक्षकम् अमुरम् अमूढमग्निं प्रभूः स्तोतु प्रभव समर्थो भव गीर्भिः स्तुतिभिः वना वननीयं सम्भजनीयं नयन्तं धनानि प्रापयन्तं वर्मणा कवचस्थानीयज्वालयोपेतं हरिश्मश्रुं न हरितवर्णकेशमयमिव धनर्चिं धार्य्यमाणां क्रियमाणां स्तोत्रं यस्य तम्, प्रीणनकरस्तोत्रं वा अग्निमुद्दिश्य धियं परिचरणरूपं कर्म धाः विधेहि । मूरैः मूराः इति च पाठौ । नयन्तं गीर्भिर्वना धियन्धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम्

इति छन्दोगाः । नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

हे स्तुति करनेवाले ! तू (जयन्तम्) असुरसेनाको जीतनेवाले (महाम्) बड़े (विपोधाम्) मेधावियोंको धारण करनेवाले (सूरेः) मूर्द्धों करके अधिष्ठित (पुराम्) शरीरोंके (दर्माणम्) आदरके साथ रक्षक (अमुरम्) अमूढ़ अग्निको (प्रभूः) स्तुति करनेको समर्थ हो (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (वना) आराधना करने योग्य (नयन्तम्) धनोंको प्राप्त करानेवाले (वर्मणा) कवचसमान लपटोंसे युक्त (हरिश्मश्रुं न) हरितवर्ण केशवालेकी समान (धनार्चितम्) प्रसन्न करनेवाला है स्तोत्र जिसका ऐसे अग्निके निमित्त (धियम्) पूजन क्रिया को (धाः) करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १२ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी

१ २ २ ३ २ ३ १ २र

द्यौरिवासि । विश्वा हि माया अवसि स्वधा-

३ १ २ ३२ ३ १ २

वन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । भरद्वाज ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । पूषा देवता । हे पूषन् ! ते तव शुक्रं शुक्लवर्णम् अन्यत् एकमहर्भवति वासरात्मकम्, तथा ते तव सम्बन्धि यजतं याजिरत्र सङ्गतिकरणे वर्त्तते यजनीयं प्रकाशेन सङ्गमनीयं स्वतः कृष्णवर्णम् अन्यत् एकमहर्भवति रात्र्याख्यम् । इत्थं विषुरूपे शुक्लकृष्णतया नानारूपे अहनी तव महिम्ना निष्पद्येते । यद्वा, हे पूषन् ! त्वदीयमन्यद्रूपं शुक्रं निर्मलं दिवसस्योत्पादकम्, त्वदीयमन्यदेकं रूपं यजतं केवलं यजनीयं न प्रकाशकं रात्रेरुत्पादकम् । अतएव विषुरूपे विषमरूपे अहनी अहश्च रात्रिश्च भवतः । अहोरात्रयोर्निर्माणे सूर्य्य एव कर्त्ता । कथमस्य प्रसक्तिरिति ? तत्राह, द्यौरिवासि यथा द्यौरादित्यः प्रकाशयिता तथा त्वं प्रकाशकोऽसि । कुतः ? इत्यत आह, हे स्वधावन् ! अन्नवन् पूषन् ! विश्वाः सर्वाः मायाः प्रज्ञाः हि यस्मात् कारणाद् अवसि रक्षसि, अतः कारणात् त्वं सूर्य्य इव भवसीत्यर्थः । तादृशस्य ते तव भद्रा कल्याणी रातिः दानम् इह अस्मासु अस्तु भवतु । यास्कस्त्वाह—शुक्रं तेऽन्यल्लोहितं तेऽन्यद्यजतं तेऽन्यद्यज्ञियं तेऽन्यद्विषमरूपे ते अहनी कर्मणा द्यौरिव चासि सर्वाणि च प्रज्ञानान्यवस्यन्नन्नवन् (१२,२,६) इति । स्वधावन् स्वधावः इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(पूषन्) हे पूषा देवता (ते) तुम्हारा (शुक्रम्) शुक्ल वर्ण (अन्यत्) एक दिन होता है, तथा (ते) तुम्हारा (यजतम्) प्रकाशसे जानने योग्य स्वयं कृष्णवर्ण (अन्यत्) रात्रिनामक अन्य दिन होता है, इसप्रकार (विषुरूपे) शुक्ल कृष्ण होनेसे नानाप्रकारके (अहनी) दिन तुम्हारी महिमासे होते हैं। अथवा हे पूषन्! तुम्हारा एकरूप निर्मल है जो दिन होनेका कारण है और दूसरा एक रूप है जो केवल यजनीय है प्रकाशक नहीं है, रात्रिका उत्पादक है, इसकारण ही विषुव कहिये विषमरूप दिन और रात होते हैं, क्योंकि—दिन और रात्रिका कर्त्ता सूर्य ही है (द्यौःइव) आदित्यकी समान प्रकाशक (असि) है (हि) क्योंकि (स्वधावन्) हे अन्नवाले पूषादेव ! (विश्वाः) सकल (मायाः) प्रज्ञाओंको (अवसि) रक्षा करता है, इस कारण तू सूर्यकी समान ही है, ऐसे (ते) तेरा (भद्रा) कल्याणरूप (रातिः) दान (इह) हमारे विषयमें (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
इडामग्ने पुरुदंसꣳसनिं गोः शश्वत्तमꣳ
२र १ २ ३ १ २र ३ २उ
हवमानाय साध। स्यान्नः सूनुस्तनयो विजा-
३ १ २ ३ १ २ ३ २
वाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। विश्वामित्र ऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः। हे अग्ने! पुरुदंससं दंसः वेषः इति (नि० २२, १. ३) कर्मनामसु पठितत्वाद् दंसः-शब्दः कर्मवाची पुरूणि बहूनि दंसांसि कर्माणि यस्याः सा, तां बहुकर्माणां गोः सनिं गवादिपशूनां सम्पादयित्रीम् इडाम् एतन्नामिकां गोरूपां देवतां शश्वत्तमं निरन्तरं हवमानाय यजमानाय मह्यं साध साधय। किञ्च, नः अस्माकं सूनुः पुत्रः तनयः पौत्रः स्यात् भवतु, इति ते तव या सुमतिः शोभना बुद्धिः सा विजावा अवन्ध्या सती अस्मे अस्माकं भूतु भवतु ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (पुरुदंसम्) बहुत हैं काम जिसके ऐसी (गोः) गौओंकी (सनिम्) देनेवाली (इडाम्) इडानामक गोरूप देवताको (शश्वत्तमम्) निरन्तर (हवमानाय) हवन करते हुए मुझ यजमान के अर्थ (साध) साधन कर, और (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र (तनयः) पौत्र (स्यात्) हो, ऐसी जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि है वह (विजावा) सफल (अस्मे) हमारी (भूतु) हो ॥ ४ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र होता जातो महान्नभोविन् नृषद्मा सीददपां
२ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
विवर्त्ते । दधद्यो धायी सुते वयाᳬसि यन्ता
२र ३ १ २ ३ २
वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । वत्सप्रिर्ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । यः नृषद्मा अग्निः अपाम् अन्तरीक्षनामैतत् (नि० १, ३, ८) अन्तरिक्षस्य विवर्त्ते विवर्त्तने उत्सङ्गे वैद्युतरूपेण निषण्णोऽभूत्, स इदानीं होता यजमानानां होमनिष्पादको जातः प्रादुर्भूतः महान् गुणैः पूज्यः । नभोवित् अन्तरिक्षस्य ज्ञाता यतस्तत्रोत्पन्नः अतस्तस्य ज्ञाता नृषद्मा नृषु सीदन् सदेर्मनिन्, नित्स्वरः (६, १, ११७) प्रसीदत् वेद्यां प्रसीदति । अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णात् इति हि निगमः । यद्वा, अपां पयसाम् इत्यर्थः, कर्मणामुपस्थे उपस्थाने समीपे वेद्यामुक्तलक्षणः सन् । अथवा, अपाम् उदकानां विवर्त्ते मध्ये योऽग्निर्हविर्वोढुमसहमानो निगूढः सन् स देवैः पुनः प्रार्थितः उक्तविधः सन् वेद्यां प्रसीदति, सोऽग्निः दधत् हवींषि धारयन् सुधायी वेद्यां निहितोऽभूत् । हे स्तोतः सोऽग्निः विधते परिचरते ते तुभ्यं वयांसि अन्नानि वसूनि धनानि च यन्ता नियमयिता भवतु । किञ्च, तनूपाः, तन्वः पाता च भवत्विति । शेषः । नृषद्मा नृषद्वा इति च पाठौ । दधद्यो धायी सुते इति छन्दोगाः दधिर्यो धायी स ते इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(यः) जो (नृषद्मा) होताओंके समीप स्थानवाला अग्नि (अपाम्) अन्तरिक्षके (विवर्त्ते) प्रदेश में विद्युत्‌रूप से स्थित हुआ, वह इस समय (होता) यजमानके होमको सुसिद्ध करने वाला (जातः) हुआ है (महान्) गुणोंसे पूजनीय (नभोवित्) अन्तरिक्षका ज्ञाता (प्रसीदत्) वेदीमें प्रसन्न होता है वह (दधत्) हवियोंको धारण करता हुआ (सुधायी) वेदीमें सम्यक् प्रकारसे स्थापन कियागया। हे स्तोतः ! वह अग्नि (विधते) उपासना करते हुए (ते) तेरे अर्थ वयांसि अन्नोंको (वसूनि) धनोंको (यन्ता) प्रेरणा करने वाला (तनूपाः) शरीरका रक्षा करने वाला [भवतु] हो ॥ ५ ॥

२ ३ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुᳬसः कृष्टीनामनु-

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

माध्यस्य । इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा

१ २

वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वशिष्ठ ऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः असुरस्य बलबतः पुंसः वीरस्य पौंस्यमिति वीर्यमुच्यते तथा च यास्कः, पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वेति कृष्टीनां जनानाम् अनुमाद्यस्य स्तुत्यस्य तवसः बलवतः इन्द्रस्येव तस्याग्नेः प्रशस्तम् उत्कृष्टं सम्राजं सम्यग्राजमानं स्वरूपं प्रस्तौतु। तथा वन्दद्वारा वन्दनं वन्दः स्तुतिः, तद्द्वाराणि स्तुतिप्रमुखानि वन्दमाना सर्वैः स्तूयमानानि कृतानि कर्माणि प्र विवष्टु प्रकर्षेण कामयताम्। प्रसम्राजमसुरस्य प्रशस्तम् इति छन्दोगाः। प्रसम्राजो असुरस्य प्रशस्तिम् इति बह्वृचाः। वन्दद्वारा वन्दमानां विवष्टु इति, वन्दे दारुं वन्दमानो विवच्मि इति च पाठौ ॥ ६ ॥

(असुरस्य) बलवान् (पुंसः) वीरके (कृष्टीनाम्) मनुष्योंके (अनुमाद्यस्य) स्तुतियोग्य (तवसः) बलवान् (इन्द्रस्य इव) इन्द्र की समान उस अग्नि के (प्रशस्तम्) उत्तम (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान स्वरूपको [प्रस्तौतु] स्तुति करो (वन्दद्वारा) स्तुति आदि (वन्दमाना) सबके बखाने हुए कर्मोंको (प्रविवष्टु) अधिकतासे चाहो ॥ ६ ॥

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३क२र ३ २

अथ सप्तमी। विश्वामित्र ऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः। जातवेदाः सर्वविषयज्ञानवान् अयम् अग्निः अरण्योर्निहितः देवैर्यज्ञार्थं नितरां स्थापितः। तत्र दृष्टान्तः, गर्भः इव इति यथा गर्भो गर्भिणीभिः स्त्रीभिः सुभृतः सुष्ठु धार्य्यते तद्वत्। स तादृशोऽग्निः हविष्मद्भिः सम्भृतहविष्कैः अत एव जागृवद्भिः कर्मणि जागरूकैः मनुष्येभि मनुष्यैरस्माभिः दिवे दिवे प्रत्यहं स्तुत्यर्थं ईड्यः स्तुतिरूपाभिर्गीर्भिः स्तोतव्यः। सुभृतो गर्भिणीभिः इति सुधितो गर्भिणीषु इति च पाठौ॥७॥

(जातवेदाः) सब विषयोंके ज्ञानवाला (अग्निः) अग्नि (गर्भिणीभिः) गर्भिणियों करके (सुभृतः) भले प्रकार धारण कियाहुआ (गर्भ इव इत्) गर्भ जैसे तिसी प्रकार (अरण्योः) अरणियोंमें (निहितः) देवताओंने यज्ञके निमित्त स्थापन किया, वह अग्नि (हविष्मद्भिः) हविको लिये हुए (जागृवद्भिः) कर्मानुष्ठानमें सावधान (मनुष्येभिः) हम मनुष्यों करके (दिवे दिवे) प्रतिदिन(ईड्यः) स्तुतिरूप वाणियोंसे स्तुति करने योग्य है ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षा-
३ १ २ १ २ ३ १ २
थंसि पृतनासु जिग्युः । अनु दह सहमूरान्
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्रयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । पायुर्ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः हे अग्ने ! त्वं सनात् चिरादेवारभ्य यातुधानान् राक्षसान् । मृणासि बाधसे । तथापि त्वा त्वाम् । पृतनासु संग्रामेषु । रक्षांसि राक्षसाः न जिग्युः नाजयन् । किञ्च । स त्वमधुना अनुक्रमेण सह मूरान् मूलेन सहितान् मारकव्यापारेण युक्तान् क्रयादः क्रव्यादो मांसभक्षकान् राक्षसान् दाह तेजसा भस्मीकुरु । किञ्च, तव सम्बन्धिनो दैव्यायाः दैव्यात् हेत्यः आयुधात् ते यातुधानाः मा मुक्षत मुक्ता मा भूवन् । क्रयादः क्रव्यादः इति च पाठौ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (सनात्) चिरकालसे (यातुधानान्) राक्षसोंको (मृणासि) बाधा देते हो, तो भी (त्वा) तुमको (पृतनासु) संग्रामोंमें (रक्षांसि) राक्षस (न जिग्युः) नहीं जीतसके, वह तुम इस समय (अनु) क्रमसे (सहमूरान्) मारक व्यापाररूप मूल सहित (क्रयादः) मांसभक्षी राक्षसोंको (दह) तेजसे भस्म करो (ते) तुम्हारी (दैव्यायाः) दिव्य (हेत्याः) लपटरूप आयुधसे (मा मुक्षत) न छूटें ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्त

---

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।

१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥

षोडशानुष्टुभोह्यग्न ओजिष्ठमिति खण्डयोः ।
सोमं राजानमित्येषा वैश्वदेवी ततः परा ।
स्तुतिरङ्गिरसां शिष्टाः आग्नेय्यस्तु चतुर्दश ।

अथ नवमे खण्डे—सेयं प्रथमा । गायत्रिर्ऋषिः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! ओजिष्ठं बलवत्तमं द्युम्नं द्योतते कटक-मुकुटादि-रूपेण सर्वत्र काशते इति द्युम्नं धनम् अस्मभ्यम् आभर आहर । हे अध्रिगो ! अधृत-गमन ! अधृतमप्रतिहतं गमनं यस्येति, अधृता अनि-वारिता गावो रश्मयो यस्येति वा, अध्रिगु, तस्य सम्बोधनं हे अध्रिगो ! पनीयसे पनीयसा स्तोतव्येन राये राया धनेन । सुपां सु लुगिति (७, १, ३९) शे आदेशः नः अस्मान् प्रकर्षेण योजय । वाजाय अन्नस्य लाभाय पन्थाम् पन्थानम् अन्नस्य, मत्समीप-प्राप्ति-साधनं मार्गं, रत्सि विलिख कुर्वित्यर्थः ॥ प्र नो राये पनीयसे इति छन्दोगाः, प्र णो राया परीणसा इति बह्वृचाः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ओजिष्ठम्) परम बलवान् (द्युम्नम्) कटक कुण्डलादि रूपसे सर्वत्र प्रकाशवान् धन (अस्मभ्यम्) हमें (आभर) लाकर दीजिये (अध्रिगो) नहीं रुकती है गति जिसकी ऐसे हे अग्ने (पनीयसे) स्तुति योग्य (राये) धन करके (नः) हमें (प्र) प्रकर्ष करके युक्त करो (वाजाय) अन्नके लिये (पन्थाम्) मार्गको (रत्सि) दो ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आजुह्वद्धव्यमानुषक्शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेव ऋषिः । भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वा । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । यदि यदा यस्य मनुष्यस्य वीरः पुत्रः, स्यात् भवति, तदा सः मर्त्यः अग्निमिन्धीत आधानमादधीत कुर्वीत । किंच । आनुषक् अविच्छिन्नं यथा भवति तथा हव्यम् आ जुह्वत् आभिमुख्येन जुहोति । अपि च । दैव्यं देव-सम्बन्धि शर्म गृहं सुखं वा भक्षीत भजेत सेवेतेत्यर्थः ॥ २ ॥

(यदि) जब, मनुष्यके (वीरः) पुत्र (स्यात्) होय तब वह (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्) अग्निको (इन्धीत) प्रदीप्त करै (अनु) फिर (आनुषक्) अविच्छिन्न (हव्यम्) हविको (आजुहवत्) अभिमुख होकर हौमै (दैव्यम्) दिव्य (शर्म) सुखको (भक्षीत) भोगे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ ३ २उ२ ३ २ २र
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं छुक्र आततः ।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । द्वयोर्भरद्वाज ऋषिः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! त्वेषः दीप्तस्य ते तव शुक्रः शुक्लो निर्मलः शुभ्रवर्णो वा धूमः दिवि अन्तरिक्षे आततः विस्तीर्णः सन् ऋण्वति मेघात्मना परिणतो गच्छति । अपि च, हे पावक ! शोधक ! अग्ने ! सूरो न सूर्य इव कृपा स्तोतव्याभिमुखीकरणसमर्थया स्तुत्या स्तूयमानस्त्वं द्युता दीप्त्या रोचसे हि प्रकाशसे खलु । दिवि सन् इति, दिवि षन् इति च पाठौ ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (त्वेषः) प्रज्वलित हुए (ते) तुम्हारा (शुक्रः) निर्मल स्वेतवर्ण (धूमः) धुआँ (दिवि) अन्तरिक्ष में (आततः) फैलता हुआ (ऋण्वति) मेघरूपसे परिणत होजाता है और (पावक) हे शोधक अग्ने ! (सूरः,न) सूर्यकी समान (कृपा) अभिमुख कर सकने वाली स्तुतिसे प्रशंसा कियेहुए तुम (द्युता) दीप्तिसे (हि) निश्चय (रोचसे) प्रकाशित होते हो ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २र
त्वꣳ हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे अग्ने ! त्वं हि त्वं खलु क्षैतवत् क्षितिः क्षयोऽपचयः तत्सम्बन्धि क्षैतं शुष्कं काष्ठं तद्युक्तं यशः अन्नं (नि०२,७) हविर्लक्षणं पत्यसे अभिपतसि गच्छसि । तत्र दृष्टान्तः मित्रो न अहरभिमानी मित्रो देवः स इव यद्वा क्षय इति गृहनाम (नि०३,४) क्षैतवत् क्षैतं निवासकं हविर्लक्षणमन्नं तद्युक्तम् यजमानगृहं मित्रभूतः पुरुष

इवाभिपतासि । यद्वा पत्यतिरैश्वर्यकर्मा, (नि०२,२१) ईदृशमन्नं पत्यसे ईशिषे अतः कारणात् हे विचर्षणे विशेषेण सर्वस्य द्रष्टः ! वसो ! वासकाग्ने ! त्वं श्रवः श्रवणीयमन्नम् यजमानगृहस्थं न अयं न शब्दश्चार्थे । (नि०२,७) अन्नकार्यभूतां पुष्टिं च पुष्यसि वर्द्धयसि

हे अग्ने ! (हि) निश्चय (त्वम्) तू (क्षितवत्) सूखते हुए काठ सहित (यशः) अन्नको (मित्रः, न) दिनके अभिमानी मित्र देवता की समान (पत्यसे) प्राप्त होता है, इस कारण (विचर्षणे) सबके द्रष्टा ! (वसो) हे व्यापक अग्ने (त्वम्) तू (श्रवः) यजमानके घर अन्नको (पुष्टिं, न) पुष्टिको भी (पुष्यसि) बढ़ाता है ॥ ४ ॥

३ २ ३　१　२　३ २　३ १　२ ३ १ २
प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
२ ३　२ ३ १ २　३ १　२र　३ १ २
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मृक्तवाहाद्वित ऋषिः । छ० अनुष्टप् । दे० अग्निः । पुरुप्रियः बहुप्रियः विशः यजमाने धनस्य निवेशकः अतिथिः यजमानानां गृहान् प्रति-तिथिषु न अभ्येतीत्यतिथिः । तथाह यास्कः, अतिथिरभ्येति गृहान् भवत्यभ्येति तिथिषु परकुलानीति परगृहाणीति वा (४, १, ५) इति एवं विधोऽग्निः प्रातः स्तवेत स्तूयते । अमर्त्यें । अमरणधर्मके यस्मिन् अग्नौ विश्वे सर्वे मर्त्तासः मर्त्ताः मनुष्याः हव्यम् इन्धते दीपयंति दधत इत्यर्थः विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तासि इन्धते इति छन्दोगाः, विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्त्तेषु रण्यति इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(पुरुप्रियः) बहुतोंका प्रिय (विशः) यजमानोंके घर धन स्थापन करने वाला (अतिथिः) यजमानोंके घर सदा जानेवाला (अग्निः) अग्नि (प्रातः) प्रातकालके समय (स्तवेत) स्तुति किया जाता है (अमर्त्ये) अमरणधर्मी (यस्मिन्) जिस अग्निमें (विश्वे) सब (मर्त्तासः) मनुष्य (हव्यम) हव्यको (इन्धते) स्थापन करते हैं ५

१　२र ३　२ ३　१ २　३ १ २
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
१ २　३　२ २उ　३ १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसूयवआत्रेया ऋषयः । छ०अनुष्टुप् । दे०अग्निः । वाहिष्ठं वोढृतमम् यत् स्तोत्रं तत् अग्नये क्रियते । अतः हे विभावसो ! प्रभाधनाग्ने ! बृहत् बह्वन्नं धनं च अर्च अस्मभ्यं प्रयच्छ । कथमस्याग्नधनप्रदातृत्वमित्यपेक्षायामाह, यतः त्वत् त्वत्तः सकाशात् महिषी महती रयिः धनम् उदीरते उद्गच्छन्ति । इव इति पाद-पूरणः ॥६॥

(वाहिष्ठम्) अधिकता से पहुँचाने वाला (यत्) जो स्तोत्र है (तत्) वह (अग्नये) अग्निके अर्थ किया जाता है, इसकारण (विभावसो) हे प्रभारूप धनवाले अग्ने (बृहत्) बहुतसा धन और अन्न (अर्च) हमें दीजिये, क्योंकि (त्वत्) तुमसे (महिषी) बहुत से (रयिः) धनको (उदीरते) पाते हैं ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्त पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

अथ सप्तमी । गोपवन ऋषिः । सप्तवध्रिर्वा । छ०अनुष्टुप् । दे०अग्निः हे ऋत्विग्यजमानाः ! वः यूयं वाजयन्तः अन्नामिच्छन्तः विशोविशः सर्वस्याः प्रजायाः पुरु-प्रियं बहुप्रियम् अतिथिं पूज्यम् अग्निं स्तुत्या परिचरतेति शेषः । अहं च वः युष्मदर्थं दुर्यं गृह-हितम् अग्निं वचः स्तुषे स्तौमि शूषस्य सुखस्य लाभाय । कैः साधनैः ? मन्मभिः मंननीयैः स्तोत्रैः ॥ ७ ॥

हे ऋत्विज और यजमानो ! (वः) तुम (वाजयन्तः) अन्नकी इच्छा करते हुए (विशोविशः) सब प्रजाके (पुरुप्रियम्) अधिक प्रिय (अतिथिम्) पूज्य (अग्निम्) अग्निको स्तुतिसे आराधन करो, मैं भी (वः) तुम्हारे निमित्त (दुर्यम्) घरके हितकारी अग्निको (शूषस्य) सुखके लाभार्थ (मन्मभिः) मनन करने योग्य स्तोत्ररूप (वचः) वाणियोंसे (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्त्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । पुरुरात्रेय ऋषिः । छ०अनुष्टुप् । दे०अग्निः । यस्मै भानवे दीप्तिमते अग्नये बृहत् महत् वयः हवीरूपमन्नं दीयते हि अतस्त्वमपि देवाय द्योतमानायाग्नये वयः अर्च्चं प्रयच्छ । मर्तासः मनुष्याः यम्

आग्निं मित्रं न सखायमिव प्रशस्तये प्रकृष्ट-स्तुतये अस्मदर्थं देवानग्निः स्तौत्विति पुरः दधिरे पुरस्कुर्वन्ति प्रशस्तये प्रशस्तिभिः इति पाठौ ८

यज्ञमें (भानवे) दीप्तिमान् (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्) बड़ा (वयः) हविरूप अन्न दिया जाता है (हि) इस कारण तुम भी (देवाय) प्रकाशवान् अग्निके अर्थ (अर्च) दो (मर्त्तासः) मनुष्य (यम्) जिस आग्निको (मित्रं न) मित्रकी समान (प्रशस्तये) श्रेष्ठ स्तुतिके लिये (पुरः दधिरे) सत्कार करते हैं ॥ ८॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोपवन ऋषिः । वृत्रहन्तमं पापानामतिशयेन हन्तारं ज्येष्ठं प्रशस्यम् आनवं मनुष्यसम्बन्धिनं तेषां हितकारिणम् अग्निम् अगन्म गन्ता वयं, पूजार्थे बहुवचनम् । अग्निः यः आर्क्षे ऋक्ष-पुत्रे श्रुतर्वन्नाम्नि राजनि निमित्तं बृहत् महान् अनीकः ज्वाला-समूहः सन् इध्यते स्म प्रवृद्धोऽभवत् । लट् स्मे (३,२,११८) इति भूते लट् तमग्निमागता इति समन्वयः । एवं श्रुतर्वाणं भिक्षणायागतो गोपवनः अग्निं स्तौति । अगन्म आगन्म इति च पाठौ यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते इति छन्दोगाः । यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते इति च बह्वृचाः ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्तमम्) पापोंके अतिशय नाशक (ज्येष्ठम्) प्रशंसनीय (आनवम्) मनुष्योंके हितकारी (अग्निम्) अग्निको (अगन्म) हम प्राप्त हुए (यः) जो अग्नि (आर्क्षे) ऋक्षपुत्र (श्रुतर्वन्) श्रुतर्वन्के निमित्त (बृहत्) महान् (अनीकः) ज्वाला-समूह-रूप होकर (इध्यते स्म) प्रज्वलित किया गया ॥ ९ ॥

३ २ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः १०

अथ दशमी । वामदेवः कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा वैवस्वत उभौ वा । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! त्वं परेण उत्कृष्टेन धर्मणा आधानादिकर्मणा जातः प्रादुर्भूतोऽसि ! यत् यः सवृद्भिः यज्ञे सह

वर्त्तन्ते इति सवृतः ऋत्विजः, तैः सह अभुवः भूमि-सम्बन्धि-यज्ञे वर्तसे कश्यपस्याग्निरित्येतयोः परस्परं विभक्ति-व्यत्ययः। यत् यस्याग्नेः कश्यपः पिता श्रद्धा देवी माता च मनुः कविः क्रान्त-कर्मा मेधावी वा मनुर्वैवस्वतः स्तोता आसीत् सोऽग्निः यजमानायाभीष्टं फलं प्रयच्छतु अनेन सूचितमुपाख्यानं ब्राह्मणान्तरे द्रष्टव्यम् ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (परेण) उत्तम (धर्मणा) आधान आदि कर्म करके (जातः) प्रकट हुए हो (यत्) जो (सवृद्भिः) ऋत्विजोंके साथ (अभुवः) भूमि सम्बन्धी यज्ञमें रहता है (यत्) जिस अग्निका (कश्यपः) कश्यप (पिता) पिता (श्रद्धा) श्रद्धादेवी (माता) माता (मनुः) मनु (कविः) स्तोता हुआ ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

---

२ १   १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥

अथ दशमे खण्डे—सेयं प्रथमा । अग्निस्तापस ऋषिः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता विश्वेदेवा । राजानं राजमानमीश्वरं वा सोमं वरुणं च अग्निं च गीर्भिः स्तुतिभिः अन्वारभामहे रक्षणार्थम् आह्वयामहे । तथा आदित्यम् अदितेः पुत्रं विष्णुं च सूर्यं च ब्रह्माणं च बृहस्पतिं च अन्वारभामहे ॥ १ ॥

(राजानम्) ईश्वर (सोमम्) सोमको (वरुणम्) वरुण को (अग्निम्) अग्निको (आदित्यम्) अदिति के पुत्र (विष्णुम्) विष्णु को, (सूर्यम्) सूर्यको (ब्रह्माणम्) ब्रह्माको (च) और (बृहस्पतिम्) बृहस्पतिको (अन्वारभामहे) रक्षाके लिये आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १   २र
इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेवो द्वयोः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता विश्वेदेवाः । एते अङ्गिरसः यथा उत् मार्गेणेव द्यां दिवं प्र ययु प्रापुः । कीदृशाः ? भूर्जयः भृज्जतिः पाक-कर्मा हविषां पक्तारः । तत्र दृष्टान्तः पथा मार्गेण जनाः

ग्रामादीन् गच्छन्ति तथा इतः भूमेः सकाशात् उदारुहन् उद्गच्छन् ।
आगत्य च दिवः स्वर्गस्य पृष्ठानि स्थानानि आरुहन् प्राक्रमन्ति ॥२॥

(एते) यह (भूर्जयः) हवियों वाले (आङ्गिरसः) आङ्गिरस (यथा) जैसे (उत्) मार्ग करके (द्याम्) द्युलोकको (प्रययुः) प्राप्त हुए जैसे कि (पथा) मार्गके द्वारा मनुष्य ग्राम आदिको जाते हैं तैसे ही (इतः) भूमिसे (उदारुहन्) ऊपरको गए और आकर (दिवः) स्वर्ग के (पृष्ठानि) स्थानों पर (आरुहन्) चढे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन्द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

अथ तृतीया । एतस्याः कश्यपोऽसितो देवलो वा । हे अग्ने ! त्वा त्वां महे महतः राये धनस्य दानाय दानार्थं समिधीमहि वयं सम्यग् दीपयामहे । वृषन् वर्षितः । अग्नये महते होत्राय अग्निहोत्रार्थं द्यावा दिवं पृथिवीं च ईडिष्वा स्तुहि ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वा) तुम्हें (महे) बहुतसे (राये) धन दानके लिये (समिधीमहि) भले प्रकारसे प्रदीप्त करते हैं (वृषन्) वरदानोंकी वर्षा करनेवाले अग्ने !(महते) बड़े (होत्राय) हवनरूप अग्निहोत्रके लिये (द्यावा-पृथिवी) द्यावापृथिवीकी (ईडिष्वा) स्तुति करो ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

अथ चतुर्थी । भार्गद्युतिः सोमो वा ऋषिः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता अग्निः । वा अथवा ईम् एनं यज्ञम् अनु लक्षीकृत्य यत् हविरादिकं दधन्वे धारयत्यध्वर्य्वादिः यद् ब्रह्म स्तोत्रम् अनुवोचत् अनुवक्ति होत्रादिः अत्र वा अन्वित्यतेद्योज्यम् । तत् सर्वं वेरु वेरेव कामयते जानाति वा स्वयमनुष्ठातुम् । अयमग्निः विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि कवयः मेधाविन ऋत्विजः तत् सम्बन्धीनि कर्माणि पर्य्यभुवन् परिभवति स्वायत्तानि करोति व्याप्नोतीत्यर्थः । व्याप्तौ दृष्टान्तः नेमिः बहिर्वेष्टनवलयः चक्रमिव रथाङ्गं यथा कार्त्स्न्येन व्याप्नोति तद्वत् ब्रह्म इति ब्रह्माणि इति च पाठौ । भुवद् भवत् इति च ॥ ४ ॥

(वा) अथवा (इमम्) इस यज्ञको (अनु) लक्ष्य करके (दधन्वे) अध्वर्यु आदि (ब्रह्म) स्तोत्रको (अनुवोचत्) उच्चारण करते हैं (तत्) उस सबको (वेः, उ) जानता ही है । यह अग्नि (विश्वानि) सब (काव्याः) बुद्धिमान् ऋत्विजों के सकल कर्मोंको (नेमिः) नेमि (चक्रमिव) पाहियेको जैसे वश में करे रहता है तैसे (पर्यभुवत्) अपने वशमें रखता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परिः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क २र

यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्य्यम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पायुर्ऋषिः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता रक्षोहा अग्निः । हे अग्ने ! त्वं हरसा स्वदीयेन तेजसा क्रोधेन वा तथा च यास्कः हरो हरतेर्ज्योतिर्हर उच्यते इति । यातुधानस्य राक्षसस्य हरः हरणशीलं बलं विश्वतः सर्वतः परि गतं प्रति शृणाहि नाशयेत्यर्थः । तथा रक्षसः राक्षसस्य वीर्यं च न्युब्ज निःशेषेण रुज भञ्जयेत्यर्थः । शृणाहि श्रृणीहि इति पाठौ । बलं न्युब्जं वीर्यम्,बलं विरुज वीर्यम् इति च॥५॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (हरसा) अपने तेजसे वा क्रोध से (यातुधानस्य) राक्षसके (हरः) हरणशील (बलम्) बलको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) फैले हुएका (प्रतिशृणाहि) नाश करो (रक्षसः) राक्षसके (वीर्यम्) पराक्रमको (न्युब्ज) विशेष रूपसे तोड़दो ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

त्वमग्ने वसूंरिह रुद्रांऽ आदित्याँऽ उत ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । प्रस्कण्व ऋषिः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता अग्निः । हे अग्ने ! त्वम् इह कर्मणि वस्वादीन् यज । उत अपि च जनम् अन्यमपि देवतारूपं प्राणिनं यज । कीदृशम् ? स्वध्वरं शोभनयागयुक्तं मनुजातं मनुना प्रजापतिना उत्पादितं घृतप्रुषम् उदकस्य सेक्तारं यजेति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (इह) इस कर्ममें (वसून्) वसुओंको (रुद्रान्) रुद्रोंको (आदित्यान्) आदित्योंको (उत)

और (स्वध्वरम्) शोभनयागयुक्त (मनुजातम्) प्रजापतिसे उत्पन्न किये हुए (घृतप्रुषम्) जलको सींचनेवाले (जनम्) अन्य देवताको (यज) यजन करो ॥ ६ ॥

प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ।

---

३१ २ ३ १ २३ १२३ १२ ३२
पुरु त्वा दाशिवाꣳ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

खण्डयोर्द्दपुरुत्वेति ककुभोऽष्टौ दशोष्णिहः ।
जज्ञानः पावमानी स्यादुतस्येत्यदितेः स्तुतिः ।
।शाष्टाः षोडश चाग्नेय्यः समाख्या छन्दिरणीति वत् ॥

अथैकादशखण्डे—सेयं प्रथमा । दीर्घतमा ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः ! हे अग्ने ! त्वा त्वां पुरु बहु वोचे यद्वा बहु दाश्वानिति सम्बन्धः पुत्रं देहि, वित्तं देहि इत्याद्याशासनानि ब्रवीमीत्यर्थः । [illegible] दाशिवान् दाश्वान् अभिमतं हविर्दत्तवा-[illegible] अतो वाच्य । इतरसाधारण्येन ब्रुवतः कथं दातव्यम् इति न मन्तव्यम् । यतः हे अग्ने ! तव स्विदा अरिः तवैव असौ सेवकोऽहं महस्य महतः तोदस्य शिक्षकस्य स्वामिनः शरणे आ इव इत्युपमार्थे तदा ईशगृहे यथा गर्भदासादिर्नियतो वर्त्तते तद्वदहमपि । यस्मादेवं तस्मात् अभिमतं बहु वोचे । त्वमपि तत् सर्वं देहीत्यर्थः । अत्र निरुक्तम्-बहु दाश्वांस्त्वामभिह्वयाम्यरिरमित्रमृच्छतेरीश्वरोऽप्यरिरेतस्मादेव यदन्यदेवत्या अग्नावाहुतयो हूयन्त इत्येतद्दृष्ट्वैवमवक्ष्यत्तोदस्येव शरणआ महस्य तुल्यस्येव शरणेऽधिः महतः (५, १, ८) इति ॥१॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (महस्य) बड़े (तोदस्य) शिक्षक स्वामीके (शरणआ) दासकी समान (तव स्विदा) तुम्हारा ही (अरिः) सेवक मैं (त्वा) तुमसे (पुरु) बहुतसे (दाशिवान्) पुत्र धन आदि वरदानों को (वोचे) कहता हूँ ॥ १ ॥

१ २र २उ ३ १ २ ३ २
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥

[illegible]य द्वितीया । विश्वामित्र ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः ।

यजमानो होत्रादीन् प्रति ब्रूते हे होत्राद्यः ! विप्रां विप्राणाम् मेधाविनाम् अध्वर्य्वादीनां ज्योतींषि सत्कर्मानुष्ठानसम्पाद्यानि तेजांसि बिभ्रते निमित्ततया कुर्वाणाय वेधसे जगतो विधात्रे देवानामाह्वात्रे अग्नये बृहत् महत् पूर्व्यं पुरातनं वचः स्तोत्रशस्त्रादिकं वाक्यं प्र भरता सम्पादयत । नेत्ययं पादपूर्णः अन्वयाभावात् । यद्वा वेधसे न यथा वेधाः जगद्विधाता परमेश्वरः आदित्यादीनि ज्योतींषि करोति तद्वदिति । प्र शब्दस्य छन्दसि व्यवहिताश्च इति भरतेत्यनेन सम्बन्धः २

यजमान होता आदि से कहता है, कि-हे होता आदिकों ! (विपाम्) अध्वर्यु आदि विप्रोंके (ज्योतींषि) सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे प्राप्त हुए तेजों को (बिभ्रते) निमित्तरूपसे करनेवाले (वेधसे) जगत्के विधाता (होत्रे) देवताओंका आह्वान करनेवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्) बड़े (पूर्व्यम्) पुरातन (वचः) स्तोत्रको (प्रभरता) संपादन करो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोतम ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः

सहसो यहो ! बलस्य पुत्र ! अग्ने ! गोमतः बहुभिर्गोभियुक्तस्य वाजस्य ईशानः ईश्वरस्त्वमसि, अतः अस्मे अस्मासु हे जातवेदः ! जातधन ! जातानां वेदितः वा अग्ने ! महि प्रभूतं श्रवः अन्नं देहि प्रयच्छ स्थापयेत्यर्थः । सहसोयहो पराङ्गवद्भावाद् आमन्त्रितस्य षष्ठ्यामन्त्रितसमुदायो निहन्यते । अस्मे, सुपां सुलुगिति (७ । १ ३९) सप्तम्याः शे आदेशः । अस्मे देहि, अस्मे धेहि, इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(सहसोयहो) बलके पुत्र (अग्ने) हे अग्ने (गोमतः) अनेकों गौओंसे युक्त (वाजस्य) अन्नके (ईशानः) ईश्वर तुम हो, इसकारण (जातवेदः) प्राणिमात्रके अन्तर्यामी अग्ने ! (अस्मे)हमें (महि) बहुतसा (श्रवः) अन्न (देहि) दो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
१ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्र ऋषिः । छन्दः उष्णिक । देवता अग्निः

हे अग्ने ! यजिष्ठः यष्टृतमः त्वम् अध्वरे यज्ञे देवयते देवानात्मन इच्छते यजमानाय देवान् यज तदर्थं यष्टव्यानग्न्यादीन् देवान् पूजय । किञ्च होता देवानामाह्वाता मन्द्रः यजमानस्य मादयिता स त्वं स्रिधः क्षपयितॄन् शत्रून् अति अतिक्रम्य वि राजसि विशेषेण शोभसे ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (यजिष्ठः) विशेषरूपसे यजन करनेवाला तू (अध्वरे) यज्ञमें (देवयते) अपने कर्ममें देवताओंको चाहनेवाले यजमानके निमित्त (देवान्, यज) देवताओंका यजन करो (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले (मन्द्रः) यजमानको आनन्द देनेवाले तुम (स्रिधः) शत्रुओंको (अति) अतिक्रमण करके (विराजसि) विशेषरूपसे शोभायमान होते हो ॥ ४ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । त्रित ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता पवमानः सोमः। ध्रुवः स्थिरोऽयमग्निः रयीणां धनानाम् आचिकेतत् अस्यानुशासने जानाति । सप्त सप्तसङ्ख्याभिः मातृभिः हविर्मानसमर्थाभिर्जिह्वाभिः स्वात्मनि हविःप्रक्षेप्त्रीभिर्वा जिह्वाभिः सह । जज्ञानः प्रादुर्भूतः सोऽग्निः मेधां कर्मणो विधातारं सोमं श्रिये सेवार्थम् आशासत अनुशास्ति । शास्तेर्लेटि व्यत्ययेनात्मनेपदम् (३, ४, ९८) बहुलं छन्दसि इति (२, ४, ७३) शपो लुक् न भवति अन्विच्छतीत्यर्थः । जज्ञानः सप्तमातृभिः जज्ञानं सप्त मातरः इति च पाठौ । चिकेतद् अचिकेतयद् इति च ॥ ५ ॥

(ध्रुवः) स्थिर (अयम्) यह अग्नि (रयीणाम्) धनोंका (आचिकेतत्) अनुशासन करना जानता है (सप्त) सात (मातृभिः) अपने में हवि डालने वाली जिह्वाओं करके (सह) सहित (जज्ञानः) प्रकट हुआ है, ऐसा यह अग्नि (मेधाम्) कर्मके विधाता सोमको (श्रिये) सेवाके निमित्त (आशासते) अनुशासन करता है ॥ ५ ॥

३ २ उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । इरिमिठिर्ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अदितिः । उत अपिच स्या सा पूर्वोक्ता मतिः मन्त्री मन्तव्या स्तोतव्या वा अदितिः ऊत्या रक्षया सार्द्धं दिवा अहनि नः अस्मान् अगमत् आगच्छतु, आगत्य च शन्ताता शन्तातिः शान्तिकरं मयः सुखं सा अदितिः करत् करोतु । स्निधः नाशकान् शत्रूँश्चापगमयतु । स्निधिर्बाधनार्थः । उत स्या उत त्या इति च पाठौ । सा शन्ताता सा शन्ताति इति च ॥ ६ ॥

(उत) और (स्या) वह पूर्वोक्त (मतिः) स्तुति करने योग्य (अदितिः) अदिति (ऊत्या) रक्षासहित (दिवा) दिनमें (नः) हमें (अगमत्) प्राप्त हो और आकर (शन्ताता) शान्ति करनेवाले (मयः) सुखको (सा) वह अदिति (करत्) करे (स्निधः) शत्रुओंको (अप) दूर करे ॥६॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३१२

ईडिष्वा हि प्रतीव्या३ं यजस्व जातवेदसम् ।

३ १ २ ३ १ २

चरिष्णु धूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । व्येर्विश्वमना वैयश्व ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः । प्रतीव्यां शत्रुषु प्रतिगमनशीलम् अग्निं हि अवधारणे अग्निमेव ईडिष्वा स्तुतिभिः स्तुतं कुरु । किञ्च चरिष्णुधूमम् सर्वत्र चरणशील—धूम-ज्वालम् अगृभीतशोचिषं रक्षोभिर-प्रधृत-दीप्तिम् जातवेदसं जातप्रज्ञं यद्वा, जातानि भूतानि वेत्तीति जातवेदाः तमग्निं यजस्व हविर्भिः पूजय ॥ ७ ॥

(प्रतीव्य) शत्रुओंमें प्रतिकूलभावसे आनेवाले अग्निको (हि) ही (यजस्व) स्तुति करो (चरिष्णुधूमम्) सर्वत्र विचरता है धुआं जिसका ऐसे (अगृभीतशोचिषम) जिसकी दीप्तिको राक्षस नहीं पकड़ सकते ऐसे (जातवेदसम्) सकल प्राणियोंके ज्ञाता अग्निको (यजस्व) हवियोंसे पूजो ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३१२ ३ १२

न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । मर्त्यः मनुष्यः रिपुः शत्रुः चनेति निपातसमुदायोऽप्यर्थे । मायया चन माययापि । तस्य जनस्य न ईशीत ईश्वरो न भवति । यः जनः हव्यदातये हविषामादानसमर्थाय अग्नये यो यजमानः ददाश हवींषि प्रयच्छति तस्य रिपुर्न ईशीतेत्यर्थः । हव्यदातये हव्यदातिभिः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (मायया चन) माया करके भी (तस्य) तिसका (न ईशीत) ईश्वर नहीं बनसकता कि (यः) जो (हव्यदातये) हवियोंको ग्रहण करनेमें समर्थ (अग्नये) अग्निके अर्थ (ददाश) हवि देता है ॥ ८ ॥

२३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

अप त्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।

१ २ ३ २ ३ २

दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भारद्वाज ऋजिश्वा ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता वैश्वदेव अग्निः । हे अग्ने ! त्यं तं प्रसिद्धं वृजिनं कुटिलं रिपुं पापकारिणं दुराध्यं दुःखसाध्यमत्तारं दुष्टाभिप्रायम् वा पथम्भूतं स्तेनं हिंसकं दविष्ठं दूरतमम् अपास्य अप क्षिप। असु क्षेपणे इति धातुः । हे सत्पते ! सतां पालयितः अग्ने ! अस्माकं सुगं शोभनेन गन्तव्यं सुखं कृधि कुरु । अत्र सर्वदेवात्मकस्याग्नेः स्तवनाद् वैश्वदेवत्वम् ९

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (त्यम्) उस प्रसिद्ध (वृजिनम्) कुटिल (रिपुम्) पापकारी (दुराध्यम्) खोटे अभिप्रायवाले (स्तेनम्) हिंसकको (दविष्ठम्) बहुत दूर (अपास्य) फैंको (सत्पते) हे सज्जनोंके पालक अग्ने ! हमारे (सुगम) सुगमतासे पाने योग्य सुखको (कृधि) करो ॥ ९ ॥

३क २र ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥

अथ दशमी । विश्वमना ऋषिः । छन्दः उष्णिक । देवता वैश्वदेवः अग्निः । वीर शत्रूणां विनाशयितः ! वा विश्पते विशां पालयितः ! हे अग्ने ! नवस्य इदानीं क्रियमाणत्वान्नूतनं मे मदीयं स्तोमस्य स्तोत्र-शस्त्रादिकं श्रुष्टी श्रुत्वा मायिनः मायाविनः रक्षसः कर्मविघ्नकारिणः राक्षसान् तपसा तापकेन तेजसा निदह नितरां भस्मीकुरु । श्रुष्टीति स्नात्व्यादयश्च (७, १, ४९) इति निपातितः, वकार—लोपश्छान्दसः तपसा तपुषा इति च पाठः ॥ १० ॥

(वीर) हे शत्रुओंके विनाशक ! (विश्पते) हे यजमानों के पालक अग्ने ! (नवस्य) इस समय कियेजानेके कारण नवीन (मे) मेरे

(स्तोमस्य) स्तोत्रादिको (श्रुष्टी) सुनकर (मायिनः) मायावी (रक्षसः) कर्ममें विघ्नकरनेवाले राक्षसोंको (तपसा) ताप देनेवाले तेजसे (निदह) अत्यन्त भस्म करिये ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य एकादशः खण्डः

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे

३ १ २ ३ १ २

उप स्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

अथ द्वादशखण्डे—सेयं प्रथमा ! प्रयोभार्गव ऋषिः । छन्दः ककुप् देवता अग्निः । हे उपस्तुतासः ! हे उपस्तोतारः ! यूयं मंहिष्ठाय दातृतमाय ऋताव्ने यज्ञवते सत्यवते वा बृहते महते शुक्रशोचिषे दीप्ततेजसे अग्नये प्रगायत स्तोत्रं पठत ॥ १ ॥

(उपस्तुतासः) हे उपस्तोताओं ! तुम (मंहिष्ठाय) परम दाता (ऋताव्ने) यज्ञवाले वा सत्यवाले (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) दीप्ततेजवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (प्रगायत) स्तोत्र पढ़ो ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाज-

२ ३ २ ३ १ २र

कर्मभिः । यस्य त्वꣳसख्यमाविथ ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऋषिः सौभरिर्ऋषिः । छ० ककुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! तव ऊतिभिः रक्षाभिः सः यजमानः प्र तरति प्रवर्द्धते । ऊतयो विशेष्यन्ते । सुवीराभिः शोभनवीराः पुत्रादयो यासु ताभिस्तथोक्ताभिः वाजकर्मभिः वाजानामन्नानां बलानां वा कर्म रक्षणं यासु तादृशीभिः हे अग्ने ! त्वं यस्य यजमानस्य सख्यं सखित्वं मित्रत्वम् आविथ प्राप्नोषीत्यर्थः सः प्र तरतीति पूर्वत्रान्वयः । तरति वाजकर्मभिः, तिरते वाजभर्मभिः, इति च पाठौ । आविथ, आवरे इति च ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तू (यस्य) जिस यजमानके (सख्यम्) मित्रभावको (आविथ) प्राप्त होता है (सः) वह यजमान (तव) तेरी (सुवीराभिः) श्रेष्ठ पुत्रादिवाली (वाजकर्मभिः) अन्न और बलोंकी रक्षा करनेवाली (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (प्रतरति) बढ़ता है ॥२॥

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधान्विरे ।

३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे स्तोतः ! तं प्रसिद्धमग्निं गूर्द्धया स्तुहि गूर्धयतिः स्तुतिकर्मा (नि० ३,१४,५,) कीदृशम् स्वर्णरं सर्वस्य नेतारं सर्वैः यजमानैः कर्मादौ नेतव्यम् वा । अथवा, स्वर्गं प्रति हविषां नेतारम् । देवासः दीव्यन्ति स्तुवन्तीति देवा ऋत्विजः देवं दानादिगुणयुक्तम् अरतिं स्वामिनं,यद्वा, अभिप्राप्तव्यं दधन्विरे धन्वन्ति गच्छन्ति स्तुत्यादिभिः प्राप्नुवन्ति धविर्गत्यर्थः प्राप्य च तेनाग्निना देवत्रा देवान् देवमनुष्येत्यादिना द्वितीयार्थे त्रा प्रत्ययः । हव्यं चरुपुरोडाशादिलक्षणं हविः आ ऊहिषे अभि प्रापय वहोर्लिटि यजादित्वात् सम्प्रसारणम् ३

हे स्तोतः ! (स्वर्णरम्) स्वर्गमें देवताओंको हवि पहुँचाने वाले (तम्) तिस अग्निको (गूर्द्धया) स्तुति कर (देवासः) ऋत्विज (देवम्) दानादि गुणयुक्त (अरतिम्) जिस इष्टदेवकी (दधन्विरे) स्तुति आदिसे उपासना करते हैं और उस अग्निके द्वारा (देवत्रा) देवताओंको (हव्यम्) हवि (आ ऊहिषे) पहुँचा देते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २
मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रयोगोभार्गव ऋषिः । सोभरिः काण्वो वा । छ० ककुप् । दे० अग्निः । हे ऋत्विक्-संघ ! नः अस्मत्-सम्बन्धि-यज्ञे अतिथिम् अतिथिवत् प्रियम् अग्निम् मा हृणीथाः मा हर । कमग्निम्? इस्यत आह यः अग्निः सुहोता सुष्ठु देवानामाह्वाता स्वध्वरः शोभनयज्ञो भवति । एषः अग्निः पुरुप्रशस्तः बहुभिः स्तुतः वसुः वासकश्च भवति तमिति पूर्वेणान्वयः । मा हृणीथा अतिथिम् इति छन्दोगाः, मा हृणीतामतिथिः इति बह्वृचाः ॥ ४ ॥

हे ऋत्विजोंके समूह (नः) हमारे यज्ञमें से (अतिथिम्) अतिथि की समान प्यारे अग्निको (मा हृणीथाः) मत हरण करो (यः) जो (अग्निः) अग्नि (सुहोता) उत्तमतासे देवताओंका आह्वान करने वाला (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञवाला होता है (एषः) वह (पुरुप्रशस्तः) अनेकोंसे स्तुति किया हुआ (वसुः) वसाने वाला होता है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो

२ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । तिसृणां सोभरिर्ऋषिः । आहुतः हविर्भिस्तर्पितोऽग्निः नः अस्माकं भद्रः कल्याणो भवतु । हे सुभग ! शोभन-धनाग्ने ! भद्रा कल्याणी रातिः दानं च अस्माकं भवतु । भद्रः कल्याणः अध्वरः यागश्च भवतु । उत अपि च भद्राः कल्याणयः प्रशस्तयः प्रशंसाः स्तुतयश्च भवंतु ॥ ५ ॥

(आहुतः) हवियोंसे तृत किया हुआ (अग्निः) अग्नि (नः) हमारा (भद्रः) कल्याणरूप हो (सुभग) हे सुन्दर धन वाले ! हमें (भद्रा) कल्याणरूप (रातिः) दान प्राप्त हो (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ प्राप्त हो (उत) और (भद्राः) कल्याणरूप (प्रशस्तयः) स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे अग्ने ! यजिष्ठं यष्टृतमं त्वा त्वां ववृमहे वृणीमहे संभजामहे । कीदृशं त्वाम् ? देवत्रा देवेषु मध्ये देवम् अतिशयेन दानादिगुणम् । होतारं देवानामाह्वातारम् । अमर्त्यम् अविनाशिनम् । अस्य यज्ञस्य यागस्य सुक्रतुम् सुष्ठु कर्तारम् ॥ ६ ॥

हे अग्ने (यजिष्ठम्) श्रेष्ठ यष्टा (देवत्रा) देवताओंमें (देवम्) अधिकतासे दान करनेवाले (होतारम्) देवताओंको बुलानेवाले (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञके (सुक्रतुम्) श्रेष्ठ कर्त्ता (त्वा) तुम्हें (ववृमहे) भजते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्
३ १ २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे अग्ने ! तत्, द्युम्नम् अन्नं यशो वा आभर अस्मभ्यमाहर । यत् यदा आसदने यज्ञगृहे वर्त्तमानं कञ्चित् कमपि अत्रिणम् अत्तारं राक्षसादिकं सासाहा अत्यर्थमभिभव । तथा दूढ्यं दुर्धियं पापबुद्धिं शत्रुं जनस्य मन्युं क्रोधं च अभिभव, तदेति पूर्वत्रान्वयः । दूढ्या दूढ्यम् इति च पाठौ ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तत्) उस (द्युम्नम्) यशको (आभर) हमें दो कि (यत्) जब (आसदने) यज्ञमण्डपमें वर्त्तमान (कञ्चित्) किसी भी (अत्रिणम्) भक्षण करनेवाले राक्षसादिको (सासाहा) अत्यन्त तिरस्कारयुक्त करो तथा (दूढ्यम) पापबुद्धि शत्रुको (जनस्य) जनके (मन्युम्) क्रोधको भी तिरस्कारयुक्त करो ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।

२उ ३ २उ ३ १ २

विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । विश्वमना ऋषिः । छ० उष्णिक् । दे० अग्निः । विश्पतिः विशां पतिः पालयिता शितः, हविर्भिस्तीक्ष्णीकृतः सोऽग्निः सुप्रीतः सुष्ठु प्रीतः सन् मनुषः मनुष्यस्य विशे विश निवेशने (तु० प०) गृहे यद्वै यदा खलु वर्त्तते तदानीम् अग्निः विश्वा इत् विश्वान्येव तस्य बाधकानि रक्षांसि प्रतिषेधति हिनस्ति । षिधु गत्यां भौवादिकः । उ प्रसिद्धौ । विशे विशि इति च पाठौ ॥ ८ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिक-मार्ग-प्रवर्त्तक-श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोव्याख्याने आग्नेय-पर्वणि प्रथमोऽध्यायः ।

इति समाप्तं आग्नेयपर्व आग्नेयं काण्डं वा ।

(विश्पतिः) यजमानोंका पालन करनेवाला (शितः) हवियोंसे तीक्ष्ण किया हुआ (अग्निः) अग्नि (सुप्रीतः) भलेप्रकार प्रसन्न हुआ (मनुषः) मनुष्यके (विशे) घर जब होता है तब (अग्निः) अग्नि (विश्वा इत्) उसको पीड़ा देनेवाले सब ही (रक्षांसि) राक्षसोंको (प्रतिषेधति) नष्ट कर देता है (उ) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

आग्नेयकाण्ड समाप्त.

---

* श्रीः *

अथ द्वितीयाध्याय आरभ्यते ।

* अथ ऐन्द्रं पर्व *

* अस्मिन्नध्याये इन्द्रः स्तूयते *

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धे तृतीया दशतिः ।

१२ ३१ २र ३२३१२
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३२३१२
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

अथ प्रथमे खण्डे—सेयं प्रथमा । शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । गायत्री छन्दः । दे० इन्द्रः । हे स्तोतारः ! वः यूयम् सुते अभिषुते सोमे सति पुरुहूताय बहुभिर्यजमानैराहूताय सत्वने शत्रूणां सादयित्रे । यद्वा धनानां सनित्रे दात्रे इन्द्राय तत् स्तोत्रम् सचा सह संहता भूत्वा गाय गायत । यत् स्तोत्रं शाकिने शक्तिमते इन्द्राय शं सुखकरं भवति । गवे न यथा गवे यवसं सुखकरं तद्वदित्यर्थः ॥ १ ॥

हे स्तोताओं ! (वः) तुम (सुते) सोमके अभिषुत होनेपर (पुरुहूताय) बहुतसे यजमानोंसे आह्वान किये हुए (सत्वने) शत्रुओंको घटानेवाले अथवा धनोंके देनेवाले इन्द्रके अर्थ (तत्) स्तोत्रको (सचा) इकट्ठे होकर (गाय) गान करो (यत्) जो स्तोत्र (शाकिने) शक्तिमान् इन्द्रको (गवे न) गौको घुसकी समान (शम्) सुखदायक होता है ॥ १ ॥

१२ ३१ २ ३१२ ३१२३
यस्ते नूनꣳ शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१२ ३१ २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। श्रुतकक्ष ऋषिः। अत्र सोमः स्तूयते—हे शतक्रतो! शतविधप्रज्ञान! हे इन्द्र! द्युम्नितमः यशस्वितमः यः मदः माद्यन्त्यनेन इति मदः सोमः य सोमः नूनं पुरा ते त्वदर्थम् अस्माभिरभिषुतोऽस्ति तेन अस्माभिर्दीयमानेन सोमेन नूनम् इदानीम् मदे तत्पानेन तव मदे सञ्जाते सति अस्मानपि मदेः धनादिदानेन त्वं मादय। मदी हर्षे, अत्रान्तर्भावितण्यर्थः, छन्दसि बहुलम् इति शप्॥ २॥

(शतक्रतो) सैंकड़ों प्रकारका ज्ञान रखनेवाले हे इन्द्र! (द्युम्नितमः) परमयशस्वी (यः) जो (मदः) सोम (नूनम्) निश्चय पहिले ही (ते) तुम्हारे लिये हमने अभिषुत किया है (तेन) उस हमारे दिये हुए सोमसे (नूनम्) इस समय (मदे) उसके पीनेसे आपको प्रसन्नता होनेपर हमें भी (मदेः) धन आदि देकर आप हर्षित कीजिये॥ २॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
३ १ २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया॥ ३॥

अथ तृतीया। ऋषिः हर्यतः प्रगाथः। हे गावः घर्मदुघाः। यूयम् अवटे अवटं महावीरं प्रति उप वद उपावत वर्णव्यत्ययः (३, ४, ९८) उपागच्छत। यज्ञस्य घर्मयागस्य साधनभूते रप्सुदा रप्सुदे आ रिप्सोः फलं रिप्साः ... ... वा, यद्वा ... रप् मन्त्रः तेन सुदातव्ये अथवा पुरःचरणे (भ्वा०आ०) रपा मन्त्रेण क्षारणीये दोहनीये ईदृशे गवाजयोः पयसी मही महती बहुले अपेक्षिते अत उपावत गोशब्दो अजाया अप्युपलक्षकः, अजापयसोऽपि महावीरे आसेचनीयत्वात्। अपिच अस्य महावीरस्य उभा उभौ कर्णा कर्णस्थानीयौ द्वौ रुक्मौ हिरण्यया हिरण्मयौ सुवर्णरजतमयावित्यर्थः। उपवदावटे इति छन्दोगाः उपावतावतम् इति बह्वृचाः॥ ३॥

(गावः) हे गौओं! तुम (अवटे) महावीरके प्रति (उपवद) प्राप्त हूजिये (यज्ञस्य) घर्मयागके साधनभूत (रप्सुदा) मंत्रके द्वारा दुहने योग्य गौ और बकरियोंके दूध (मही) बहुतसे आवश्यक हैं, और इस महावीरके (उभा) कर्णस्थानीय दो रुक्म (हिरण्यया) सुवर्ण और रजतके हैं॥ ३॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे।

२ ३१ २ ३ १२
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। द्वयोः श्रुतकक्षनाम ऋषिः। श्रुतकक्ष ऋषिरात्मानमेव सम्बोधयति, हे श्रुतकक्ष आत्मन्! अरम् अलं गायत, वचनव्यत्ययः। (३, १, ८५) गाय गीतिं कुरु। किमर्थमिन्द्रोद्देशेन स्तुतिस्तत्राह, अश्वाय इन्द्रेण दीयमानायाश्वाय तदर्थम्, अरम् अलं गाय इन्द्रविषयं स्तोत्रं कुरु, तथा गवे अलं गाय, इन्द्रस्य इन्द्रकर्त्तृकाय धाम्ने गृहाय तदर्थञ्च अरम् पर्याप्तं स्तुहि गृहादिकमिन्द्रः प्रयच्छति, तस्मै गायेति, यद्वा इन्द्रस्येति कर्मणि षष्ठी, गवादिलाभार्थमिन्द्रं स्तुहि। श्रुतकक्षा, श्रुतकक्षः इति च पाठौ ॥ ४ ॥

यज्ञकर्त्ता अपनेसे कहै कि-(श्रुतकक्ष) हे वेदप्रिय आत्मन् (अश्वाय) इन्द्रके दिये हुए अश्वके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गवे) गौओंके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (इन्द्रस्य) इन्द्रसंबंधी (धाम्ने) गृहकी प्राप्तिके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गायत) वैदिक स्तुतिका गान कर ॥४॥

१ २र ३२ ३ २३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
१ २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। श्रुतकक्ष ऋषिः। यजमाना आहुः, तम् पूर्वोक्तलक्षणम् इन्द्रम् वाजयामसि सोमेन स्तुतिभिर्वाजयामः वाजवन्तं कुर्मः, किमर्थम्? महे महान्तम् वृत्राय अपामावरकं वृत्रासुरं हन्तवे हन्तुम्, सोमपानेन मत्तः स्तुतिभिर्वा स्तुतः सन्, वृत्रहत्यायां च, वाजयामसि वाजवन्तं करोतीत्यर्थे तत्करोतीति णिच्, णाविष्ठवत् इति णेरिष्ठवद्भावात् टेः (६, ४, १५५) इति टिलोपः, विन्मतोर्लुक् (५, ३, ६५) इति वचनान्मतुपो लुक् वृषा धनानां सेक्ता दाता सः इन्द्रः वृषभः अस्माकं स्तोतॄणां सोमस्य दातॄणां धनादिसेचको दाता भुवद् भवतु ५

यजमान कहते हैं, कि-(तम्) उस (महे) बड़े (वृत्राय हन्तवे) जलोंको रोकनेवाले वृत्रासुरके नाशक (इन्द्रम्) इन्द्रको (वाजयामसि) बलवान् करते हैं (वृषा) धनोंका दाता (सः) वह इन्द्र (वृषभः) हमें धन देनेवाला (भुवत्) होय ॥ ५ ॥

१२ ३ २३ २ ३ १२ ३ १ २र
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।

१ २र ३ १ २र

त्वꣳ सन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः। हे इन्द्र! त्वम् सहसः परेषामभिभावुकाद् बलात् अधि जातः असि, अधिः पंचम्यर्थानुवादकः। वृत्रादिवधहेतुभूताद् बलाद्धेतोस्त्वं प्रख्यातो भवसि इत्यर्थः। अपि च ओजसः ओजोनाम बलहेतुः हृदयगतं धैर्यं, तस्मादपि त्वं जातोऽसि। हे वृषन् वर्षितः। सन् श्रेष्ठः त्वम् वृषा इत् असि कामानां वर्षितैव भवसि ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (त्वम्) तू (सहसः) दूसरोंका तिरस्कार करनेवाले (बलात्) बलसे (ओजसः) हृदयमें के धैर्यसे (अधिजातः) प्रसिद्ध हुआ है (वृषन्) हे वरदानोंकी वर्षा करनेवाले (सन्) श्रेष्ठ (त्वम्) तू (वृषा-इत्-असि) इच्छित फलोंकी वर्षा करनेवाला है ॥६॥

३ १ २र ३ २उ ३

यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत्

३ १ २ ३२ ३२

चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी वृचस्य यजमानैरनुष्ठीयमानो यागः इन्द्रं देवम् अवर्द्धयत् श्रूयते हि, इन्द्र इदं हविरजुषतावीवृधत् महो ज्यायोकृतः इति स इन्द्रः यत् यस्मात् भूमिम् पृथिवीं (नि० १, १, १९) व्यवर्त्तयत् वृष्ट्यादिप्रदानेन विशेषेण वर्त्तमानामकरोत्। किं कुर्वन्? दिवि अन्तरिक्षे मेघम् ओपशम् उपेत्य शयानं चक्राणः कुर्वन् यद्वा आत्मनि समवेतो वीर्यविशेषः ओपशः, तमन्तरिक्षे कुर्वन् ॥ ७ ॥

(यज्ञः) यजमानोंके कियेहुए यज्ञने (इन्द्रम्) इन्द्रदेवताको (अवर्द्धयत्) बढ़ाया, (यत्) क्योंकि (दिवि) अन्तरिक्षमें मेघको (ओपशम्) फैलाहुआ (चक्राणः) करतेहुए उस इन्द्रने (भूमिम्) पृथिवीको (व्यवर्त्तयत्) वर्षा आदिके द्वारा बढ़ाया ॥ ७ ॥

१२ ३२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।

३ २ ३ १ २

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । हे इन्द्र ! यथा त्वम् एक इत् एक एव केवलः वस्वः वसुनः धनस्य ईशिषे, एवम् अहम् अपि यद् यदि ईशीय ऐश्वर्ययुक्तः स्याम् । तदानीं मे मम स्तोता गोसखा स्यात् गोभिः सहितो भवेत् ईश्वरस्य तव स्तोता कुतो हेतोर्गोसहितो न भवेत् ? अपि तु भवेदेवेत्यभिप्रायः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यथा) जैसे (त्वम्) तू (एक इत्) अकेला ही (वस्वः) धनका स्वामी है, ऐसे ही (अहम्) मैं (यत्) जो (ईशीय) ऐश्वर्ययुक्त होऊँ तो (मे) मेरा (स्तोता) स्तोता (गोसखा) गौओं सहित (स्यात्) हो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय
१ २ ३ २३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥

अथ नवमी । मेधातिथिराङ्गिरस ऋषिः । हे सोतारः अभिषोतारोऽध्वर्यवः ! मद्याय मादयितव्याय, वीराय विक्रान्ताय, शूराय शौर्यवते इन्द्राय पन्यम् पन्यम् इत् सर्वत्र स्तुत्यमेव सोमम् आ धावत अभिगमयत प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ ९ ॥

(सोतारः) हे सोमका रस निकालनेवाले अध्वर्युओं ! (मद्याय) प्रसन्न करनेयोग्य (वीराय) पराक्रमी (शूराय) शूर इन्द्रके अर्थ (पन्यं पन्यं इत्) सर्वत्र प्रशंसाके योग्य (सोमम्) सोमको (आ धावत) अर्पण करो ॥ ९ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥

अथ दशमी । काण्वः प्रियमेध ऋषिः । हे वसो वासयितः ! इन्द्र ! इदम् पुरोवर्त्तमानं,सुतम् अभिषुतम्,अन्धः अन्नम् सोमलक्षणम्,पिब यथा उदरम् त्वदीयं जठरं सु पूर्णम् अतिशयेन सम्पूर्णम् भवति तथेत्यर्थः । हे अनाभयिन् ! आ समन्तात् बिभेत्याभयी, बिभेतेरौणादिक इनिः, न आभयी अनाभयी तादृश ! हे इन्द्र !, ते तुभ्यं त्वदर्थं, ररिमा उक्तगुणं सोमं दद्मः । रा दाने, छान्दसो लिट् ॥१०॥

(वसो) हे अन्तर्यामिन् इन्द्र ! (इदम्) इस वर्त्तमान (सुतम्)

अभिषव किये हुए (अन्धः) सोमरूप अन्नको (पिबा) पियो, जिस से कि (उदरम्) तुम्हारा पेट (सुपूर्णम्) सम्यक् पूर्ण हो (अनाभयिन्) हे सब ओरसे निर्भय इन्द्र ! (ते) तुम्हारे अर्थ (ररिमा) यह सोम अर्पण करते हैं ।। १० ।।

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

२उ ३२ ३१२ ३१ २र
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्य्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य्य ।। १ ।।

अथ द्वितीये खण्डे—सेयं प्रथमा । द्वयोः सुतकक्षः श्रुतकक्षो वा ऋषिः। अस्मिन् तृचे सूर्य्यरूपेणेन्द्रस्य स्तुतिः क्रियते-असौ वा आदित्य इन्द्रः इति हारिद्रविकम् । हे सूर्य्य ! द्वादशसु भानुषु इन्द्रोऽपि सूर्य्यात्मना पठितः, तस्मात् सूर्यात्मक ! सुवीर्य ! हे इन्द्र ! श्रुतामघम् सर्वदा देयत्वेन विख्यातधनम्, अतएव वृषभम् याचमानानां धनस्य वर्षितारं, नर्य्यापसम् नरहितं नर्य्यम् नरहितकर्माणम् अस्तारं दानशौण्डम् औदार्यवन्तम् एतादृशानुभावम् उदेषि अभित उदेषि । इदम् अवधारणे,त्वमेव तस्य यज्ञे सूर्य्यात्मना उद्गतोऽसि। घ इति प्रसिद्धौ॥१॥

(सूर्य) हे सूर्यरूप श्रेष्ठ वीर इन्द्र (श्रुतामघम्) जिसका धन सर्वदा देनेयोग्य प्रसिद्ध है, इसीसे (वृषभम्) याचकोंके निमित्त धनकी वर्षा करनेवाले (नर्यापसम्) मनुष्योंका हितकारी कर्म करनेवाले (अस्तारम्) उदारस्वभाव (इदम्) ऐसे अपने प्रभावको तुम (उदेषि) चारों ओरसे प्रकाशित करते हो (घ) यह प्रसिद्ध है॥१॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य्य ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।। २ ।।

अथ द्वितीया । अत्र शौनकः,—“यदद्यकच्चेत्युदिते रवौ स्तुत्वा पुरन्दरम् । गृणन्नपाहते रिप्रं वश्यं वा कुरुते जगत् ॥” इति ॥ हे वृत्रहन् वृत्रस्य अपामावरकस्य मेघस्य हन्तः ! हे सूर्य सूर्यात्मकेन्द्र अद्य अस्मिन् दिने यत् कच्च यत् किञ्चित् पदार्थजातम् अभि आभिमुखीकृत्य उद्गाः इण् गतौ उत्पूर्वः, तस्य लुङि गादेशः उदयं प्राप्तवानसि तत् सर्वं पदार्थजातं ते तव वशे वशवर्त्ति स्वायत्तमस्ति ॥२॥

(वृत्रहन्) हे जलोंको रोकनेवाले मेघके नाशक ! (सूर्य) हे सूर्य-रूप इन्द्र (अद्य) आजके दिन जो कुछ पदार्थसमूह (अभि) उन्नत दशामें (उदगाः) प्रकाशित किया है (इंद्र) हे इन्द्र ! (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरे (वशे) वशमें है ॥ २ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ १

इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । भरद्वाज ऋषिः । यः इन्द्रः तुर्वशं यदुं च एतत्संज्ञौ राजानौ शत्रुभिः दूरदेशे क्षिप्तौ सुनीती सुनीत्या शोभनेन नयनेन परावतः तस्मात् दूरदेशात् आनयत् आनीतवान् युवा तरुणः सः इंद्रः नः अस्माकं सखा भवतु ॥ ३ ॥

(यः) जो इन्द्र (तुर्वशम्) तुर्वशको (यदुम्) यदु को शत्रुओंके द्वारा दूर फेंके जानेपर (सुनीती) श्रेष्ठ नीतिके द्वारा (परावतः) तिस दूर देशसे (आनयत्) लौटालाया (युवा) तरुण (सः) वह (इंद्रः) इन्द्र (नः) हमारा (सखा) मित्र हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत ।

२ ३ १ २ ३ २

त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! आदिशः आदेष्टा समन्ता-दायुधान्यतिसृजन् सूरः सृ गतौ (भ्वा० प०) सर्वत्र सरणशीलः राक्षसः अक्तुषु रात्रिषु नः अस्माकं अभ्यायमत् आ आभिमुख्येन मा नियन्ताऽगन्ता भवतु । यद्यागन्ता चेत् तदा तत् रक्षः त्वायुजा त्वत् सहायेन वयं वनेम हन्याम श्वथ-क्रथ-हिंसार्थाः,वन चेत्यत्र (भ्वा०प०) पठितत्वाद्धिंसार्थः । आयमत् आयमन् इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (आदिशः) चारों ओरसे शस्त्र बरसाने वाला (सूरः) सर्वत्र विचरनेवाला राक्षस (अक्तुषु) रात्रियोंमें (नः) हमारे (मा अभ्यागमयत्) अभिमुख होकर न आसके । और आ-जाय तो (तत्) उस राक्षसको हम (त्वायुजा) तेरी सहायता से (वनेम) नष्ट करें ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳ सदासहम् ।
१ २ ३ १ २
वर्षिष्ठमूतये भरा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । अस्याः परस्याश्च मधुच्छन्दा ऋषिः । हे इन्द्र ! ऊतये अस्मद्रक्षार्थम् रयिम् धनम् आ भर आहर, कीदृशं रयिम्? सानसिम् सम्भजनीयम् सजित्वानम् समानशत्रुजयशीलम् धनेन हि शूरान् भृत्यान् सम्पाद्य शत्रवो जीयन्ते सदासहम् सर्वदा शत्रूणामभिभवनहेतुम् वर्षिष्ठम् अतिशयेन वृद्धम् प्रभूतमित्यर्थः ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (सानसिम्) सम्यक् प्रकार भोगने योग्य (सजित्वानम्) समानशत्रुओंपर विजय दिलानेवाले (सदासहम्) सदा शत्रुओंका तिरस्कार करनेके साधन (वर्षिष्ठम्) बहुतसे (रयिम्) धनको (आभर) दीजिये ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वयम् अनुष्ठातारः महाधने प्रभूतधननिमित्तम् इन्द्रम् हवामहे आह्वयामः, अर्भे अर्भके स्वल्पेऽपि धने निमित्तभूते सति इन्द्रं हवामहे । कीदृशम् इन्द्रम् ? युजं सहकारिणं समाहितं वा । वृत्रेषु शत्रुषु धनलाभविरोधिषु प्राप्तेषु तन्निवारणाय वज्रिणं वज्रोपेतम् । महाधनशब्दो यद्यपि संग्रामवाची तथापि महद्धनमत्र विवक्षितम् ॥ ६ ॥

(वयम्) हम (अर्भे) थोड़ासा धन होनेपर (इन्द्रम्) इन्द्रको (महाधने) बहुतसे धनके निमित्त (युजम्) सहायक (वृत्रेषु) धनलाभमें विघ्न डालनेवालोंको निवारण करनेके लिये (वज्रिणम्) वज्रधारी (इन्द्रम्) इन्द्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
१ २ ३ १ २
तत्राददिष्ट पौꣳस्यम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विशोक ऋषिः । इन्द्रः कद्रुवः कद्रुनामकस्य ऋषेः

सम्बन्धिनं सुतम् अभिषुतं सोमम् अपिबत् पीतवान् । सहस्रबाहे सहस्रबाह्वाख्यं शत्रुम् अहन्निति शेषः । तत्र तस्मिन्नवसरे पौंस्यम् इन्द्रस्य वीर्य्यम् आ ददिष्ट आ दीप्यत । तत्रादर्दिष्ट इति छन्दोगाः, अत्रादर्दिष्ट इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (कद्रुवः) कद्रुके (सुतम्) निकाले हुए सोमरसको (अपिबत्) पीताहुआ (सहस्रबाह्वम्) सहस्रबाहुको [अहनत्] नष्ट करता हुआ (तत्र) उस समय (पौंस्यम्) इन्द्रकी वीरता (आददिष्ट) प्रकाशित हुई ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् ।

३ २ १ २

विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वसिष्ठ ऋषिः । हे वृषन् ! कामानां वर्षितः ! इन्द्र ! त्वायवः त्वत्कामाः वयं वासिष्ठाः त्वाम् अभि प्र नोनुमः प्रकर्षेण स्तुमः । हे वसो ! वासयितः इन्द्र ! अस्य इदम् नः अस्मदीयं स्तोत्रं विद्धी अवधारय ॥ ८ ॥

(वृषन्) हे मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्र) इन्द्र (त्वायवः) तेरी कामना करनेवाले हम तुझको (अभि प्र नोनुमः) अभिमुख होकर बहुत २ प्रणाम करते हैं (वसो) हे व्यापक इन्द्र (अस्य) इस (नः) हमारे स्तोत्रको (विद्धी) समझ लीजिये ॥ ८ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

अथ नवमी । द्वयोस्त्रिशोक ऋषिः । ये ऋषयः आ घा आभिमुख्येन खलु अग्निम् इन्धते दीपयन्ति येषां च युवा नित्यतरुणः इन्द्रः सखा भवति ते आनुषक् आनुपूर्व्येण बर्हिः स्तृणन्ति ॥ ९ ॥

(ये) जो (आ घा) निश्चय अभिमुख होकर (अग्निम्) अग्नि को (इन्धते) दीप्त करते हैं (येषाम्) जिनका (युवा) सदा तरुण (इन्द्रः) इन्द्र (सखा) मित्र होता है वह (आनुषक्) क्रम से (बर्हिः) कुशाओंको (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं ॥ ९ ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे इन्द्र ! विश्वाः सर्वाः द्विषः द्वेष्ट्रीः शत्रुसेनाः अप भिन्धि विदारय बाधः हिंसित्रीः मृधः संग्रामान् स्पृधः, मृधः, इति संग्रामनामसु पठितत्वात् परिजही हिंस्याः । ततः तासां स्पार्हं स्पृहणीयं तत् प्रसिद्धं वसु आ भर अस्मभ्यम् आ हर ॥ १० ॥

हे इन्द्र (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेष करनेवाली शत्रुसेनाओं को (अप भिन्धि) विदीर्ण करो (बाधः) नाश करनेवाले (मृधः) संग्रामोंको (परिजाहि) नष्ट करो, तदनन्तर उनके (स्पार्हम्) स्पृहा करने योग्य (तत्) उस प्रसिद्ध (वसु) धनको (आभर) हमें लाकर दो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

---

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
१ २र ३ १ २
नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥

अथ तृतीयखण्डे—सेयं प्रथमा । कण्वो घौर ऋषिः । एषां मरुतां हस्तेषु स्थिताः कशाः स्वस्ववाहनताडनहेतवः यद्वदान् यद् वदन्ति ध्वनिं कुर्वन्ति, तं ध्वनिम् इहेव अत्रैव स्थित्वा शृण्वे शृणोमि । स ध्वनिविशेषः यामम् संग्रामे चित्रं विविधं शौर्यं न्यृञ्जते नितरामलं करोति ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा (६, ७, २४) इति यास्कः ॥ १ ॥

(एषाम्) इन मरुतोंके (हस्तेषु) हाथोंमें स्थित (कशाः) अपने२ वाहनोंको ताड़न करनेके कोड़े (यद्वदान्) जो ध्वनि करते हैं उस ध्वनिको (इहेव) यहां ही स्थित होकर (शृण्वे) सुनता हूँ, वह ध्वनि (यामम्) संग्राम में (चित्रम्) नानाप्रकारकी शूरताको (न्यृञ्जते) अत्यन्त शोभित करता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । द्युयोस्त्रिशोक ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सोमिनः अभिषुतसोमाः सखायः इमे उ खल्वस्मदीया जनाः पुष्टावन्तः सम्भृतपाशाः यथा पशुं पशुमिव वि चक्षते वि पश्यन्ति ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सोमिनः) सोमरस लियेहुए (सखायः,इमे,उ) निःसन्देह यह हमारे पुरुष (पुष्टावन्तः) पाशधारी (पशुं यथा) जैसे पशुकी ओरको देखा करते हैं तैसे ही एकाग्रचित्त होकर (त्वा)तुम्हें (विचक्षते) विशेषरूपसे देखरहे हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
३ १ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्सः काण्व ऋषिः । विशः निविशन्त्यः विश्वाः सर्वाः कृष्टयः प्रजाः अस्य इन्द्रस्य मन्यवे क्रोधाय यद्वा मन्युर्मननसाधनं स्तोत्रं तदर्थं सं नमन्त सम्यक् स्वतएव नमन्ति प्रह्वी भवन्ति । तत्र दृष्टान्तः समुद्राय इव यथा समुद्रम् अब्धिं प्रति सिन्धवः स्यन्दनशीला नद्यः स्वयमेव नमन्ति तद्वत् ॥ ३ ॥

(विशः) बैठती हुई (विश्वाः) सब (कृष्टयः) प्रजाएं (अस्य) इस इन्द्रके (मन्यवे) क्रोधके निमित्त वा मननके साधन स्तोत्रके निमित्त (समुद्राय, सिन्धवः, इव) जैसे समुद्रकी ओरको बहनेवाली नदियें स्वयं ही झुकती चलीजाती हैं,तैसे ही (संनमन्त) भलेप्रकार से आप ही नमती चलीजाती हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । कुसीदी काण्व ऋषिः । हे देवाः ! देवानां स्वतेजसा सर्वतो दीप्यमानानाम् इत् एवार्थे युष्माकमेव महत् व्याप्तं मंहनीयं वा अवः पालनं यद् विद्यते तत् वृष्णां कामानां वर्षितृणां युष्माकं स्वभूतं तद्रक्षणं यजमानाः वयम् आ वृणीमहे समन्तात् सम्भजामहे किमर्थम् ? अस्मभ्यम् ऊतये पूर्वमस्मभ्यमस्मदर्थमिति साधारण्येनोक्तं तद् विशिनष्टि ऊतय इति अस्माकं पालनायेति ॥ ४ ॥

हे देवताओं ! (देवानाम्) सब ओरसे अपने तेजके द्वारा दीप्यमान आपका (इत्) ही (महत्) पूजनीय (अवः) पालन है (वृष्णाम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले आपके निजधनरूप (तत्) उस पालन को (वयम्) हम यजमान (अस्मभ्यम् ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (आवृणीमहे) चारों ओरसे प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमानाꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मेधातिथिः ऋषिः । हे ब्रह्मणस्पते ! एतन्नामक देव त्वं सोमानाम् अभिषवस्य कर्त्तारं माम् अनुष्ठातारं स्वरणं देवेषु प्रकाशनवन्तम् कृणुहि कुरु । तत्र दृष्टान्तः कक्षीवन्तम् एतन्नामकमृषिम् इवशब्दोऽत्राध्याहार्य्यः कक्षीवान् यथा देवेषु प्रसिद्धः तद्वदित्यर्थः यः कक्षीवान् औशिजः उशिजः पुत्रः तमिवेति पूर्वत्र योजना कक्षीवतोऽनुष्ठातृषु मुनिषु प्रसिद्धिस्तैत्तिरीयैराम्नायते एवं वै पर आट्णारः कक्षीवानौशिजो वीतहव्यः श्रायसस्त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः प्रजाकामा अचिन्वत इति । ऋगन्तरेऽप्यृषित्वकथनेन अनुष्ठातृत्वप्रसिद्धिः सूच्यते अहं कक्षीवान्नृषिरस्मि विप्रः इति । तस्मादस्या नुष्ठातारं प्रति दृष्टान्तत्वं युक्तम् । मन्त्रोऽप्येवं यास्केनैव व्याख्यातः सोमानां सोतारं प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तमिव य औशिजः कक्षीवान् कक्ष्यावानौशिजःउशिजः पुत्रः उशिक्वष्टेः कान्ति कर्मणोऽपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात् तं सोमानं सोतारं मां प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते ! (६,३,१२) इति । अस्मिन् मन्त्रे सोममिति पदेन ब्राह्मण इति पदेन च सूचितं तात्पर्यम् तैत्तिरीया आमनन्ति सोमं स्वरणमित्याह सोमपीथमेवावरुन्धे कृणुहि ब्रह्मण स्पत इत्याह ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्धे इति ॥ ५ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम (सोमानाम्) सोमका रस निकालने वाले मुझ अनुष्ठाताको (कक्षीवन्तम्) जैसे कि कक्षी वान् देवताओंमें प्रधान है (यः) जो कक्षीवान् (औशिजः) उशिजका पुत्र है उसकी समान ही मुझे (स्वरणम्) देवताओंमें प्रकाशवाला (कृणुहि) करिये ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ १ २
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६॥

अथ षष्ठी। श्रुतकक्ष ऋषिः। अयं परोक्षकृतः। वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता भूर्य्यासुतिः बहुषु देशेषु इन्द्रार्थं सोमा आसूयन्ते अभिषूयन्त इति तादृशः,यद्वा बहूनि सोमादिहवींषि इन्द्रार्थमासूयन्ते हूयन्त इति तादृशः। बोधन्मनाः बुध अवगमने (भ्वा०प०) औणादिकोऽतृप्रत्ययः। यस्य मनः स्तोतॄणामभिमतं बुध्यते जानातीति तथोक्तः। इत् अवधारणे नः अस्माकं बोधन्मना एव अस्तु सर्वदास्मदभीप्सितानि जानात्वेवेत्यर्थः। यद्वा एतादृश इन्द्रः सोऽस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे भवत्विति। किं ततः? शक्रः संग्रामे शत्रुहननसमर्थः इन्द्रः आशिषम् अस्मदीयां स्तुतिम् आशासनं वा शृणोतु। बोधन्मना बोधिन्मना इति पाठौ ॥ ६ ॥

(वृत्रहा) वृत्रासुरका नाशक (भूर्यासुतिः) जिसके निमित्त बहुत से देशोंमें सोमका रस निकाला जाता है ऐसा (नः) हमारे (बोधन्मनाः) सर्वदा मनोरथोंको जाननेवाला (इत्) ही (अस्तु) होय (शक्रः) संग्राममें शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ वह इन्द्र (आशिषम्) हमारी स्तुतिको (शृणोतु) सुने ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्।
१ २ ३ १ २
परा दुष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। श्यावाश्व ऋषिः। हे सवितः देव! नः अस्मभ्यम् अद्य अस्मिन् यागदिने प्रजावत् पुत्राद्युपेतं सौभगं धनं सावीः प्रेरय। दुष्वप्न्यम् दुःस्वप्नं दुःस्वप्नवद् दुःखकरं दारिद्र्यं परासुव दूरे प्रेरय॥७।

(सवितः देव) हे सूर्यदेव (नः) हमें (अद्य) इस यज्ञके दिन आज (प्रजावत्) पुत्रादि सहित (सौभगम्) धन (सावीः) दीजिये (दुःस्वप्न्यम्) खोटे स्वप्नकी समान दुःखदायक दारिद्र्यको (परासुव) दूरकरो ॥ ७ ॥

२ १ २३ १ २र ३ २ ३ १ २
क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
३ १ २र
ब्रह्मा कस्तꣳ सपर्य्यति ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । प्रागाथः काएव ऋषिः । स्यः सः,वृषभः वर्षिता,युवा नित्य-तरुणः, तुविग्रीवः प्रवृद्धग्रीवः, अनानतः कदाचिदप्यनवनतः इन्द्रः क्व ? कुत्र वर्त्तते इति को जानातीत्यर्थः । कः ब्रह्मा स्तोता तम् इन्द्रं सपर्य्यति पूजयति ॥ ८ ॥

(सः) वह (वृषभः) मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला (युवा) नित्य तरुण (तुविग्रीवः) बढ़ीहुई ग्रीवावाला (अनानतः) कभी भी किसी को न नमनेवाला इन्द्र (क्व) कहां है इस बातको कौन जानता है ? (कः) कौन (ब्रह्मा) स्तोता (तम्) उस इन्द्रको (सपर्यति) पूजता है ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपह्वरे गिरीणाᳬं सङ्गमे च नदीनाम् ।

३ १ २र

धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वत्स ऋषिः । गिरीणां पर्वतानाम् उपह्वरे उपह्वर्त्तव्ये प्रान्ते । नदीनां सरितां सङ्गमे सङ्गमने च ईदृग्विधे देशे क्रियमाणाया धिया स्तुत्या विप्रः मेधावी इन्द्रः अजायत प्रादुर्भवति, स्तुतिं श्रोतुमिति शेषः । गिरीणामित्यत्र नामन्यतरस्याम् (६,१,१७७) इति नाम उदात्तत्वम् । सङ्गमे सङ्गथे च इति पाठौ ॥ ९ ॥

(गिरीणाम्) पर्वतोंके (उपह्वरे) प्रदेशोंमें (च) और (नदीनाम्) नदियोंके (सङ्गमे) सङ्गम पर (धिया) की हुई स्तुतिसे (विप्रः) मेधावी इन्द्र (अजायत) स्तुतिके सुननेको प्रकट होता है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रᳬं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

१२ ३ २ ३ १ २

नरं नृषाहं मᳬंहिष्ठम् ॥ १० ॥

अथ दशमी इरिमिठ ऋषिः । चर्षणीनां मनुष्याणां मध्ये सम्राजं सम्यग् राजमानम् । यद्वा मनुष्याणामधीश्वरम् इन्द्रम् हे स्तोतारः ! प्रस्तोत प्रकर्षेण स्तुत । कीदृशम् ? गीर्भिः स्तुतिभिः नव्यं स्तुत्यं नरं नेतारं नृषाहम् नृणां शत्रुमनुष्याणाम् अभिभवितारम् मंहिष्ठम् दातृतमम् ॥ १० ॥

(चर्षणीनाम्) मनुष्योंमें (सम्राजम्) भलेप्रकार विराजमान अथवा मनुष्योंके अधीश्वर (गीर्भिः) स्तोत्रोंकरके (नव्यम्) स्तुति करने योग्य (नरम्) नेता (नृषाहम्) शत्रु मनुष्योंका तिरस्कार

करनेवाले (मंहिष्ठम्) परम दाता (इन्द्रम्) इन्द्रको (प्रस्तोता) अधिक स्तुति करो ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
२ ३।२ ३ १ २
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥

अथ चतुर्थखण्डे—सेयं प्रथमा । श्रुतकक्ष ऋषिः । शिप्री, शिप्रे हनू नासिके वा शोभनहनुः । यद्वा शिप्राः शीर्षण्याः, सुशिरस्त्राणः सः इन्द्रः एव प्रहोषिणः प्रकर्षेण देवान् हविर्भिर्जुह्वतः सुदक्षस्य एतन्नामकस्य ऋषेः सम्बन्धि यवाशिरः श्रीञ् पाके (क्र्या०उ०) आङ्पूर्वकस्य अपस्पृधेथामानृचुः इत्यादिना धातोः शिरादेशः यवैरामिश्रितयवैः सह पक्वम् इन्दोः सर्वत्र पात्रेषु क्षरन्तम् अन्धसः सोमलक्षणमन्नम् अपात् अपिबत् यद्वा सोमस्य भागम् इन्द्रार्थम् परिकल्पितं सोमांशम् अपिबत् । उ इत्यवधारणे ॥ १ ॥

(शिप्री) सुन्दर ठोढ़ी वा सुन्दर पगड़ीवाला (इन्द्रः) इन्द्र (प्रहोषिणः) अधिकताके साथ देवताओंके निमित्त हवि होमनेवाले (सुदक्षस्य) सुदक्षके (यवाशिरः) यवोंके साथ पकेहुए (इन्दोः) सोमलता से सब पात्रोंमें टपकते हुए (अन्धसः) सोमरूप अन्नको (उ) निश्चय (अपात्) पीताहुआ ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनवुर्गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मेधातिथि ऋषिः । हे पुरूवसो ! बहुधन ! यद्वा वसवो यज्ञाः बहुयज्ञ ! इन्द्र ! त्वा त्वाम् अभि इमाः अस्मदीयाः गिरः स्तुतयः प्रनोनवुः प्रकर्षेण पुनः पुनः स्तुवन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । नौतिरत्र व्याप्तिकर्मा । तत्र दृष्टान्तः गावो वत्सं न धेनवः यथा धेनवः गावः गृहे वर्त्तमानं वत्सं शीघ्रमभिगच्छन्ति तद्वत्, यद्वा अस्मदीया वाचः त्वाम् अभिनोनवुः शब्दयन्ति स्तुवन्ति, यथा गावो वत्समभिलक्ष्य हम्भारवं कुर्वन्ति तद्वत् ॥ २ ॥

(पुरूवसो) हे बहुत धनवाले इन्द्र (त्वा, अभि) तुम्हारी ओरको

(इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (प्रनोनवुः) अधिकतासे वार २ आकर प्राप्त होती हैं (गावः धेनवः, वत्सं, न) जैसे कि-धेनु गौएं अपने घर बँधेहुए बछड़ेके समीप आपहुँचती हैं ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोतम ऋषिः । अत्राह अस्मिन्नेव गोः गन्तुः चन्द्रमसः गृहे मण्डले त्वष्टुः एतत्संज्ञकस्य आदित्यस्य सम्बन्धि अपीच्यं रात्रौ अन्तर्हितं स्वकीयं यत् नाम तेजः तदादित्यस्य रश्मयः । इत्था इत्थम् अनेन प्रकारेण अमन्वत अजानन् । उदकमये स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्य्यकिरणाः प्रतिफलन्ति, तत्र प्रतिफलिताः किरणाः सूर्य्ये यादृशीं संज्ञां लभन्ते, तादृशीं चन्द्रेऽपि वर्त्तमाना लभन्त इत्यर्थः । एतदुक्तम् भवति यद्रात्रावन्तर्हितं सौरं तेजः तच्चन्द्रमण्डलं प्रविश्याहनीव नैशं तमो निवार्य्य सर्वं प्रकाशयति । ईदृग्भूततेजसा युक्तः सूर्य्य इन्द्र एव द्वादशस्वादित्येषु इन्द्रस्यापि परिगणितत्वात् । अतोऽहोरात्रयोः प्रकाशक इन्द्र एवेति इन्द्रस्तुतेः प्रतीयमानत्वात् इन्द्रो देवतेत्युपपन्नं भवति ईदृग्भूतस्य तेजसः आश्रयत्वेन चन्द्रमसः प्राधान्यविवक्षया चान्द्रमस्यामिष्टौ विनियोगोऽप्युपपद्यते । अत्र निरुक्तम्-अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्य आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोऽपि गौरुच्यते अत्राह गोरमन्वतेति (२,३,९), अत्र ह गोः सममंसतादित्यरश्मयः स्वंनामापीच्यमपगतमपचितमपिहितमन्तर्हितं वा अमुत्र चन्द्रमसो गृहे (४,४,२५) इति ॥ ३ ॥

(अत्रा ह) इस ही (गोः) गमन करनेवाले (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (गृहे) मण्डलमें (त्वष्टुः) त्वष्टा नामक आदित्यका (अपीच्यम्) रात्रिमें अन्तर्धान हुआ जो अपना (नाम) तेज है वह सूर्यकी किरणें हैं (इत्था) इसप्रकार (अमन्वत) मानागया है अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हुई सूर्यकी किरणें वही चेष्टा करती हैं, कि-जो सूर्यमण्डलमें करती हैं, सूर्यका तेज दिनकी समान रातमें भी चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हो अन्धकारका नाश करके सबको प्रकाशित करदेता है, ऐसे तेजवाला सूर्य इन्द्र ही है, क्योंकि बारह आदित्योंमें इन्द्रका भी गिनती है, इसकारण दिनरातका प्रकाशक इन्द्र ही है ॥ ३ ॥

२३ ३ १२३१२ ३२३१ २र

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्र पूषाभुवत्सचा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । भरद्वाज ऋषिः । यद् यदा इन्द्रः वृषन्तमः अतिशयेन वर्षिता इन्द्रः रितः गच्छतीः महीः महतीः अपः वृष्ट्युदकानि अनयत् इमं लोकं प्रापयति । तत्र तदानीं पूषा पोषको देवः सचा भुवत् इन्द्रस्य सहायो भवति ॥ ४ ॥

(यत्) जब (वृषन्तमः) अतिशय वर्षा करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (रितः) जातेहुए (महीः) बहुतसे (अपः) वर्षा के जलोंको (अनयत्) इस लोक में पहुँचाता है (तत्र) उस समय (पूषा) पोषक देवता (सचा) सहायक (भुवत्) होता है ॥ ४ ॥

१२ ३१२ ३ २ ३ २ ३ १ २

गौर्धयति मरुताᳬ श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

३२३ ३ १ २

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । बिन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः । मघोनां धनवतां मरुतां माता निर्मात्री गौः पृश्निरूपा । पृश्निर्वै पयसो मरुतो जाता इति श्रुतेः गौर्माध्यमिका वाक् तत्रैव मध्यमस्थाने मरुतामपि वर्त्तमानात् तेषां तत् पुत्रत्वमुपचर्यते सा धयति सोमं पिबति पोषयति वा स्वपुत्रान् मरुतः किमिच्छन्ती ? श्रवस्युः अन्नं कामयमाना । कीदृशी ? रथानां मरुतां वह्निः पृषतीभिः वडवाभिर्वोढ्री संयोजयित्री सा । युक्ता सर्वत्र सम्मता पूज्या भवति ॥ ५ ॥

(मघोनाम्) धनवान् (मरुताम्) मरुतोंकी (माता) रचनेवाली (रथानाम्) मरुतोंकी (वह्निः) बड़वाओंसे वहन कराने वाली (युक्ता) सर्वत्र पूजित (गौः) पृश्निरूपा गौ (श्रवस्युः) अन्नकी कामना करती हुई (धयति) अपने पुत्रोंका पोषण करती है ॥ ५ ॥

१२ ३ १२ ३ २ ३ १ २

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।

१ २ ३ १२ ३ २

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । द्वयोः श्रुतकक्ष एव सुकक्षो वा ऋषिः । हे मदानां

पते ! माद्यन्त्यनेनेति मदः सोमः मदोऽनुपसर्गे इति करणे अप् प्रत्ययः सोमानां स्वामिन् ! इन्द्र ! हरिभिः आ शतेन हरिभिरित्यादिषु बहूनामश्वानां श्रुतेः अत्रापि शतसहस्रसंख्याकैः अश्वैः सह नः अस्माकं यज्ञे सुतम् अभिषुतम् सोमम् उपयाहि तत्पानार्थं शीघ्रमागच्छ । पुनः उप नः इत्याद्युक्तिरादरार्था ॥ ६ ॥

(मदानाम्) सोमोंके (पते) स्वामिन् इन्द्र ! (हरिभिः) सैकड़ों सहस्रों घोड़ों सहित (नः) हमारे यज्ञमें (सुतं उपयाहि) निचोड़े हुए सोमको पीनेके लिये शीघ्र आइये [उप नो हरिभिः सुतम्, ऐसा मंत्रमें दूसरी बार आदरार्थ कहा है]॥ ६ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
१ २ ३ १ २र
अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । अध्वरे अस्मदीये यज्ञे वृधन्तः हविर्भिरिन्द्रं वर्द्धयन्तः इष्टाः इष्टवन्तः यागं कृतवन्तः सप्तसंख्याकाः होत्राः होत्रकाः अवभृथम् सुत्याभिषवम् अच्छ अभि प्रति ओजसा स्वतेजसा सहिताः । इन्द्रम् असृक्षत व्यसृजन् । यावदवभृथसमाप्ति होत्रका यजन्तीति ॥ ७ ॥

(अध्वरे) हमारे यज्ञमें (वृधन्तः) हवियोंसे इन्द्रको बढ़ातेहुए (इष्टाः) यज्ञ करनेवाले सात (होत्रा) होता (अवभृथं अच्छ) यज्ञांत स्नान होने पर्यंत (ओजसा) अपने तेजसे सम्पन्न होकर (इंद्रम्) इंद्रको (असृक्षत) आहुतिदान करतेहुए ॥ ७ ॥

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३ १ २र
अहꣳ सूर्य्य इवाजनि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वत्सः काण्व ऋषिः । पितुः पालकस्य ऋतस्य सत्यस्यापि तस्येन्द्रस्य मेधाम् अनुग्रहात्मिकां बुद्धिम् अहम् इत् अहमेव परिजग्रह परिगृहीतवानस्मि नान्यः । हि यस्मात् एवं तस्मात् अहं सूर्यः इव अजनि सूर्यो यथा प्रकाशमानः सन् प्रादुर्भवति तथा अहमजनिषम् प्रादुरभूवम् ॥ ८ ॥

(अहम् इत्) मैंने ही (पितुः) पालनकर्त्ता (ऋतस्य) सत्यस्वरूप इन्द्रकी (मेधाम्) अनुग्रहरूपा बुद्धिको (परिजग्रह) ग्रहण

किया है (हि) ऐसा होनेके कारण ही (सूर्यः, इव, अजनि) जैसे सूर्य प्रकाश करता हुआ प्रकट होता है तैसे ही मैं भी प्रकट हुआ हूँ ॥८॥

३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
१२ ३ २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥

अथ नवमी । शुनःशेप ऋषिः । क्षुमन्तः अन्नवन्तः वयं याभिः गोभिः मदेम हृष्येम इन्द्रे सधमादे अस्माभिः सह हर्षयुक्ते सति नः अस्माकं ता गावः रेवतीः क्षीराज्यादिधनवत्य तुविवाजाः प्रभूतबलाश्च सन्तु ।

(क्षुमन्तः) अन्नवाले हम (याभिः) जिन गौओंसे (मदेम) हर्षित होते हैं (इन्द्रे, सधमादे) इन्द्रके हमारे साथ हर्षयुक्त होनेपर (नः) हमारी वह गौयें (रेवतीः) दूध घी आदि धनवाली (तुविवाजाः) अधिक बलवती (सन्तु) हों ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ५ ३ २
सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासा ँ सुक्षितीनाम् ।
३ २ ३ क र ३ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥

अथ दशमी । शुनःशेपो वामदेवो वा ऋषिः । देवत्रा देवेषु रथ्यः रथार्हः अर्हिता आरोढा सोमः तादृशः पूषा सूर्यश्च विश्वासां सर्वासां सुक्षितीनां क्षियन्ति निवसन्तीति क्षितयः प्रजाः । शोभनक्षितीनां मनुष्याणां सम्बन्धीनि हवींषि इन्द्रार्थे कृतानि चेततुः जानीतः ॥ १० ॥

(देवत्रा) देवताओं में (रथ्यः) रथके योग्य (आहिता) सवार होनेवाला (सोमः) सोम (पूषा च) सूर्य भी (विश्वासाम्) सकल (सुक्षितीनाम) श्रेष्ठ मनुष्यों करके इन्द्रके निमित्त किये हुए हवियों को (चेततुः) जानें ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

२ ३ २ ३ १ २३ १२३ १ २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३१२३ १ २ ३ २
विश्वासाहँ शतक्रतुं मँहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सेयं प्रथमा । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे ऋत्विजः ।

वः यूयम् अन्धसः सोमलक्षणम् अन्नम् आ पान्तम् आभिमुख्येन पिबन्तं पा पाने (भ्वा० प०) छान्दसः शपो लुक् । सर्वे विधयः छन्दसि विकल्प्यन्ते इति न लोकाव्यय (२, ३, ६९ पा०) इति षष्ठी-प्रतिषेधाभावः । ततोऽन्धस इत्यत्र कर्तृकर्मणोः (२, ३, ६५ पा०) इति षष्ठी सोममाभिमुख्येन पिबन्तम् एतादृशम् इन्द्रम् प्रगायत प्रकर्षेण आभिष्टुत । कीदृशम् ? विश्वासाहम् सर्वेषां शत्रूणामभि-भवितारम् सर्वेषां भूतजातानां वा अतएव शतक्रतुम् बहुविधप्रज्ञानं बहुविधकर्माणं वा चर्षणीनाम् मनुष्याणाम् मंहिष्ठम् धनस्य दातृतमं यद्वा यजमानानां यष्टव्यत्वेन पूजनीयमिन्द्रं प्र गायतेति समन्वयः ।

हे ऋत्विजो (वः) तुम (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (शतक्रतुम्) विचित्रकर्मा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (मंहिष्ठम्) परम धनदाता (अन्धसः) सोमरूप अन्नको (आपातम्) आभिमुख होकर पीनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभिप्रगायत) विशेषरूपसे स्तुति करो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय मादनꣳ हर्य्यश्वाय गायत ।

१ २ ३ १ २

सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वशिष्ठ ऋषिः ।

हे सखायः ! वः यूयं हर्य्यश्वाय हरिनामकाश्वाय सोमपाव्ने सोमानां पात्रे इन्द्राय मादनं मदकरं स्तोत्रं प्र गायत प्र पठत ॥ २ ॥

(सखायः) हे सखाओ (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामक अश्ववाले (सोमपाव्ने) सोमपान करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (मादनम्) प्रसन्न करनेवाला स्तोत्र (प्रगायत) गाओ ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।

१ २ ३ १ २

कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मेधातिथिः ऋषिः प्रियमेधश्च । हे इन्द्र ! त्वायन्तः त्वामात्मनः इच्छन्तः सखायः समानख्यानाः वयम् तदिदर्थाः यत् त्वद्विषयं स्तोत्रं तदित् तदेवार्थः प्रयोजनं येषां तादृशाः सन्तः त्वा त्वाम् स्तुमहे । उ इति पादपूरणः । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः अस्म-

दीयाः पुत्राश्च उक्थेभिः उक्थैः शस्त्रैः जरन्ते त्वां स्तुवंति ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वायन्तः) तुम्हें अपना बनानेकी इच्छा करते हुए (सखायः) मित्ररूप (वयम्) हम (तादिदर्थाः) केवल आपकी स्तुति करनेको ही अपना कर्त्तव्य मानते हुए (त्वा) तुम्हारी स्तुति करते हैं (कण्वाः उ) कण्वगोत्री हमारे पुत्र भी (उक्थेभिः) वेद-मन्त्रोंसे (जरन्ते) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।

३ १ २ २ १ २

अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । मद्वने माद्यतेः क्वनिप् मदन-शीलाय इन्द्राय तदर्थं सुतम् अभिषुतं सोमं नः अस्मदीयाः गिरः स्तुति-लक्षणा वाचः परिष्टोभन्तु स्तोभतिः स्तुतिकर्मा (नि० ३, १४, ४,) परितः सोमं स्तुवन्तु । ततः कारवः स्तुतिकारिणः स्तोतारश्च अर्कम् सर्वैरर्चनीयं सोमम् अर्चन्तु पूजयन्तु ॥ ४ ॥

(मद्वने) प्रसन्नस्वभाव (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सुतम्) निचोड़े हुए सोमको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (परिष्टोभन्तु) सोम की सर्वथा प्रशंसा करें, तदनंतर (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कम्) सबके पूजनीय सोमको (अर्चन्तु) पूजें ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । इरिमिठ ऋषिः । हे इन्द्र ! ते तुभ्यं त्वदर्थम् अयं सोमः बर्हिषि अधि वेद्यामास्तीर्णे दर्भे निपूतः नितरां दशापवित्रेण शोधितः अभिषवादिसंस्कारैः संस्कृत इत्यर्थः । इम् इदानीम् अस्य इमं सोमं प्रति एहि आगच्छ, आगत्य च यत्र रसात्मकः सोमो हूयते तं देशं प्रति द्रव शीघ्रं गच्छ, तदनन्तरं तं सोमं पिब ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) वेदी पर बिछेहुए कुशों पर (निपूतः) पवित्र से शुद्ध किया गया (इदम्) इस समय (अस्य) इस सोमके समीप (एहि) आओ, और आकर जहाँ रसरूप सोमका हवन किया जाता

है उस स्थान पर (द्रव) शीघ्र जाओ, तदनन्तर उस सोमको (पिब) पियो ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । मधुच्छन्दा ऋषिः । सुरूपकृत्नुम् शोभनरूपोपेतस्य कर्मणः कर्त्तारम् इन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षार्थं द्यविद्यवि प्रतिदिनं जुहूमसि आह्वयामः । आह्वाने दृष्टान्तः गोदुहे गोधुगर्थं सुदुघाम् इव सुष्ठु दोग्ध्रीं गामिव, यथा लोके गोर्यो दोग्धा तदर्थं तस्याभिमुख्येन दोहनीयां गामाह्वयन्ति तद्वत् । वस्तोरित्यादिषु नामसु द्यविद्यवीति द्वादशाहर्नामानीति पठितम् (निरु० २, ३, २८) ॥ ६ ॥

(सुरूपकृत्नुम्) सुरूप कर्मके कर्त्ता इन्द्र को (ऊतये) अपनी रक्षा के निमित्त (गोदुहे) गौ दुहनेके निमित्त (सुदुघाम् इव) सुन्दर दूधवाली गौको जैसे पुकारते हैं तैसे (द्यविद्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।
३ १ २ ३ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । त्रिशोक ऋषिः । हे वृषभ ! कामानां वर्षितरिन्द्र ! त्वा त्वाम् सुते सोमेऽभिषुते सति तं सुतम् अभिषुतं सोमं पीतये पानाय अभिसृजामि तृम्प तृप्यं मदं मदकरं सोमं व्यश्नुहि विशेषेण प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

(वृषभ) हे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र (त्वा) तुम्हें (सुते) सोमका अभिषव होनेपर उस (सुतम्) अभिषव कियेहुए सोमको (पीतये) पीनेके लिये (अभिसृजामि) अर्पण करता हूँ (तृप्यम्) तृप्त करनेवाले (मदम्) आनान्ददायक सोमको (व्यश्नुहि) विशेष रूपसे ग्रहण करो ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।
१ २र ३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। कुसीद ऋषिः। हे इन्द्र! ते त्वदर्थं सुतः अभिषुतो यः सोमः चमसेषु एतन्नामकेषु पात्रेषु तथा चमूषु चमन्ति भक्षयन्त्यत्रेति चम्वो ग्रहा तेषु च आ सर्वतः अस्ति। अस्य तमेतं सोमं त्वम् पिव इत् इदवधारणे पिबैव। कथं मम सोमपानयोग्यता? तत्राह हे इन्द्र! त्वम् ईशिषे तस्य त्वमीश्वरो भवसि खलु, यत एवं ततः पिबेति समन्वयः ईश ऐश्वर्ये (अ० आ०) लटि ईशः से (७,२,७७) इति इडागमः॥ ८॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) निचोड़ा हुआ जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमस नामक पात्रों में (चमूषु) ग्रह नामक पात्रों में (आ) पूर्णरूपसे भरा हुआ है (अस्य) इस सोमको (त्वम्) तुम (पिब इत्) अवश्य पियो, हे इन्द्र ! तुम (ईशिषे) ईश्वर हो॥ ८॥

१ २   ३ १ २३   १ २
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
१ २ ३   १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये॥ ६॥

अथ नवमी। शुनःशेप ऋषिः। योगे योगे प्रवेशे प्रवेशे तत्तत्कर्मोपक्रमे वाजे वाजे कर्मविघातिनि तस्मिन् सङ्ग्रामे तवस्तरम् अतिशयेन बलिनम् इन्द्रम् ऊतये रक्षार्थं सखायः सखिवत् प्रिया वयं हवामहे आह्वयामः॥ ९॥

(योगे योगे) प्रत्येक कर्मके आरंभमें प्रवेश होनेके समय (वाजे वाजे) कर्मविघातकोंके साथ संग्राम होने पर (तवस्तरम्) अतिबलवान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (सखायः) मित्रों की समान प्रीति करनेवाले हम (हवामहे) आह्वान करते हैं॥ ९॥

२उ   ३   १   २ ३ १ २ ३ १   २र
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
१ २ ३   १ २
सखायः स्तोमवाहसः॥ १०॥

अथ दशमी। मधुच्छन्दा ऋषिः। तु शब्दः क्षिप्रार्थो निपातः आ तु आ इत इति द्वाभ्यामाङ्भ्यां मन्त्रे तु इतशब्दोऽभ्यसनीयः हे सखायः! ऋत्विजः! क्षिप्रमस्मिन् कर्मणि आगच्छतागच्छत आदरार्थोऽभ्यासः आगत्य च निषिदत उपाविशत इन्द्रम् अभिप्रगायत सर्वतः प्रकर्षेण

स्तुत । कीदृशाः सखायः ? स्तोमवाहसः त्रिवृत्पञ्चदशादिस्तोमान् अस्मिन् कर्मणि वहन्ति प्रापयन्ति ॥ १० ॥

(स्तोमवाहसः) स्तोमको पहुँचानेवाले (सखायः) हे सखा ऋत्विजों ! (आ तु आ) अतिशीघ्र (इत) आओ, और आकर (निषीदत) विराजो (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभिप्रगायत) सब प्रकार से स्तुति करो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः

३ १ २र ३ १ २
इद ँ ह्यन्वोजसा सुत ँ राधानां पते ।
२ ३ २ १ २
पिा त्वा ३ स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—सेयं प्रथमा । विश्वामित्र ऋषिः ।

हे राधानां धनानां पते ! गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिर्वन्दनीय ! इन्द्र ! ओजसा बलेनोपहितस्त्वं इदम् अनु अनेनानुक्रमेणेत्यर्थः ओजसा बलेन ग्रावभिः सुतम् अभिषुतं अस्य इमं सोमं तु क्षिप्रं पिब हि ॥ १ ॥

हे (राधानाम्) धनोंके (पते) स्वामिन् ! (गिर्वणः) स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य इन्द्र (ओजसा) बलसे युक्त हुए तुम (इदम्, अनु) इस क्रमसे (ओजसा) बलके द्वारा पत्थरों से (सुतम्) निकाले हुए (अस्य) इस सोमको (तु) शीघ्र (पिब हि) पियो ॥१॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महा ँ इन्द्रः परश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
१ २र ३ १ २र
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मधुच्छन्दा ऋषिः । अयम् इन्द्रः महान् शरीरेण प्रौढः परश्च गुणैरुत्कृष्टः किञ्च वज्रिणे वज्रयुक्ताय इन्द्राय महित्वं पूर्वोक्तं द्विविधमाधिक्यम् सर्वदा अस्तु स्वभावसिद्धस्यापि भक्त्या प्रार्थनमेतत् किञ्च द्यौर्न द्युलोक इव शवः बलम् इन्द्रस्य सेनारूपं प्रथिना पृथुत्वेन पुथताम् इति शेषः । यथा द्युलोकः प्रभूतः एवमस्य सेना प्रभूता अस्तु । नु शब्दो यद्यपि क्षिप्रनामसु नुमक्षुत्यादिषु पठितः तथापि अत्र तदर्थत्वासम्भवात् समुच्चयार्थोऽत्र गृहीतः । न शब्दो लोके प्रतिषेधार्थ एव स्वाध्याये तु प्रतिषेधार्थ उपमार्थश्चेति द्विविधः येन पदेन अन्वीयते तस्मात् पूर्वं प्रयुज्यमानः प्रतिषेधार्थः उपरिष्टात् प्रयुज्यमान उपमार्थः तथा च यास्क उदाहरति उभयमन्वध्यायं नेन्द्रं

देवममंसतेति प्रतिषेधार्थीयः पुरस्तादुपचारस्तस्य यत् प्रतिषेधति दुर्मदासो न सुरायामित्युपमार्थीय उपरिष्टादुपचारस्तस्य येनोपममिमीते (१, २, ६) इति। अत्रोपमावाचिनो द्युशब्दस्योपरिप्रयुक्तत्वादुपमार्थः स्वीकृतः ॥ २ ॥

(नः) हमारा (इन्द्रः) यह इन्द्र (महान्) शरीरसे बड़ा है (परः) गुणों करके श्रेष्ठ है (वज्रिणे) वज्रधारी इन्द्रके अर्थ (महित्वम्) पूर्वोक्त दो प्रकारका गौरव सर्वदा (अस्तु) हो, और (द्यौर्न) द्युलोककी समान (शवः) इन्द्रका सेनारूप बल (प्रथिना) अधिक प्रसिद्ध हो ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳ सं गृभाय।
३ १ २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। कुसीदो काण्व ऋषिः। हे इन्द्र ! महाहस्ती महाहस्तवान् त्वं तु तदानीमेव नः अस्मभ्यं दातुं क्षुमन्तं शब्दवन्तं स्तुत्यमित्यर्थः चित्रं चायनीयं ग्राभं ग्राहकं ग्रहणार्हं वा धनं दक्षिणेन हस्तेन आ संगृभाय आभिमुख्येन संगृहाण ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (महाहस्ती) बड़े २ हाथोंवाला तू (तु) इसी समय (नः) हमें देनेके लिये (क्षुमन्तम्) स्तुतिके योग्य (चित्रम्) नानाप्रकारके (ग्राभम्) ग्रहण करनेके योग्य धनको (दक्षिणेन) दाहिने हाथसे (आ संगृभाय) अभिमुख होकर ग्रहण करो ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳ सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। प्रियमेध ऋषिः। गोपतिं गवां स्वामिनम् इन्द्रम् अभि अर्च गिरा स्तुत्या प्रकर्षेण पूजय। यथा विदे स यथा स्वात्मानं स्तुतिप्रकारं जानाति यथा वा यागं प्रति गन्तव्यमिति जानाति तथाचेति। कीदृशमिन्द्रम् ? सत्यस्य यज्ञस्य सूनुम् पुत्रं तत्रानुरक्तत्वात् सूनुरित्युपचर्य्यते सत्पतिं सतां यजमानानां पालकम् ॥ ४ ॥

(गोपतिम्) गौओंके स्वामी (सत्यस्य) यज्ञके (सूनुम्) पुत्र (सत्पतिम्) यजमाननोंके पालक (इन्द्रम्) इन्द्रको (गिरा) स्तुति

से (अभि अर्च) पूर्ण रीतिसे पूजो (यथा विदे) जैसे कि-वह हमारे स्तुति करनेको और यज्ञमें अवश्य जाना चाहिये इस बातको जानजाय।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ १ ३ १ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।

२ ३ १ २ ३ २

कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो । वामदेव ऋषिः । सदावृधः सर्वदा वर्द्धमानः चित्रः चायनीयः सखा मित्रभूतः इन्द्रः । कया ऊती ऊत्या तर्पणेन नः अस्मान् आ भुवत् आभिमुख्येन भवेत् । शचिष्ठया प्रज्ञावत्तमया प्रज्ञासहितमनुष्ठीयमानेन कया वृता केन वर्त्तनेन कर्मणा च अभिमुखो भवेत् ॥ ५ ॥

(सदा वृधः) सर्वदा वृद्धिको प्राप्त (चित्रः) विचित्रगुणोंवाला (सखा) मित्र इन्द्र (कया) किस (ऊती) तृप्तिसाधक कर्मसे(नः) हमारे (आ भुवत्) अभिमुख होय (शचिष्ठया) समझकर किये हुए (कया वृत्ता) किस वर्त्तावसे अभिमुख होय ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।

१ २ ३ १ २

आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । श्रुतकक्ष ऋषिः । यजमानः स्तोतारं सम्बोध्याह । हे स्तोतः ! सत्रासाहं सत्रा शब्दो बहुवाची बहूनामभिभवितारं यद्वा शत्रून् स्वबलेन सङ्गत्य जेतारम् । वः युष्मदीयेषु विश्वासु गीर्षु सर्वेषु स्तोत्रेषु आयतं विस्तृतं सर्वत्रेन्द्र एव स्तूयते तस्मात् तेषु विततम् त्यम् उ उ इत्यवधारणे तमेवेन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षणाय आच्यावयसि च्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ्गतौ (भ्वा०आ०) त्वदीयैः स्तोत्रैः यज्ञं प्रति आभिमुख्येन गमय ॥ ६ ॥

यजमान कहे कि—हे स्तोतः ! (सत्रासाहम्) बहुतोंका तिरस्कार करनेवाले (वः) तुम्हारे (विश्वासु) सकल (गीर्षु) स्तोत्रोंमें (आयतम्) फैलेहुए (त्यम्, उ) उस इंद्रको ही (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (आच्यावयासि) अभिमुख करके भेजो ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

३ २ ३ १ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । मेधातिथिर्ऋषिः । मेधां लब्धुं सदसस्पतिं एतन्नामकं देवम् अयासिषम् प्राप्तवानस्मि । कीदृशम्? अद्भुतम् आश्चर्यकरम् इन्द्रस्य प्रियम् सोमपाने सहचारित्वात् काम्यम् कमनीयं सनिं धनस्य दातारम् ॥ ७ ॥

(मेधाम्) बुद्धिको पाने के निमित्त (अद्भुतम्) आश्चर्य करनेवाले (इन्द्रस्य प्रियम्) इन्द्रके प्यारे (काम्यम्) चाहने योग्य (सनिम्) धनके दाता (सदसस्पतिम्) सदसस्पति देवता को (अयासिषम्) प्राप्त हुआ हूँ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
३ १ २ ३ १ २
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! दिवः द्युलोकस्य अधः अधस्तात् ये पन्थाः पन्थानः मार्गाः सन्ति, येभिर्यैर्मार्गैः विश्वं सर्वं जगत् ऐरयः प्राप्तवानसि, ते मार्गाः यजमानैः स्तूयन्तामिति शेषः । उत अपि च नः अस्मदीया भुवः भूमीः निवासस्थानानि श्रोषन्तु यजमानाः त्वदनुग्रहात्कृण्वन्तु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (दिवः) द्युलोकके (अधः) नीचे (ये) जो (पन्थानः) मार्ग हैं, (येभिः) जिन मार्गोंसे (विश्वम्) सकल जगत्को (ऐरयः) प्राप्त हुआ हूँ (ते) वह मार्ग यजमानों के स्तुति करने योग्य हैं (उत) और (नः) हमारे (भुवः) निवासस्थानोंको (श्रोषन्तु) यजमान सुनें ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जꣳ शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे शतक्रतो शतविधकर्मन् ! शतप्रज्ञ ! वा इन्द्र ! भद्रं भद्रं कल्याणतमं सुखोत्पादकं वा धनं न अस्मभ्यम् आभर सम्पादय देहि, तथा इषम् ऊर्जम् अन्नरसम् यद्वा बलवदन्नं देहि, नः अस्मान् यद् यदि मृडयासि सुखयसि तर्हि धनादिकं देहीति मृड सुखे (क्र्या०प०) तस्य लेटि अङ्गस्याडागमः ॥ ९ ॥

(शतक्रतो) सैंकड़ों कर्म करनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र (भद्रं भद्रम) परमसुखदायक धन (नः) हमें (आभर) दीजिये, तथा(इषं ऊर्जम) बलवान् अन्न दीजिये (नः) हमें (यत्) जो (मृडयासि) सुख देना चाहते हो तो धन आदि दो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्ति सोमो अयꣳ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥

अथ दशमी । विन्दुर्ऋषिः । अयं पुरोवर्त्ती सोमः सुतः मरुदर्थमस्माभिः अभिषुतः अस्ति विद्यते, तस्मात् अस्य अन्वादेशे एनं सुतं सोमं स्वराजः स्वयंदीप्यमानाः स्वतेजसा नान्यदीयेनेत्यर्थः, तादृशाः मरुतः प्रातः पिबन्ति, उत अपि च । अश्विना अश्विनौ च सोमं प्रातः सवने पिबतः ॥ १० ॥

(अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) मरुतोंके लिये हमारे द्वारा संस्कार कियागया (अस्ति) है, तिससे (अस्य) इस सोमको (स्वराजः) अपने तेजसे दीप्यमान (मरुतः) मरुत् प्रातःकालके समय (पिबन्ति) पीते हैं (उत) और (अश्विना) अश्विनीकुमार भी प्रातःसवनमें पीते हैं ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खंडः समाप्तः

---

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।

३ १ २ ३ १ २

वन्वानासः सुवीर्य्यम् ॥ १ ॥

अथ सप्तमे खण्डे—सैषा प्रथमा । इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः ईङ्खयन्तीः गच्छन्त्यः स्तुत्यादिभिः इन्द्रं प्राप्नुवत्यः अपस्युवः अपः कर्म आत्मन इच्छन्त्यः इन्द्रमातरः अस्य सूक्तस्य द्रष्ट्र्यः जातं प्रादुर्भूतं तम् इन्द्रम् उपासते परिचरन्ति, सुवीर्यं शोभनवीर्य्योपेतं धनं च वन्वानासः तस्मात् इन्द्रात् सम्भक्तवत्यो भवन्ति । वन्वानासः भेजानासः इति पाठौ ॥ १ ॥

(ईङ्खयन्तीः) स्तुति आदिके द्वारा इन्द्रको प्राप्त होती हुई (अपस्युवः) अपने कर्मको चाहती हुई इन्द्रकी मातायें (जातम्) प्रकट

हुए (तम्) उस इन्द्रको (उपासते) सेवती हैं (सुवीर्यम्) सुंदर वीरतायुक्त धनको (धन्वानासः) उस इन्द्रसे प्राप्त करती हैं ॥१ ॥

१ २ ३ १ २र
न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।
३ १ २
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । गोधा ऋषिः । हे देवाः इन्द्रादयः ! युष्मद् विषये न कि इनीमसि न किमपि हिंस्मः । मीङ् हिंसायां क्र्यादिकः मीनाते- र्निगमे (७, ३, ८१ पा०) इति ह्रस्वः, इदन्तोमसि (७, १, ४६ पा०) मकारलोपश्छान्दसः । आकारः समुच्चये । न कि न च योपयामसि योपयामः अननुष्ठानेन अन्यथानुष्ठानेन वा मोहयामः युप विमोहने (चु०प०) किन्तर्हि मन्त्रश्रुत्यं मन्त्रेण स्मार्यं श्रुतौ विधिवाक्यप्रतिपाद्यं यद् युष्मद्विषयं कर्म तत् चरामसि आचरामः अनुतिष्ठामः । इनी- मसि मिनीमसि इति च पाठौ ॥ २ ॥

(देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! तुम्हारे विषयमें (न कि इनीमसि) हम कुछ भी हानि नहीं करते (न कि योपयामसि) और विपरीत अनुष्ठानसे मोहित भी नहीं करते हैं (मंत्रश्रुत्यम) मंत्रोंमें अनेकों वाक्योंसे वर्णन कियेहुए तुम्हारे विषयके कर्मको (चरामसि) आच- रण करते हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
दोषो आगाद्बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।
३ २ ३१ २ ३ १ २
स्तुहि देवꣳ सवितारम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । हे बृहद्गाय ! बृहदाख्यस्य साम्नो गातः ! द्युमद्गामन् दीप्तगमन ! आथर्वण अथर्वऋषेरपत्य ! ऋषिः स्वात्मानमेवामन्त्रयते त्वं दोषः ऋत्विग्यजमानापराधेन यः कश्चिद् दोषः आगात् आगच्छति तत्परिहारार्थं सवितारं प्रेरकम् एतन्नामकम् देवं स्तुहि । यद्वा दोषः दूषयति नाशयति तमांसीति दुनोति उपतपति रक्षांसीति वा दोषः,सः सविता आगात्, अतो हे आथर्वण ! बृहत् स्तोत्रं गाय । तथा गामन् गायतीति गामा हे एवंविध! स्वात्मन्! द्युमत् दीप्तिमदन्यत् स्तोत्रम् उपगाय । शिष्टं पुनरादरार्थम् ॥ ३ ॥

(बृहद्गाय) हे बृहत् सामका गान करनेवाले (द्युमद्गामन्) प्रकाशयुक्त गमन करनेवाले (आथर्वण) आथर्वण तू (दोषः) ऋत्विक् यजमानके अपराधसे जो कोई दोष (आगात्) आवे उसको दूर करनेकेलिये (सवितारम्) सविता (देवम्) देवको (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
३ २ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रस्कण्व ऋषिः । एषः एषैव अस्माभिः परिदृश्यमाना प्रिया सर्वेषां प्रीतिहेतुः अपूर्व्या पूर्वेषु मध्यरात्रादिकालेषु विद्यमाना न भवति किन्त्विदानीन्तना उषा उषोदेवता दिवः द्युलोकस्य सकाशात् आगत्य व्युच्छति तमो वर्जयति । हे अश्विनौ । वां युवां बृहत् प्रभूतं यथा भवति तथा स्तुषे स्तौमि ॥ ४ ॥

(एषः) यह हमें दीखतीहुई (प्रिया) सबकी प्रसन्नताकी कारण (अपूर्व्या) पहिले मध्यरात आदि समय में न रहनेवाली इस समय की (उषा) उषा देवता (दिवः) द्युलोकसे आकर (व्युच्छति) अन्धकारका नाश करती है (अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो !(वाम्) तुम्हें (बृहत्) बहुत (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ॥
३ १ ३ ३ १ २र
जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः । अत्र शाट्यायनिन इतिहासमाचक्षते आथर्वणस्य दधीचो जीवतो दर्शनेन असुराः पराबभूवुः । अथ तस्मिन् स्वर्गते असुरैः पूर्णा पृथिव्यभवत् । अथेन्द्रस्तैरसुरैः सह योद्धुमशक्नुवंस्तमृषिमन्विच्छन् स्वर्गं गत इति शुश्राव । पप्रच्छ तत्रत्यान् इह किमस्य किञ्चित् परिशिष्टमङ्गमस्ति ? इति तस्माअवोच अस्त्येतदाश्वं शीर्षं येन शिरसा अश्विभ्यां मधुविद्यां प्राब्रवीत् तत्तु न विद्मः तद्यत्राभवदिति पुनरिन्द्रोऽब्रवीत् तदन्विच्छतेति । तद्धा अन्वेषिषुः । तच्छर्यणावत्यनुविद्या जहुः (शर्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य

अधमाङ्गेसरः स्पन्दते)। तस्य शिरसोऽस्थिभिरिन्द्रोऽसुरान् जघानेति । अप्रतिष्कुतः परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहितः इन्द्रः आथर्वणस्य दधीचः एतत्संज्ञकस्य ऋषेः अस्थभिः पार्श्वशिरःसम्बधिभिरस्थिभिः नवतीर्नव नवसंख्याका नवतीः दशोत्तरा अष्टशतसंख्याकाः [८१०] तथाहि लोकत्रयवर्त्तिनो देवान् जेतुम् आदावासुरी माया त्रिधा सम्पद्यते, त्रिविधा सा भतीतानागतवर्त्तमानकालभेदेन तत्कालवर्त्तिनो जेतुं पुनरपि प्रत्येकं त्रिगुणिता भवति, एवं नव सम्पद्यन्ते, पुनरपि उत्साहादिशक्तित्रयरूपेण त्रैगुण्ये सति सप्तविंशतिः सम्पद्यते पुनः सात्त्विकादिगुणत्रयभेदेन त्रैगुण्ये सति एकोत्तरा अशीतिः सम्पद्यते, एवं चतुर्भिस्त्रिकैर्गुणितायां मायायां दशसु दिक्षु प्रत्येकमवस्थाने सति नवनवतयः सम्पद्यते, एवंविधमायारूपाणि वृत्राणि आवरकाणि असुरजातानि जघान हतवान् ॥ ५ ॥

(अप्रतिष्कुतः) प्रातिकूल शब्दरहित (इन्द्रः) इन्द्र (दधीचः) आथर्वण दधीचि ऋषिकी (अस्थभिः) पसुली शिर आदिकी हड्डियोंसे (नव) नौ (नवतीः) नब्भे अर्थात् नौ वार नब्भे, आठसौ दस (वृत्राणि) असुरोंको (जघान) मारताहुआ [इस मन्त्र पर शाट्यायनि इतिहास कहते हैं, कि—आथर्वण दधीचिको जीवित देखते ही असुरोंकी पराजय होजाती थी, जब वह दधीचि स्वर्गको पधारगए तब असुरोंने सब पृथिवीको जीतलिया और इन्द्र असुरोंके साथ युद्ध न करसका तब इन्द्रने उन ऋषिको खोजते हुए सुना कि—वह स्वर्गवासी होगए, इस पर तहांके निवासियोंसे बूझा कि—यहां उनके शरीरमें का कुछ बचा भी है तब उत्तर मिला कि—हाँ उनका घोड़ेके आकारका शिर है, जिस शिरसे उन्होंने अश्विनीकुमारोंको मृत्युविद्या सिखाई थी, परन्तु यह नहीं मालूम कि—वह शिर कहां है इस पर इन्द्रने कहा कि—उसको ढूँढो, तब सबोंने ढूँढा, उसको कुरुक्षेत्रकी भूमिमें शर्यणावत् सरोवरमें पाया,और उस शिरकी हड्डियोंसे इन्द्रने असुरोंका वध किया। असुरोंने जब पहिले देवताओंको जीता था तब प्रथम त्रिलोकीके देवताओंको जीतनेके लिये आसुरी माया तीन प्रकारकी हुई फिर वह भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनोंकाल के देवताओंको जीतनेके लिये हरएक त्रिगुण होकर नौ होगई, फिर उत्साह आदि तीनोंशक्तियोंके भेदसे त्रिगुणी होकर सत्ताईस हुई, फिर सत्त्व आदि तीनो गुणोंके भेदसे त्रिगुणी होनेपर इक्कयासी हुई वह इक्कयासी गुणी माया जब दशों दिशाओंमें भिन्न २ रूपसे रही तब आठसौ दश होगई, उनही मायारूपी आठसौ दश आवरण करने वाले असुरोंको इन्द्रने मारा] ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।

३ १ २ ३ १ २र

महाꣳ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । मधुच्छन्दा ऋषिः हे इन्द्र ! एहि अस्मिन् कर्मणि आगच्छ आगत्य च विश्वेभिः सर्वैः सोमपर्वभिः सोमरसरूपैः अन्धसः अन्धोभिः अन्नैः मत्सि माद्य हृष्टो भव, तत ऊर्ध्वम् ओजसा बलेन महान् भूत्वा अभिष्टिः शत्रूणामभिभावयिता भवेति शेषः अष्टाविंशति-सङ्ख्याकेषु बलनामसु ओजः पाजः इति (नि० २, ९) पठितम् ॥६॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (एहि) इस कर्ममें आओ, और आकर (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमरसरूप (अन्धसः) अन्नों करके (मत्सि) प्रसन्न हूजिये, तदनन्तर (ओजसा) बलसे (महान्) बड़े होकर (अभिष्टिः) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले हूजिये ॥ ६ ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वामदेव ऋषिः । हे वृत्रहन् ! वृत्राणां शत्रूणां हिंसक इन्द्र ! त्वं नः अस्मान् प्रति आ तु क्षिप्रम् आगच्छ हे इन्द्र ! महान् प्रभूतः त्वम् महीभिः महतीभिः ऊतिभिः रक्षाभिः सह अस्माकम् अर्द्धं समीपम् आ गहि आगच्छ ॥ ७ ॥

(वृत्रहन्) हे शत्रुओंके नाशक इन्द्र तुम (नः) हमारे समीप (आ तु) शीघ्र आओ हे इन्द्र महान् हुए तुम (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओंके साथ (अस्माकम्) हमारे (अर्द्धम्) समीप (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वत्स ऋषि । अस्य इन्द्रस्य तत् ओजः बलं तित्विषे दिदीपे त्विष दीप्तौ (दि० प०) यत् येन ओजसा अयम् इन्द्रः

उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ चर्मेव समवर्त्तयत् सम्यग् वर्त्तयति । यथा कश्चित् कश्चित् चर्म कदाचिद् विस्तारयति कदाचित् सङ्कोचयति, एवं तदधीने अभूतामित्यर्थः ॥ ८ ॥

(अस्य) इस इन्द्रका (तत्) वह प्रसिद्ध (ओजः) बल (तित्विषे) प्रदीप्त हुआ (यत्) जिस बलसे यह (इन्द्रः) इन्द्र (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनों को (चर्मेव) चर्मकी समान (समवर्त्तयत्) वर्तता है अर्थात् जैसे कोई चमको कभी खोललेता है और कभी तै करलेता है तैसे ही द्युलोक और भूलोक इन्द्र के अधीन हैं ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ ३ १ २ २ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।

२ ३ १ २

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

अथ नवमी । शुनःशेप ऋषिः । हे इन्द्र ! अयम् उ अयमपि दृश्यमानः सोमः ते त्वदर्थं सम्पादितः यं सोमं समतसि सम्यक् सातत्येन प्राप्नोषि । तत्र दृष्टान्तः कपोत इव यथा कपोताख्यः पक्षी गर्भधिं गर्भधारिणीं कपोतीं प्राप्नोति तद्वत् तच्चित् तस्मादेव कारणात् न अस्मदीयं वचः ओहसे प्राप्नोसि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र (अयम्, उ) यह भी दृश्यमान सोम (ते) तुम्हारे लिये तयार किया है, जिस सोमको (समतसि) निरन्तर सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हो (कपोत इव) जैसे कबूतर पक्षी (गर्भधिम्) गर्भ धारण करनेवाली कपोतीको प्राप्त होता है (तच्चित्) तिसी कारणसे (नः) हमारे (वचः) वचनको (ओहसे) प्राप्त होता है ॥९॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वात आ वातु भेषजꣳ शम्भुमयोभु नो हृदे ।

२ ३ १ २

प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वातायन उलऋषिः । वातः वायुः नः अस्माकं हृदे हृदयाय भेषजम् औषधम् उदकं वा आवातु आगमयतु कीदृग्भूतम् ? शम्भु रोगशमनस्य भावयितृ मयोभु मयसः सुखस्य च भावयितृ अपि च नः अस्माकम् आयूंषि प्रतारिषत् प्रवर्द्धयतु ॥ १० ॥

(वातः) वायु (नः) हमारे (हृदे) हृदयके अर्थ (शम्भु) रोगशान्ति करनेवाले (मयोभु) सुख देनेवाले (भेषजम्) औषध वा

जलको (आ वातु) प्राप्त करावें और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओंको (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २
यꣳ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्य्यमा ।
२ ३ १२ ३ १२
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

अथ अष्टमे खण्डे—सैषा प्रथमा । कण्व ऋषिः । प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानयुक्ताः वरुणादयो देवाः यं यजमानं रक्षन्ति स यजमानः न किः दभ्यते केनापि न हिंस्यते ॥ १ ॥

(प्रचेतसः) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (वरुणः) वरुण देवता (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता (यम्) जिस यजमानको (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह यजमान (जनः) पुरुष (न किः दभ्येत) किसीसे भी हिंसित नहीं होता ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वत्स ऋषिः । हे इन्द्र ! गव्योषु गव्या उ सु इति निपातद्वयसमुदायस्य एकवद्भावेन निपातवद्भावात् प्रकृतिवद्भावाभावः नः अस्माकं गवामिच्छया अस्माकं गां दातु यथा पुरा पूर्वम् अस्माकं सम्बन्धिनि यागे गवादिदानाय वरिवस्यसि तद्वदद्यापि सुष्ठु वरिवस्य परिचर आगच्छेत्यर्थः । न केवलं गविच्छया किन्तु अश्वया अश्वप्रदानेच्छया उत अपिच रथया रथेच्छया महोनां धनानां कर्मणि षष्ठी महान्ति पूजाकराणि धनानि दानाय वरिवस्य परिचर देहीत्यर्थः ॥ २ ॥

हे इन्द्र (यथा) जैसे (पुरा) पहिले हमारे यज्ञमें गौ आदि देनेको आप आये थे तैसे ही अब (नः) हमें (सु—गव्या) सुन्दर गौ देने की इच्छा करके (उ) और (अश्वया) अश्वदानकी इच्छा करके (उत) और (रथया) रथ देनेकी इच्छा करके (महोनाम्)प्रतिष्ठा करानेवाले धनोंको देनेके लिये (वरिवस्या) आइये ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्स ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदीयाः इमाः पृश्नयः प्राष्टवर्णा गावः घृतं क्षरणशीलम् एनाम् आशिरम् आश्रयणाद्रव्यं पयः दुहते दुहन्ति क्षारयन्ति । कीदृश्यः पृश्नयः ? ऋतस्य सत्यस्य अवितथस्य इन्द्रस्य यज्ञस्य वा पिप्युषीः वर्धयित्र्यः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारी (इमाः) यह (पृश्नयः) श्रेष्ठ वर्णकी (ऋतस्य) सत्य इंद्र और यज्ञकी (पिप्युषीः) बढ़ानेवाली गौएं (घृतम्) टपकनेवाले (एनाम्) इस (आशिरम्) दूधको (दुहते) पात्रमें पूर्ण करदेती हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
१ २र ३ १ २
यत्सोमे सोम आभुवः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे पुरुणामन् ! बहुविधशत्रुसंहारिनामोपेत ! यद्वा बहुस्तुतिमन् ! नमयति स्तुत्यं देवं वशं नयतीति नाम स्तोत्रम् अत एव पुरुष्टुत ! बहुभिरभिष्टुतेन्द्र ! सोमे सोमे मदीयेषु सर्वेषु सोमेषु त्वं यद् यदा आभुवः तेषां पानार्थं समन्तादभवः तदा वयं अया अनयाईदृश्या गव्यया गा आत्मन इच्छन्त्या धिया बुध्या युक्ता भवेम । त्वयि सोमं पिबति सति वयं गवादियुक्ता भवेमेत्यर्थः आभुवः आभवः इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(पुरुणामन्) हे अनेकों नामवाले (पुरुष्टुत) हे अनेकों से स्तुति कियेहुए इन्द्र (सोमे सोमे) मेरे सब सोमयागोंमें तुम (यद्) जब (आभुवः) उसके पीनेको आये तब हम (अया) इस (गव्यया) अपने अर्थ गौओंको चाहनेवाली (धिया) बुद्धिसे युक्त हों अर्थात् जब आप सोम पियें तब हम गौ आदि धनसे युक्त हों ॥ ४ ॥

३ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवी वाजेभिः हविर्लक्षणैः अन्नैर्निमित्तभूतैः यद्वा यजमानेभ्यो दातव्यैरन्नैर्निमित्तभूतैः नः अस्मदीयं यज्ञं वष्टु कामयतां कामयित्वा च निर्वहत्वित्यर्थः। तथाचैतरेयारण्यकाण्डे श्रुत्यैवं व्याख्यातम् यज्ञं वष्ट्विति यदाह, यज्ञं वहत्वित्येव तदाहेति कीदृशी सरस्वती ? पावका शोधयित्री वाजिनीवती अन्नवत्क्रियावती धिया वसुः कर्मप्राप्यधननिमित्तभूता वाग्देवतायास्तथाविधधननिमित्तत्वमैतरेयारण्यकांडे श्रुत्या व्याख्यातम् 'यज्ञं वष्टु धियावसुरिति वाग्वै धियावसुरिति। श्येनः सोमः इत्यादिषु पञ्चविंशतिसंख्याकेषु देवताविशेषवाचिषु पदेषु सरमा, सरस्वती इति पठितम्। एतामृचं यास्क एवं व्याचष्ट (नै० ११, २६) पावका नः सरस्वती यज्ञं वष्टु धियावसुः कर्मवसुरिति ॥ ५ ॥

(पावका) पवित्र करनेवाली (वाजिनीवती) अन्नदायक शक्ति (धियावसुः) कर्मसे प्राप्त होने योग्य धनकी कारणरूप (सरस्वती) सरस्वती देवी (वाजेभिः) देनेयोग्य अन्नों सहित (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञको (वष्टु) चाहै और उसको पूर्ण करै ॥ ५ ॥

२ ३ १ १र ३ २उ ३ १ २
क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳ सोमस्य तर्पयात्।
२ ३ २३ १ २
स नो वसून्या भरात् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वामदेव ऋषिः। नाहुषीषु नहुष इति मनुष्यनाम (नि० २, ३, ९) नहुषसम्बन्धिनीषु प्रजासु कः इमम् इन्द्रम् सोमस्य सोमेन तर्पयात् तर्पयति प्रीणाति सः नाहुषीभिस्तर्पयितुमशक्य इन्द्रः नः अस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे तृप्तः सन् वसूनि धनानि आभरत् आहरत्वित्यर्थः॥ ६॥

(नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओंमें (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्रको (कः) कौन (तर्पयात्) तृप्त करसकता है (सः) वह मानुषी प्रजाओं से तृप्त करनेको अशक्य इन्द्र (नः) हमारे यज्ञमें तृप्त होकर (वसूनि) धनोंको (आभरत्) देय ॥ ६ ॥

१ २ ३ २उ ३ २३ २ ३ १ २ ३ २
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
२उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । इरिमिठ ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वम् आयाहि आगच्छ वयं ते त्वदर्थं सुषुमा हि सोममभिषुतवन्तः खलु तम् इमम् अभिषुतं सोमं त्वं पिब त्वदर्थं मम मदीयम् इदम् बर्हिः वेद्यामास्तीर्ण दर्भम् आसद आसीद अभि निषीद ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र तुम (आयाहि) आओ, हमने (ते) तुम्हारे निमित्त (सुषुमा-हि) सोमका अभिषव किया है, ऐसे (इमम्) इस सम्पादन किये हुए (सोमम्) सोमको (पिब) पियो, तुम्हारे निमित्त स्थापन किये (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) वेदीपर विछेहुए कुशासन पर (आसदः) विराजमान हूजिये ॥ ७ ॥

१२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।

३ २३ १ २

दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वारुणिः सत्यधृतिर्ऋषिः । त्रीणां त्रयाणां मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च द्युक्षं दीप्तम् अतएव दुराधर्षम् अन्यैर्धर्षितुं बाधितुमशक्यं महि महत् अवर् अवः रक्षणम् अस्माकम् अस्तु अवस् इत्यत्र अवःशब्दस्य विसर्जनीयस्य रेफादेशश्छान्दसः । अवर् अवः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(मित्रस्य) मित्रका (अर्यम्णः) अर्यमाका (वरुणस्य) वरुणका (त्रीणाम्) तीनोंका (द्युक्षम्) दीप्त (दुराधर्षम्) दूसरोंसे बाधित न होनेवाला (महि) बड़ा (अवः) रक्षण, हमारा (अस्तु) हो ॥८॥

१ २ ३ १ २

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।

१ २

स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वत्स ऋषिः । हे पुरूवसो ! बहुधन ! इन्द्र ! प्रणेतः ! कर्मणां पारं प्रकर्षेण नेतः ! इन्द्र ! त्वावतः त्वत्सदृशस्य इन्द्रसमानस्यान्यस्याभावात् तथेत्यर्थः तव स्वभूताः वयम् स्मसि स्मः । हे हरीणाम् एतत् संज्ञकानामश्वानां स्थातः ! अधिष्ठातः ! ॥ ९ ॥

(पुरूवसो) बहुत धनवाले (प्रणेतः) कर्मोंको उत्तमतासे पार लगानेवाले (हरीणाम) हरिनामक अश्वोंके (स्थातः) अधिष्ठाता (इन्द्र) हे इन्द्र (त्वावतः) तुम्हारे निज (वयम्) हम (स्मसि) हैं ९

द्वितीयाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
१२ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

अथ नवमे खंडे—सैषा प्रथमा । प्रगाथ ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वा त्वाम् सोमाः उत् उत्कृष्टं मदन्तु मादयन्तु हे अद्रिवः वज्रवन् ! इन्द्र ! त्वमस्मभ्यं राधः धनं कृणुष्व कुरु प्रयच्छ । किञ्च ब्रह्मद्विषः ब्राह्मणद्वेष्ट्रीन् अव जहि विदारयेत्यर्थः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (सोमाः) सोम (उत्) उत्तम (मदन्तु) प्रसन्नता दें (अद्रिवः) हे वज्रधारिन् इन्द्र ! तुम हमें (राधः) धन (कृणुष्व) दो, और (ब्रह्मद्विषः) ब्राह्मणोंके द्वेषियोंको (अवजहि) नष्ट करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विश्वामित्र ऋषिः । गिर्वणः गीर्भिः वाग्भिः स्तुतिभिः वननीय ! तथा च यास्कः गिर्वणो देवो भवति गीर्भिरेनं वनयन्तीति (नै० ६, १४) तादृश ! हे इन्द्र ! नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतम् इमं सोमं पाहि पिब यतः मधोः मदकरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे सिच्यसे । हे इन्द्र ! त्वादातम् इत् त्वया शोधितं विशदीकृतमेव यशः अन्नम् अस्मासु भवति ॥ २ ॥

(गिर्वणः) हे स्तुतियों से प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (नः) हमारे (सुतम्) सम्पादन किये हुए इस सोमको (पाहि) पियो, क्योंकि (मधोः) मदकारी सोमकी (धाराभिः) धाराओंसे (अज्यसे) सींचे जाते हो (इन्द्र) हे इन्द्र (त्वादातं इत्) तुम्हारा शुद्ध किया हुआ ही (यशः) अन्न हमारे पास होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र३ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
२ ३ २ ३२उ ३ १ २
नः देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वामदेव ऋषिः । ऋत्विग्यजमानाः ! इन्द्रः सदा सर्वदा वः युष्मान् आ चर्कृषत् यज्ञानुष्ठानार्थम् आकर्षत् कर्त्तुमिच्छति । किं कुर्वन् उपोनु युष्माकं समीप एव स सपर्यन् पुनः पुनः भृशं वा सपर्यां कुर्वन् हविर्भोक्तुं मामाह्वयध्वमिति प्रार्थयमान इत्यर्थः अत एव श्रुत्यन्तरं देवानां यजमानप्रदत्तहविरुपजीवित्वं श्रूयते इतो दानाद्धि देवा उपजीवन्तीति । अतः अस्मत्सपर्याकर्तृत्वात् इन्द्रः देवः न शूरः यजमानानां बाधक इत्यर्थः ॥ ३ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (इन्द्रः) इन्द्र (सदा) सर्वदा (उपोनु) तुम्हारे समीप (सपर्यन्) बार २ प्रार्थना करता हुआ (वः) तुम्हें (आचर्कृषत्) यज्ञानुष्ठान के निमित्त करना चाहता है (नः) हमारा (वृतः) वरण किया हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (देवः) देव (शूरः) शूर है

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

२उ ३ १ २

न त्वा मिन्द्रातिरिच्यते ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी श्रुतकक्ष ऋषिः हे इन्द्र ! इन्दवः स्रवन्तः अस्माभिर्दीयमानाः सोमाः त्वा त्वाम् आविशन्तु । तत्र दृष्टान्तः समुद्रम् इव सिन्धवः स्यन्दनशीला नद्यो यथा समुद्रं जलाशयं सर्वतः प्रविशन्ति तद्वत् । यत एवं तस्मात् हे इन्द्र ! त्वां कश्चिदपि देवः धनेन बलेन वा न अतिरिच्यते नातिरिक्तोऽस्ति सामर्थ्यवान् त्वत्तोऽधिको नास्तीत्यर्थः।

हे इन्द्र (इन्दवः) हमारे दियेहुए टपकते हुए सोम (सिन्धवः समुद्रं इव) बहनेवाली नदियें जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (आविशन्तु) प्राप्त हों, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! कोई भी देवता धनसे या बलसे (न अतिरिच्यते) तुम्हारी अपेक्षा बड़ा नहीं होसकता ॥ ४ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।

२ ३ १ २

इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मधुच्छन्दा ऋषिः । गाथिनः गीयमानसामयुक्ता उद्गातारः इन्द्रम् इत् इन्द्रमेव बृहत् बृहता त्वामिद्धि हवामहे इत्यस्यामृच्युत्पन्नेन बृहन्नामकेन साम्ना अनूषत स्तुवन्ति । अर्किणः अर्चनहेतुमन्त्रोपेता होतारः अर्केभिः उक्थरूपैर्मन्त्रैरनूषत । ये त्ववशिष्टा

अध्वर्यवः ते वाणीः वाग्भिर्यजूरूपाभि इन्द्रम् अनूषत । अर्कशब्दस्य मन्त्रपरत्वं यास्केनोक्तम् (५,४) अर्कौ मन्त्रो भवति यदनैनार्चन्तीति ।

(गाथिनः) गाये जातेहुए सामसे युक्त उद्गाता (इन्द्रम्, इत्) इंद्रको ही (बृहत्) बृहत् सामके द्वारा (अनूषत) स्तुति करते हैं (आर्किणः) अर्चनके मंत्रों सहित होता (अर्केभिः) उक्थरूप मंत्रों से स्तुति करते हैं और जो शेष अध्वर्यु हैं वह (वाणीः) यजुरूप वाणियों से (इंद्रम्) इंद्रकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुꣳ रयिम् ।
३ १ २ ३ १ २
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रः एवमस्माभिः स्तुतः इष्टः सन् ऋभुक्षणम् वाषपूर्वस्य (६, ४, ९, पा०) इति दीर्घाभावः यागादिकर्मकरणेन महान्तम् सर्वेषां भ्रातॄणां श्रेष्ठं सौधन्वनं वा । अथवा तृतीयसवने प्रजापतिसवित्रोर्मध्ये सोमपानेन महान्तं रयिं दातारं ऋभुम् सोमपानेन मर्त्यत्वं विहाय देवत्वं प्राप्तं तादृशम् एतन्नामकं देवं नः अस्मभ्यम् इषे अन्नार्थं ददातु प्रयच्छतु । तथा वाजो बलवान् इंद्रः वाजिनं बलवंत वाजनामानं कनीयांसं वा भ्रातरं सौधन्वनम् अस्माकमन्नलाभाय ददातु ॥ ६ ॥

(इन्द्रः) हमसे इस प्रकार स्तुति किया हुआ इन्द्र (ऋभुक्षणम्) सबों में श्रेष्ठ (रयिम्) दाता (ऋभुम्) सोमपानसे अमर हुए ऋभु नामक देवताको (नः) हमें (इषे) अन्नके लिये (ददातु) दो, तथा (वाजी) बलवान् इन्द्र (वाजिनम्) बलवान् छोटे भाईको हमें अन्न की प्राप्तिके निमित्त (ददातु) दो ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
२उ ३ १ २र
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । गृत्समद ऋषि । इन्द्रः महत् अधिकम् भयं साध्वसं भयकारणं वा । अङ्ग क्षिप्रम् अभीषत् अभिभवति, अपचुच्युवत् अपच्यावयति च । यद्वा अभीषद् अभिभवद् भयकारणम् अपच्यावयेत्

हि यस्मात् कारणात् सस्थिरः केनापि चालयितुमशक्यः विचर्षणिः विश्वस्य द्रष्टा ॥ ७ ॥

(स्थिरः) किसीसे चलायमान न होसकनेवाला (विचर्षणिः) विश्वका द्रष्टा (इन्द्रः) इन्द्र (महत) अधिक (भयम्) भयको (अङ्ग) शीघ्र (हि) निश्चय (अभीषत्) तिरस्कृत करता है (अपचुच्युवत्) दूर भी करता है ॥ ७ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।

२ ३ ३ २उ ३ १ २

गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । भरद्वाज ऋषिः । हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! सुतेसुते सोमेऽभिषुते सति इमाः अस्मदीयाः गिरः स्तुतयः त्वा त्वां नक्षन्ते व्याप्नुवन्ति । धेनवः दोग्ध्र्यः गावः न गाव इव वत्सं यथा शीघ्रं व्याप्नुवन्ति तद्वत् ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे ऋचाओंसे स्तुति करने योग्य इंद्र ! (सुते सुते) सोमका अभिषव होनेपर (इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (धेनवः) दूध देनेवाली (गावः) गौएं (वत्सं न) जैसे शीघ्र ही बछड़ेके समीप पहुँचती हैं तैसे ही (त्वां) तुम्हें (नक्षन्त) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा नु पूषणा वयꣳ सख्याय स्वस्तये ।

३ २ ३ १ २

हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाजऋषिः । इतरेतरयोगादिन्द्रपूषशब्दयोरुभयत्र द्विवचनम् इन्द्रापूषणा देवौ नु अद्य च वयम् स्वस्तये सख्याय शोभनाय सखित्वाय वाजसातये वाजस्यान्नस्य बलस्य वा सातये सम्भजनाय च हुवेम आह्वयामः स्तवामो वा ॥ ९ ॥

(इन्द्रा पूषणा) इन्द्र और पूषा देवताको (नु) आज ही (वयम्) हम (स्वस्तये) कल्याणरूप (सख्याय) मित्रभावके निमित्त (वाजसातये) अन्न और जलकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) आह्वान करते हैं ९।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।

२ ३२उ ३ २
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । हे वृत्रहन् ! वृत्रस्य नाशक ! इन्द्र ! इन्द्रलोकेऽपीति शेषः । त्वत् त्वत्तः उत्तरः उत्कृष्टतरः नकि अस्ति न भवति त्वत्तो ज्यायान् प्रशस्ततर एकोऽपि नास्ति । इन्द्र ! त्वं लोके यथा प्रसिद्धो भवसि तथाविध एकोऽपि नकिरेवास्ति नैव भवति कश्चिदपि लोके इन्द्रसदृशो नास्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

(वृत्रहन्) वृत्रासुरके नाशक (इन्द्र) हे इन्द्र ! इन्द्रलोकमें भी (त्वत्) तुमसे (उत्तरः) उत्तम (न कि अस्ति) नहीं है (ज्यायान्) तुमसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है, हे इन्द्र ! (त्वम्) तुम लोकमें (यथा) जैसे प्रसिद्ध हो (एवम्) ऐसा एक भी (नकि अस्ति) नहीं है १०

द्वितीय अध्यायका नवम खण्ड समाप्त ।

---

३१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
३ २ ३ १ २
समानमु प्र शंसिषम् ॥ १ ॥

अथ दशमे खण्डे—सेयं प्रथमा । त्रिशोक ऋषिः । हे अस्मदीया जनाः ! वः युष्माकं जनानां पुत्रपौत्रादीनां तरणिं तारकम् त्रदं शत्रूणां तर्दयितारं गोमतः पशुमतः वाजस्य अन्नस्य दातारं च इंद्रम् समानम् उ सावधारणमेव प्रशंसिषम् प्रकर्षेण स्तौमि ॥ १ ॥

हे हमारे पुरुषो (वः) तुम (जनानाम्) पुत्र पौत्रादिकोंके (तरणिम्) तारक (त्रदम्) शत्रुओंको भय देनेवाले (गोमतः) पशुओं वाले (वाजस्य) अन्नके दाता इन्द्रको (समानम् उ) निरन्तर ही (प्रशंसिषम्) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
३ १ २ ३ १ २र
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मधुच्छन्दा ऋषिः । हे इन्द्र ! ते गिरः त्वदीयाः स्तुतीः असृग्रं सृष्टवानस्मि । ता गिरः स्वर्गेऽवस्थितं त्वां प्रति उदहासत उद्गत्य प्राप्नुवन् । तादृशीर्गिरस्त्वं सजोषाः सेवितवानसि । कीदृशं त्वाम् ? वृषभं कामानां वर्षितारं पतिं सोमस्य पातारं, यज मा-

नानां पालयितारं वा, पाता वा पालयिता वेति (१०, ११) यास्केनोक्तत्वात् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते गिरः) तेरी स्तुतियोंको (असृग्रम्) मैंने रचा है, वह स्तुतियें स्वर्ग में स्थित (वृषभम्) मनोरथों की वर्षा करने वाले (पतिम्) सोम पीनेवाले (त्वाम् प्रति) तुम्हारे समीप (उदहासत) पहुँचीं (सजोषाः) उनको तुमने सेवन किया ॥ २ ॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।

३ २उ ३ १ २

मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्स ऋषि । सः मर्त्यः मनुष्यः यजमानः सुनीथः सुयज्ञः सुनयनो वा भवति । घ इति प्रसिद्धौ । स इत्युक्तं कमित्याह यं यजमानं मरुतः देवाः पान्ति रक्षन्ति अद्रुहः अद्रोग्धारो मरुतः । तथा अयम् अर्यमा पाति । यं मित्रः पाति स एवं भवतीति ॥ ३ ॥

(यम्) जिसको (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (मरुतः) मरुत्(यम्) जिसको (अर्यमा) अर्यमा (मित्रः) मित्र देवता (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह (मर्त्यः) यजमान (सुनीथः) सुन्दर यज्ञ वा सुन्दर नेत्रोंवाला होता है (घ) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।

१ २ ३ १ २र

वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । त्रिशोक ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वया च वीडौ दृढे परैः कम्पयितुमशक्ये यत् धनं पराभृतं विन्यस्तं यत् च स्थिरे स्वयमचले पराभृतं यत् च अपि पर्शाने विमर्शाक्षमे पराभृतं, यद् वसु स्पार्हं स्पृहणीयं तत् धनम् आभर आहर ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुमने (वीडौ) किसीसे चलायमान न होसकने वाले पुरुषमें (यत्) जो धन (यत्) जो (स्थिरे) स्वयं अचल पुरुष में (यत्) जो (पर्शाने) असहन में (पराभृतम्) स्थापित किया (तत्) वह (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन (आभर)हमें दीजिये॥४॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

३ २३ १२ ३१
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। सुकक्ष ऋषिः। श्रुतं विख्यातम् वृत्रहन्तमम् अतिशयेन वृत्रस्य हन्तारं शर्द्धं बलभूतं वेगवत्तरं वा एतादृशमिन्द्रं चर्षणीनां मनुष्याणां वः युष्माकम् आशिषे अश्नोतेर्लेटि उत्तम इति सिप्प्रत्ययः छन्दस्यपि दृश्यते (६, ४, ७३, पा०) इत्याडागमः, तमिन्द्रं स्तुतिभिः प्रीणयित्वा युष्मभ्यं प्रकर्षेण अश्नवै प्रयच्छानीत्यर्थः। किमर्थम ? महे महते राधसे धनाय धनं युष्मभ्यं दातुम्। आशिषे आशुषे इति च पाठौ ॥ ५ ॥

(श्रुतम्) प्रसिद्ध (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके वृत्रासुरके नाशक (शर्द्धम्) परमवेग वाले इन्द्रको (चर्षणीनाम) मनुष्यों में (वः) तुम्हारे (महे) बहुत से (राधसे) अन्नके लिये (प्र आशिषे) प्रसन्न करके विशेषरूप से अर्पण करता हूँ ॥ ५ ॥

१२ ३ १२ ३१२ ३ १ २
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः।
१२ ३ ११
अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वामदेव ऋषिः। हे शूर ! वीर ! इन्द्र ! ते तव श्रवसे श्रवणीयां त्वदीयां कीर्त्तिं श्रोतुम्। अरम् अलं पर्याप्तं यथा भवति तथा गमेम प्रवृत्ता भवेम। हे शक्र ! शक्तियुक्तेन्द्र ! त्वावतः त्वत्सदृशस्य परेमणि परत्वे उत्कर्षनिमित्तम् अरं गमेम त्वत्कीर्त्तिवदन्यस्यापि त्वत्सदृशस्य देवस्य कीर्त्तिं गच्छेमेत्यर्थः ॥ ६ ॥

(शूर) वीर (इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तेरी(श्रवसे) कीर्त्तिके सुननेको (अरम्) पर्याप्तरूपसे (गमेम) प्रवृत्त हों (शक्र)हे इन्द्र!(त्वावतः) तेरी समान (परेमणि) श्रेष्ठ अन्य देवता की कीर्त्तिको भी (अरम्) पर्याप्तरूप से प्राप्त हों ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १२ ३१२ ३ १२
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
१२ ३१ २
इन्द्रं प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। विश्वामित्र ऋषिः। यजमानो ब्रूते हे इन्द्र ! धाना-

धन्तं धाना भृष्टयवाः तद्वन्तं करम्भिणं करम्भो दधिमिश्राः सक्तवः तद्वन्तम् अपूपवन्तम् सवनीयपुरोडाशोपेतम् उक्थिनं स्तोमिणं नः अस्मदीयामिमं सोमं प्रातः सवने जुषस्व सेवस्व । करम्भशब्दात् तदस्यास्तीत्यत इनिः तस्य प्रत्ययस्वरः । प्रातःस्वरादिष्वन्तोदात्तत्वेन पठितत्वादन्तोदात्तः ॥ ७ ॥

यजमान कहता है कि-(इन्द्र) हे इन्द्र (धानावन्तम्) भुने हुए यववाले (करम्भिणम्) दधिमिले सत्तुओंवाले (अपूपवन्तम्) यज्ञीय पुरोडाशसे युक्त (उक्थिनम्) स्तुति कियेहुए (नः) हमारे इस सोम को (प्रातः) प्रातःकालके सवनमें (जुषस्व) सेवन करो ॥ ७ ॥

३ १ २र३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
२ ३ १ २र३ १ २
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । पुरा किलेन्द्रोऽसुरान् जित्वा नमुचिमसुरं ग्रहीतुं न शशाक । स च युध्यमानस्तेनासुरेण जगृहे । स च गृहीतमिन्द्रमेवमवोचत् त्वां विसृजामि रात्रावह्नि च शुष्केणार्द्रेण चायुधेन यदि मां मा हिंसीरिति । स इन्द्रस्तेन विसृष्टः सन् अहोरात्रयोः सन्धौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन फेनेन तस्य शिरश्चिच्छेद अयमर्थोऽस्यां प्रतिपाद्यते । इन्द्रः त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः असुरस्य शिरः उदवर्त्तयः शरीरादुद्गतमवर्त्तयः अच्छैत्सीरित्यर्थः । कदेति चेत् यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्द्धमानाः आसुरीः सेनाः अजयः जितवानसि । इन्द्रो वृत्रहत्वा असुरान् परास्य नमुचिमसुरं नालभत इत्यादिकमध्वर्युब्राह्मणमनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

कहते हैं, कि—पहिले इन्द्रने सब असुरोंको तो जीत लिया परन्तु नमुचि को न पकड़सका, किंतु युद्ध करतेमें उस असुरने ही इन्द्रको पकड़लिया उस समय इंन्द्रसे कहा कि यदि रातमें वा दिनमें सूखे वा गोले शस्त्रसे मुझे न मारनेकी प्रतिज्ञा करे तो मैं तुझे छोड़ दूँ इस प्रतिज्ञा पर छोड़ेहुए इंद्रने दिन और रातके सन्धिकाल में सूखे और गोले दोनोंसे विलक्षण झागोंके शस्त्रसे उसका शिर काटा इसका ही आभास इस मंत्रमें है, कि-(यत्) जब (विश्वाः) सब (स्पृधः) डाह करनेवाली असुरोंकी सेनाओं को (अजयः) जीतलिया, तब (इंद्रः) इन्द्रने (अपां फेनेन) वज्ररूप हुए जलके झागोंसे (नमुचेः) नमुचि नामक असुरका (शिरः) शिर (अवर्त्तयः) काटलिया ॥ ८ ॥

३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदर्थम् इमे पुरतो दृश्यमानाः सोमा. सुतासः अभिषुताः ये च अन्ये सोमाः सोत्वाः इत ऊर्ध्वमभिषोतव्याः हे प्रभूवसो ! प्रभूतधनवन्निन्द्र ! तेषाम् अभिषुतानाम् अभिषोतव्यानामर्थे मत्स्व हृष्टो भव ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे लिये (इमे) यह (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन किये हैं (च) और (ये) जो (सोत्वाः) सम्पादन कियेजायँगे (प्रभूवसो) हे बहुतसे धनवाले इंद्र (तेषाम्) उन सब सोमरसोंसे (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तुभ्यꣳ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ १० ॥

अथ दशमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे विभावसो ! दीप्तिधन ! दीप्तिव्यापक ! वा इन्द्र ! तुभ्यं त्वदर्थं सोमाः सुतासः अभिषुताः तथा बर्हिः स्तीर्णं प्रसारितम् । अतः हे इन्द्र ! त्वं बर्हिषि निषद्य सोमान् पीत्वा स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं मृडय दयां कुरु यद्वा अस्मान् सुखय । क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् इति चतुर्थी ॥ १० ॥

(विभावसो) दीप्तिरूप धनवाले इन्द्र (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन करे हैं (बर्हिः) कुशासन (स्तीर्णम्) विछाया है, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम कुशासन पर बैठकर सोमोंको पीकर (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंको (मृडय) सुख दीजिये ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

२ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मꣳहिष्ठꣳ सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

अथ एकादशे खण्डे—सेयं प्रथमा । शुनःशेप ऋषिः । वाजयन्तः अन्नमिच्छन्तो वयं शुनःशेपाः हे ऋत्विग्यजमानाः ! वः युष्माकं सम्बन्धिनम् इन्द्रम् इन्दुभिः सोमैः आसिञ्चे वचनव्यत्ययः (३, १, ८५ पा०) सर्वतः सिञ्चामहे सपर्यामः । कीदृशं ? शतक्रतुं शतसंख्याककर्मोपेतम् मंहिष्ठम् अतिशयेन महान्तम । सेचने दृष्टान्तः क्रिविं यथा कृतीच्छेदने, कृत्यते छिद्यते खन्यते इति क्रिविः कूपः तां जलेन पूरयन्ति तद्वत् ॥ १ ॥

(वाजयन्तः) अन्नको चाहनेवाले हम, हे ऋत्विक् यजमानों!(वः) तुम्हारे (शतक्रतुम्) सैंकड़ों पराक्रम करने वाले (मंहिष्ठम्) परम पूज्य (इन्द्रम्) इन्द्रको (क्रिविं यथा) जैसे खेतीको जलसे सींचते हैं तिसप्रकार (इन्दुभिः) सोमोंसे (आसिञ्चे) सब ओरसे सींचकर तृप्त करते हैं ॥१॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २

अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया

३ २ ३ १ २

इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! अतश्चित् अस्मात् द्युलोकादेव यद्वा अस्माच्छत्रुस्थानात् शतवाजया शतसंख्याकबलयुक्तेन तथा सहस्रवाजया वाजोऽन्नम् (नि० २, ७) सहस्रसंख्याकान्नवता बहुलान्नेन इषा अन्नरसेन युक्तः सन् नः अस्मान् उपायाहि अधिकमाभिमुख्येनागच्छ ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (अतश्चित्) द्युलोकसे ही (शतवाजया) सैकड़ों प्रकारके बलसे युक्त (सहस्रवाजया) सहस्रों प्रकारके अन्नसे युक्त (इषा) अन्नरसको साथमें लिये हुए (नः) हमारे (उपयाहि) अभिमुख होकर पास आइये ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।

२ ३ १ २र

क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । त्रिशोक ऋषिः । जातः उत्पन्नः वृत्रहा इन्द्रः बुन्दम् इषुं, तथा च यास्कः बुन्द इषुर्भवतीति (नि० ६, ३२) आददे आदाय चेषुम् उग्राः उद्गूर्णबलाः के के च इह शृण्विरे वीर्येण विश्रुता इति स्वीयां मातरं वि पृच्छात् अप्राक्षीत् ॥ ३ ॥

(जातः) उत्पन्न हुआ (वृत्रहा) इंद्र (बुन्दम्) बाणको (आददे) ग्रहण करता हुआ, और उस बाणको लेकर (उग्रा) बल दिखानेवाले (के के) कौन कौन (इह) इस जगत्में (शृण्विरे) विख्यात हुए हैं यह बात अपनी मातासे (विपृच्छात्) बूझता हुआ ॥ ३ ॥

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
वृवदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २   ३ २   ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । मेधातिथिर्ऋषिः । ऊतये लोकस्य रक्षणाय सृप्रकरस्नं प्रसृतबाहुं, करस्नौ बाहू कर्मणां प्रस्थातारौ इति यास्कवचनात् अवसे लोकस्य पालनाय साधः साधकं धनं कृण्वन्तं कुर्वन्तं प्रयच्छन्तं वृधदुक्थं महदुक्थम् इन्द्रम् हवामहे आह्वयामः । तथा च यास्कः वृवदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्मा उक्थमिति वा (६, ४) इति ॥ ४ ॥

(ऊतये) लोककी रक्षाके लिये (सृप्रकरस्नम्) फैलेहुए बाहुको (अवसे) लोकोंके पालनके लिये (साधः) साधक धन (कृण्वन्तम्) अर्पण करतेहुए (वृधदुक्थम्) महान् स्तुतिवाले इंद्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

३   २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः । अहरभिमानी देवः मित्रः वरुणः रात्र्यभिमानी । मित्रश्च वरुणश्च । विद्वान् नेतव्यमुत्तमं स्थानं जानन् नः अस्मान् ऋजुनीती ऋजुनीत्या ऋजुनयनेन कौटिल्यरहितेन गमनेन नयति अभिमतं फलं प्रापयति । तथा देवैः अन्यैः इन्द्रादिभिः सजोषाः समानप्रीतिः अर्य्यमा अहोरात्रविभागस्य कर्त्ता सूर्य्यश्च अस्मानृजुगमनेनाभिमतं स्थानं प्रापयतु । नयाति नयतु इति च पाठौ ॥ ५ ॥

दिनका अभिमानी देवता (मित्रः) मित्र, रात्रिका अभिमानी देवता (वरुणः) वरुण (विद्वान्) पहुँचाने योग्य उत्तम स्थानको जानताहुआ (नः) हमें (ऋजुनीती) सरल गतिके द्वारा (नयति) अभिमत फल प्राप्त कराता है (देवैः) अन्य देवताओंके साथ (सजोषाः) समान प्रीतिवाला (अर्यमा) दिनरातका विभाग करनेवाला सूर्य भी हमें सरल मार्गसे उस स्थान पर पहुँचावे ॥ ७ ॥

३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
२ ३ २ ३ १ २
वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । ब्रह्मातिथि ऋषिः । दूरात् दूरत एव विप्रकृष्टे एव नभसः प्राक् प्रदेशे वर्त्तमाना इह इव सतः सती समीपे विद्यमाना इव समीपे विद्यमानेव अरुणप्सुः आरोचमानरूपा ईदृशी उषा यत् यदा अशिश्वितत् अश्वेतयत् श्विता वर्णो अस्मात् णयन्तात् लुङि चङि रूपम् । यद्वृत्तान् नित्यम् (८, १, ६६पा०) इति निघातप्रतिषेधः । तदा भानुं दीप्तिं विश्वथा विश्वधा बहुविधम् । व्यतनत् विस्तारयति, तनोतेर्ण्यन्त्ययेन शप् (१, १, ८५ पा०) प्रातरनुवाके उषस्येन काण्डेन (१, २४, २) उषाः स्तुता सती प्रादुर्बभूव हे अश्विनौ ! शंसिष्यमाणम् आश्विनं क्रतुं श्रोतुं युवामपि प्रादुर्भवत इत्यध्याहारेण वाक्यं पूरणीयम् । सतः सती इति पाठौ ॥ ६ ॥

(दूरात्) दूर, आकाशके पूर्वी भागमें (इह, सतः, इव) समीप में वर्त्तमानसी (अरुणप्सुः) प्रकाशस्वरूपा उषा (यत्) जब (अशिश्वितत्) प्रकाश फैलाती है, तब (भानुम्) दीप्तिको (विश्वथा) अनेकों प्रकारका (व्यतनत्) करती है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजाँसि सुक्रतू ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः । सुक्रतू शोभनकर्म्माणौ हे मित्रवरुणौ ! नः अस्माकं गव्यूतिं गवां मार्गं गोनिवासस्थानं घृतैः क्षरणसाधनैः पयोभिः आ उक्षतम् आ समन्तात् सिञ्चतम् अस्मभ्यं दोग्ध्रीः गाः प्रयच्छतमिति भावः । रजांसि पारलौकिकान्यस्मदावासस्थानानि मध्वा मधुरेण दुग्धरसेन सिञ्चतम् । गव्यूतिम् गोर्यूतौ छन्दसि (६, १, १२३ पा०) इति वान्तादेशः मध्वा सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वादत्र नुमभावः ॥ ७ ॥

(सुक्रतू) हे शोभन कर्मवाले मित्रावरुण ! (नः) हमारे (गव्यूतिम्) गौओंके निवासस्थानको (घृतैः) घृतके साधन दूधोंसे (आ उक्षतम्) सब ओरसे सींचो अर्थात् हमें दूधवाली गौएं दो

(रजांसि) हमारे पारलौकिक निवासस्थानोंको (मध्वा) मधुर दुग्धसे सींचो ॥ ७ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।

३ १ २ ३ १ २र

वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । प्रस्कण्व ऋषिः । त्ये ते प्रसिद्धाः गिरः सूनवः वाच उत्पादकाः मरुतः वायवो हि ताल्वोष्ठादिषु सञ्चरंतो वाचमुत्पादयन्ति यज्ञेषु स्वकीयेषु यागेषु वर्त्तमानेषु सत्सु काष्ठाः अपः आपोऽपि काष्ठा उच्यंते क्रान्त्वा स्थिता भवन्तीति (२,१५) यास्कः उत् उ उत्कर्षेणैव अत्नत अतानिषवन्तः विस्तारितवन्तः । उदकं विस्तार्य्य तत्पानार्थं वाश्राः हम्भारवोपेताः गा अभिज्ञु जान्वाभिमुखं यथा भवति तथा यातवे गन्तुं प्रेरितवन्त इति शेषः ॥ ८ ॥

(त्ये) उन प्रसिद्ध (गिरः सूनवः) वाणीको उत्पन्न करनेवाले मरुतों ने,जो कि तालु ओष्ठ आदिमें विचरकर शब्दको उत्पन्न करते हैं तिन वायुओंने (यज्ञेषु) अपने यज्ञोंके होनेपर (काष्ठाः) जलोंको (उत्, उ) उत्कर्ष करके (अत्नत) विस्तारित किया और जलको फैलाकर उसको पीनेके लिये (वाश्राः) रँभातीहुई गौओंको (अभिज्ञु) घुटनों के बल (यात) जानेको प्रेरणा किया ॥ ८ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २उ ३ २

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

१ २ ३ २

समूढमस्य पा ँ सुले ॥ ९ ॥

अथ नवमी । मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी इदं प्रतीयमानं सर्वं जगत् उद्दिश्य विचक्रमे विशेषेण क्रमणं कृतवान् । तदा त्रेधा त्रिभिः प्रकारैः पदं निदधे स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान् ।अस्य विष्णोः पांसुले पांसुरे धूलियुक्ते पादस्थाने समूढम् इदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतम् । सेयमृग् यास्केनेवं व्याख्याता विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा यदिदं किंच तद्विक्रमते विष्णुः त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः ।समूढमस्य पांसुरेऽप्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते अपिवोपमार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुलं इव पदं न दृश्यत इति । पांसवः

पादैः सुयन्त इति वा पन्नाः, शेरत इति वा । पंसनीया भवन्तीति वा (१२, १९) इति ॥ ९ ॥

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतार धारण करनेवाले भगवान् (इदम्) इस दृश्यमान सब जगत्को (विचक्रमे) विशेषरूपसे लाँघते हुए, उस समय (त्रेधा) तीनप्रकारसे (पदम्) चरणको (निदधे) स्थापन करतेहुए (अस्य) इन विष्णुके (पांसुले) धूलियुक्त चरण-स्थानमें (समूढम्) यह सब जगत् सम्यक् प्रकारसे अन्तर्गत होगया ।

द्वितीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अतीहि मन्युषाविणꣳ सुषुवाꣳसमुपेरय ।

३ २ ३ २ ३ १ २

अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥

अथ द्वादशखण्डे—सैषा प्रथमा । मेधातिथि ऋषिः । हे इन्द्र ! मन्युषाविणं क्रोधेन सोमं सुन्वन्तम् अतीहि अतिगच्छ तथास्मिन् देशे सुषुवांसं सोमं सुतं सुन्वन्तम् उपेरय समीपे प्रेरय । अस्य यजमानस्य रातौ यज्ञाख्ये दाने अभिषुतं सोमं पिब ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (मन्युषाविणम्) क्रोधसे सोमका रस निकालनेवाले को (अतीहि) त्यागदे और तहां (सुषुवांसम्) सुन्दर प्रकारसे रस निकालनेवालेको (उपेरय) भेजो (अस्य) इस यजमानके (रातौ) यज्ञसंबन्धी दानमें (सुतम्) संपादित सोमको (पिब) पियो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।

१ २र ३ १ २

तदिदस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेव ऋषिः । महे महते प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय देवाय द्योतनादिगुणयुक्तायेन्द्राय कदुकुत्सितम् अस्मदीयं वचः स्तोत्ररूपं सुतं शस्यते प्रशस्तं यथा भवति देवस्तथानुगृह्णात्वित्यर्थः । तदित् तदेव अस्य यजमानस्य वर्द्धनं हि प्रवृत्तिसाधनं खलु ॥ २ ॥

(महे) महान् (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (देवाय) इन्द्रदेवताके अर्थ (कदु) हमारा कुत्सित (वचः) स्तोत्ररूप वचन (शस्यते) प्रशंसित हो अर्थात् हमारे यथार्थरूपसे न हुए भी स्तोत्रको इन्द्रदेव अनुग्रह करके स्वीकार करें (तदित्) वह ही (अस्य) इस यजमान का (वर्धनम्) वृद्धिका साधन है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिरा चिकेत ।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मेधातिथिप्रियमेधावृषी । नागोरयिरा : अगोः अस्तोतुः अयिः अरिः । व्यत्ययेन यकारः (३, १, ८५ पा०) शत्रुः इन्द्रः शस्यमानं होत्रा पठ्यमानम् उक्थं च न शस्त्रमा आचिकेत अभिजानाति कित ज्ञाने, छान्दसो लिट् (३, ४, ७ पा०) नेति सम्प्रत्यर्थे न सम्प्रति प्रस्तोत्रादिभिर्गीयमानं गायत्रम् गातव्यं साम यद्वा गायत्राख्यम् आचिकेतेत्येव । अतः कारणात् वयमपि तमिन्द्रं स्तुम इत्यर्थः । नागोः अगोः इति, अयिः अरिः इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(अगोः) स्तुति न करनेवालेका (अयिः) शत्रु इन्द्र (शस्यमानम्) होताके पढ़ेहुए (उक्थं च) स्तोत्रको भी (आचिकेत) जानता है, (न) इस समय प्रस्तोता आदिके गाये हुए (गायत्रम) गायत्र साम को जानता ही है, इसकारण हम भी उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

हरिवांत्सुतानाꣳ सखा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्र ऋषिः । वाजानाम् अन्नानां मध्ये वाजपतिः उत्कृष्टान्नपतिः हरिवान् हरिनामकाश्ववान् इंद्रः उक्थेभिः होतृप्रयुक्तैः उक्थनामकैर्वा शस्त्रैः मन्दिष्ठः अतिशयेन तृप्तः सन् सुतानाम् अभिषुतानां सोमानां सखा सखिवत् प्रीतिकरः सोमैः प्रीयत इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(वाजानाम) अन्नोंमें (वाजपतिः) उत्तम अन्नका स्वामी (हरिवान्) हरिनामक घोड़ेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (उक्थेभिः) होताओंके बोले हुए स्तोत्रोंसे (मन्दिष्ठः) अत्यंत तृप्त हुआ (सुतानाम्) सोमों का (सखा) मित्रवत् प्रीतिकर्त्ता हो ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।

३ १ २ ३ १ २

महाꣳ इव युवजानिः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मेधातिथिप्रियमेधावृषी । हे इन्द्र ! नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतं सोमम् उप याहि प्रत्यागच्छ किञ्च वाजेभिः अन्यदीयैर्हविरूपैरन्नैः मा हृणीयथाः मा ह्रियस्व । तत्र दृष्टान्तः युवजानिः यौवनोपेता जाया यस्यासौ युवजानिः जायाया निङ् (५,४, १३४पा०) इति समासान्तः महान् इव प्रभुरिव यथा रूपवद्भार्योपेतः प्रभुः अन्याभिर्नापह्रियते किन्तु तामेव युवतिं प्रत्यागच्छति तद्वत् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र हमारे (सुतम्) सम्पादन किये हुए सोमको (उपयाहि) आकर ग्रहण कीजिये और (वाजेभिः) औरोंके हविरूप अन्नोंसे (मा हृणीयथाः) लोभमें न पड़िये (युवजानिः) युवती स्त्रीवाला (महान् इव) प्रभु जैसे अर्थात् जैसे कि युवती स्त्रीवाला राजा अन्य स्त्रियों पर चित्त नहीं है लुभाता है किंतु अपनी नवयौवनाके पास ही आता है ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
कदा वसो स्तोत्रꣳ हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः
३ २ ३ २ ३ १ २
दीर्घꣳ सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कौत्सो दुर्मित्र ऋषिः । हे वसो ! वासयितः ! इन्द्रः स्तोत्रम् अस्मत्कर्तृकं हर्यते कामयमानाय कामयमाने त्वां क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् इति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी कदा कस्मिन् काले अवारुधत् अवरोत्स्यति, अवरुध्य च कदा वाः वारयिष्यति, तादृशः कालः कदा अस्माकं सम्भविष्यतीत्याशास्ते । तत्र दृष्टांतः अश्नुते क्षेत्राणीति श्मशा कुल्या लुप्तोपममेतत् यथा कुल्या तत उदकान्यधरुणाद्वि अवरुध्य च वारयति तथेत्यर्थः । किमुद्दिश्यावरोध इति तत्राह दीर्घं सवनत्रयरूपेणायतं सुतम् अभिषुतं सोमं प्रति । किमर्थमिति तदाह वाताप्याय वातेनाप्यते अधस्तान्निपात्यते इति वाताप्यमुदकं तस्य प्रदानायेत्यर्थः ॥ ६ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र ! (स्तोत्रम्) हमारे किये हुए स्तोत्रको (हर्यते) चाहते हुए आपको (श्मशा) कृत्रिम नदीकी समान (वाताप्याय) जलदानके निमित्त (दीर्घम्) फैलेहुए (सुतम्) सम्पादित सोमके प्रति (कदा) कब (अवारुधत्) रोकोगे और रोककर कब (वाः) वारण करोगे ॥ ६ ॥

१ २ ३ १२३ २ ३ १ २ ३ १ २र
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूꣳरनु ।

२ ३२ ३ १ २र
तवेद ७ सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे इन्द्र ! ब्राह्मणात् ब्राह्मणात् शंसिसम्बन्धात् राधसः धनभूतात् पात्रात् सोमं पिब । किं कृत्वा ? ऋतून् अनु देवाननुसृत्य ऋतवोऽपि पिबन्त्वित्यर्थः । हि यस्मात् तव इदं सख्यम् अस्तृतम् ऋतूनामविच्छिन्नं तस्मादृतुभिः पानं युक्तम् ७

(इंद्र) हे इंद्र (ब्राह्मणात्) ब्रह्मसंबंधी (राधसः) धनभूत पात्र से (सोमम्) सोमको (ऋतून् अनु) देवताओंके पीछे (पिब) पियो क्योंकि (तव) तुम्हारा (इदम्) यह (सख्यम्) देवताओंके साथ मित्रभाव (अस्तृतम्) अविच्छिन्न है ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
१ २
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे गिर्वणः ! गीर्भिर्वननीय ! इन्द्र ! ते तवापि वयं घ वयं खलु स्तोतारः स्मसि स्मः भवामः । हे सोमपाः ! सोमस्य पातरिन्द्र ! त्वं न अस्मान् जिन्व प्रीणयसि ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) वाणियोंसे प्रार्थना करने योग्य (इन्द्र) हे इंद्र (ते) तुम्हारे भी (वयं घ) हम निश्चय (स्तोतारः) स्तुति करनेवाले (स्मसि) हों (सोमपाः) हे सोम पीनेवाले इंद्र ! (त्वम्) तुम (नः) हमें (जिन्वसि) तृप्त करते हो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
१ २ २ १ २
सत्राजिदुग्र पौंऽस्यम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । विश्वामित्रोगाथिनोभीपाद् उदलो वा ऋषिः । हे इन्द्र ! पृक्षु सम्पृक्तासु कासु चित् कास्वपि नः अस्माकं तनूषु अङ्गेषु नृम्णं बलम् आ धेहि आ समन्तात् स्थापय । हे उग्र उद्गूर्णबल ! इन्द्र ! सत्राजित् द्वादशाहादिभिः सत्रैः जीयमानो वशीक्रियमाणः सन् पौंस्यम् पुंसे हितं फलम् आ धेहि प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (पृक्षु) संपृक्त (कासुचित्) किन्हीं (नः) हमारे (तनूषु) अङ्गोंमें (नृम्णम्) बलको (आ धेहि) स्थापन करो (उग्र)

हे पूर्णबल इन्द्र ! (सत्राजित) बारह दिनमें यज्ञोंके द्वारा वशमें होते हुए (पौंस्यम) पुरुषके हितकारी फलको (आ धेहि) दो ॥ ९ ॥

३ १ २र ३२३१ २र३२ ३२

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।

३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥

अथ दशमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वं वीरयुः वीरान् युद्धकर्मणि समर्थान् शत्रून् हन्तुं कामयमानः एव असि भवसि खलु हि प्रसिद्धौ अत एव त्वं शूरः सामर्थ्यवानेव भवसि । उत अपि च स्थिरः संग्रामे धैर्यवान् भवसि । एकत्र स्थितश्चैव शत्रून् सम्प्रहरसीत्यर्थः । एवं सति ते तव मनः राध्यं स्तुतिभिराराधनीयमेव, यतोऽनेन मनसा त्वं शत्रुवधं संग्रामे धैर्यादिकं करोषीति । तत एव तव मनः सर्वैः स्तुत्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।

पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिक-मार्ग-प्रवर्त्तक-श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोऽपाख्याने ऐन्द्रकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ।

हे इन्द्र! तुम (वीरयुः) युद्धमें वीर शत्रुओंको मारनेकी कामनावाले (एव) ही (असि) हो (हि) यह बात प्रसिद्ध है, इसी कारण तुम (शूरः) शूर हो (उत) और (स्थिरः) संग्रामोंमें धैर्यधारी हो, एक स्थान पर स्थिर रहकर ही शत्रुओंका संहार करते हो, ऐसा होनेसे (ते) तुम्हारा (मनः) मन (राध्यम्) स्तुतियोंसे आराधना करने योग्य है ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खंडः समाप्तः ।

द्वितीयोऽध्यायश्च समाप्तः ॥

* श्रीः *

अथ तृतीयाध्याय आरभ्यते

❀ अस्मिन्नध्यायेऽपि इन्द्र स्तूयते ❀

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

३ १ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

ऋचोऽशीति रभित्वेति बृहत्यः सकला अपि ।
नहि वो मारुती तत्र प्रामिन्नायेति संस्तुतिः ।
आदित्यानामथेन्द्राग्नी अपादिन्द्राग्निसंस्तुतिः ।
आश्विनत्युक्ता शचीभिर्नः कुष्ठ्येमा उवामिति ।
यद्या कदा वारुणी स्यात्त्वष्टानो बहुदेवता ।
उपस्या प्रत्यु इत्येवा ब्रह्म वट् सूर्यसंस्तवः ।
इत्येकादश ताभ्योऽन्या ऐन्द्र एकोनसप्ततिः ॥

अथ प्रथमखण्डे सैषा प्रथमा । वसिष्ठ ऋषिः । छ० बृहती । हे शूर ! इन्द्र ! अस्य जगतः जङ्गमस्य ईशानम् ईश्वरं तस्थुषः स्थावरस्य चेशानम् ईशानपदस्यावृत्तिरादरार्था स्वर्दृशं सर्वदृशं त्वा त्वां अदुग्धा इव धेनवः यथा अदुग्धा धेनवः क्षीरपूर्णोधस्त्वेन वर्त्तन्ते तद्वत् सोमपूर्णचमसत्वेन वर्त्तमाना वयम् अभि नोनुमः भृशमभिष्टुमः ॥ १ ॥

(शूर इन्द्र) हे शूर इन्द्र (अस्य) इस (जगतः) जङ्गमके (तस्थुषः) स्थावरके (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सबके द्रष्टा (त्वा) तुम्हें (अदुग्धाः) बिना दुही दूधभरे थनवाली (धेनवः इव) गौओंकी समान सोमभरे चमस लियेहुए हम (अभि नोनुमः) वार २ प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । कारवः स्तोतारो वयं वाजस्य अन्नस्य सातौ सम्भजने निमित्तभूते सति, हे इन्द्र ! त्वामिद्धि त्वामेव हवामहे स्तुतिभिराह्वयामः । हे इन्द्र ! सत्पतिं सतां पालयितारं एवं त्वां नरो नेतारोऽन्येऽपि मनुष्याः वृत्रेषु आवरकेषु शत्रुषु सत्सु हवन्ते आह्वयन्ति तज्जयार्थम् । अपिच अर्वतः अश्वस्य सर्वान्धिनीषु काष्ठासु यथाऽश्वः क्रान्त्वा तिष्ठन्ति तासु काष्ठासु संग्रामेषु युद्धकामाश्च त्वामेवाह्वयन्ति अतो वयं त्वामेवाह्वयाम इत्यर्थः ॥ २ ॥

(कारवः) स्तुति करनेवाले हम (वाजस्य) अन्नके (सातौ) दानके निमित्त (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वामिद्धि) आपको ही(हवामहे) स्तुतियोंसे पुकारते हैं, हे इन्द्र ! (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक आपको (नरः) अन्य मनुष्य भी (वृत्रेषु) शत्रुओंके होनेपर [हवन्त] उनको जीतनेके निमित्त आह्वान करते हैं और (अर्वतः) अश्वसंबंधी (काष्ठासु) संग्रामोंमें युद्धकी इच्छासे आपको ही पुकारते हैं इस कारण हम भी आपको ही पुकारते हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३१२३ १ २ ३ १२ ३२
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
१ २३ २ ३१२ ३१२ ३१२ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ३

अथ तृतीया । वालखिल्या ऋषयः । पुरूवसुः पश्वादिधनोपेतः पशादिबाहुल्याद्बहुनिवासको वा मघवा यः इन्द्रः जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं सहस्रेणेव सहस्रसंख्याकेन धनेनेव शिक्षति पश्वादिबहुधनमस्मभ्यं प्रयच्छतीत्यर्थः । स इन्द्रः यथा विदे यथा अस्माभिर्विज्ञायते तथा हि ऋत्विजः ! वः यूयं सुराधसं शोभनधनोपेतम् इन्द्रं परमैश्वर्य्ययुक्तं देवम् अभि आभिमुख्येन प्राचं प्रकर्षेणार्चत ॥ ३ ॥

(पुरूवसुः) पशु आदि बहुतसे धनवाला (यः) जो (मघवा) इन्द्र (जरितृभ्यः) स्तुति करने वाले हमारे अर्थ (सहस्रेणेव) सहस्र संख्या के धनसे मानो (शिक्षति) शिक्षा देताहै अर्थात् हमें पशु आदि बहुत सा धन देता है, (यथाविदे) जैसे हम जानें तिस प्रकार हे ऋत्विजो

(वः) तुम (सुराधसम्) शोभनधनयुक्त (इंद्रम्) इंद्रदेवताको (अभि) अभिमुख होकर (प्रार्च) अधिकतासे पूजो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४

अथ चतुर्थी । नोधा इन्द्रं स्तौति । हे ऋत्विग्यजमानाः । दस्मं दर्शनीयम् ऋतीषहम् ऋतयो बाधकाः शत्रवः तेषामभिभवितारम् । पुनः कीदृशम् ? वसोः वासयितुर्दुःखस्य विवासयितुः यद्वा, वसोः पात्रे निवसतः, तादृशस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य पानेन मन्दानं मोदमानं वः यष्टव्यत्वेन युष्मत्सम्बन्धिनं तं तादृशमिन्द्रम् । गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिः अभिनवामहे नु स्तवने, नुशब्दे अभिष्टुमः । कुत्र ? स्वसरेषु । अत्र यास्कः (५, ४), स्वसराण्यहानि भवन्ति स्वयं सारीण्यपि वा स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयतीति सूर्यनेतृकेषु दिवसेषु वयमभिष्टुमः अभितः शब्दयामः तत्र दृष्टान्तः वत्सं न यथा धेनवो नवप्रसूता गावः स्वसरेषु सुष्ठु अस्यन्ते प्रेर्यन्ते गावोऽत्रेति स्वसराणि गोष्ठानि तेषु वत्समभिलक्ष्य शब्दयन्ति तद्वत् ॥ ४ ॥

हे ऋत्विक् यजमानों ! (दस्मम्) दर्शनीय (ऋतीषहम्) बाधक शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (वसोः) दुःखको दूर करनेवाले (अंधसः) सोमरूप अन्नके पीनेसे (मंदानम्) प्रसन्न होते हुए (वः) तुम्हारे पूजने योग्य इन्द्रको (स्वसरेषु) गोशालाओंमें(धेनवः) गौएं (वत्सं न) जैसे बछड़ोंको देखकर शब्द करती हैं तिसीप्रकार (गीर्भिः) स्तुतिरूप वाणियोंसे (अभि नवामहे) प्रणाम करते हैं

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्

अथ पञ्चमी । कलिः प्रगाथ ऋषिः । हे ऋत्विजः ! वः यूयं तरोभिः वेगवद्भिरश्वैरुपेतं वेगैर्वा विदद्वसुम् वेदयद्वसुं धनावेदकम् इन्द्रं सबाधः बाधासहिताः ऊतये रक्षणाय बृहत् सामैतत्संज्ञकं गायन्तः सन्तः परिचरतेति शेषः । कुत्रेत्युच्यते ? सुतसोमे अभिषुतसोमके अध्वरे यज्ञे सोमयागे । अहं च तामिन्द्रं हुवे आह्वयामि । कमिव

भरं न भर्त्तारं कुटुम्बपोषकं कारिणं स्वहितकरणशीलं यथा, स्वहित-करणायाह्वयन्ति पुत्रादयः, तद्वत् तथाभूतमिन्द्रं हुवे इति ॥ ५ ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (तरोभिः) वेगवान् घोड़ोंवाले (विद्वसुम्) धन देनेवाले (इंद्रम) इन्द्रको (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त हुए (ऊतये) रक्षाके लिये (बृहत्) बृहत्सामको (गायन्तः) गातेहुए आराधना करो, हम भी (सुतसोमे) संपादन किया है सोम जिसमें ऐसे (अध्वरे) यज्ञमें (भरम्) पोषण करनेवाले (कारिणं न)अपने हितकारीको जैसे पुत्रादि आराधना करते हैं तैसे (हुवे) आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वशिष्ठ ऋषिः । तरणिरित् युद्धादौ कर्मणि त्वरित एव पुमान् पुरन्ध्या महत्या धिया युजा सहायभूतया वाजम् अन्नं सिषासति सम्भजते । पुरुहूतं बहुभिराहूतम् इन्द्रं गिरा स्तुत्या हे यजमानाः ! वः युष्मदर्थम् आ नमे तमभिमुखं कुर्वे । तत्र दृष्टान्तः, नेमिं चक्रस्य वलयं सुद्रुवं शोभनदारुं तष्टेव यथा वर्द्धकिः दारु-नेमिमानमयते तद्वदित्यर्थः ॥ ६ ॥

(तरणिरित्) युद्धादिमें त्वरा करनेवाला पुरुष (युजा) सहाय-भूत (पुरंध्या) बड़ी बुद्धिसे (वाजम) अन्नको (सिषासति) प्राप्त होता है (सुद्रुवम) सुंदर काष्ठवाली (नेमिम) पहियेकी पुट्ठीको (तष्टा इव) जैसे बढ़ई नम्र करलेता है तैसे हे यजमानो (पुरुहूतम्) अनेकोंसे आह्वान कियेहुए (इन्द्रं) इंद्रको (गिरा) स्तुति करके (वः) तुम्हारे निमित्त (आ नमे) अभिमुख करता हूँ ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु
३ १ २
ते धियः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । मेधातिथि ऋषिः । हे इन्द्र ! रसिनः रसवतः ।

गोमतः गोविकारैः पयःप्रभृतिभिः अपशब्दैर्युक्तस्य नः अस्मदीयस्य सुतस्य अभिषुतस्य। क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ईदृशं सोमं पिब पीत्वा च मत्स्व मत्तो भव। अपि च सधमाद्ये सह माद्यन्ति देवा अत्रेति सधमाद्यो यज्ञःतस्मिन् सहमादयितव्ये यज्ञे त्वम् आपिः आपयिता बन्धुः सन् नः अस्माकं वृधे वर्द्धनाय बोधि बुध्यस्व। ते त्वदीयाः धियः बुद्धयः अनुग्रहात्मिकाः अस्मान् स्तोतॄन् अवन्तु रक्षन्तु। सधमाद्ये सधमाद्यः इति च पाठौ ७

(इन्द्र) हे इन्द्र (रसिनः) रसवाले (गोमतः) गौके दूध घृतादि से युक्त (नः) हमारे (सुतस्य) सम्पादन किये हुए सोमको (पिब) पियो और पीकर (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये और (सधमाद्ये) जिसमें शीघ्र ही देवता प्रसन्न होते हैं ऐसे यज्ञमें (आपिः) धनादि देनेवाले तुम बान्धव बनलेहुए (नः) हमारी (वृधे) वृद्धिके निमित्त (बोधि) सावधान हूजिये (ते) तुम्हारे (धियः) अनुग्रह करने वाले विचार हम सेवकोंकी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ७॥

२उ ३ १२ ३२उ ३ १९

त्वꣳ ह्येहि चेरवे विदाभगं वसुत्तये।

१२ ३ १२३२३ १ १

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥८॥

अथ अष्टमी। भर्ग ऋषिः। हे इन्द्र! त्वं हि त्वं खलु सामर्थ्याद्दातेति गम्यते। अत एहि आगच्छ। आगत्य च चेरवे क्रमपराचारवते मह्यं भगं भजनीयं धनं विदाः लभस्व दस्व। किमर्थम्? वसुत्तये अस्माकं वसुदानाय। हे मघवन्! धनवन्निन्द्र! गविष्टये गाः इच्छते मह्यम् उद्वावृषस्व आसिञ्चस्व गामिति शेषः। तथा, हे इन्द्र! अश्वमिष्टये अश्वैषणावते मह्यम् अश्वान् उद्वावृषस्व आसिञ्चस्व देहीत्यर्थः॥८॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (हि) निश्चय (त्वम्) तुम दाता हो इसकारण (वसुत्तये) मुझे धन देनेके अर्थ (एहि) आओ और आकर (चेरवे) सदाचारवाले मुझे (भगम्) धन (विदाः) दो (मघवन्) हे इन्द्र! (गविष्टये) गौओंकी इच्छा करनेवाले मुझे (उद्वावृषस्व) गोधनसे सींचो (इन्द्र) हे इन्द्र! अश्व चाहनेवाले मुझे (उत्) अश्व धनसे सींचो अर्थात् मुझे धन, गौएं और घोड़े दो ॥ ८॥

१ २र ३२ ३ १ २र ३१ २

न हि वश्चरमं च न वशिष्ठः परिमꣳसते।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः

अथ नवमी । वशिष्ठः परोक्षेण ब्रूते । हे मरुतः ! वशिष्ठः एतन्नामा ऋषिः वः युष्माकं मध्ये चरमं चन अधन्यमपि न हि परिमंसते वर्जयित्वा न स्तौति किन्तु सर्वानेव युष्मान् स्तौतीत्यर्थः अद्य अस्मिन् दिने अस्माकम् अस्मदीये सुते सोमे अभिषुते सति मरुतः कामिनः सोमं कामयमानाः विश्वे सर्वे सचा सङ्गत्य पिबन्तु पानं कुर्वन्तु । पिबन्तु पिबन्त इति च पाठौ ॥ ९ ॥

हे मरुतो ! (वशिष्ठः) वशिष्ठ (वः) तुम्हारे विषैं (चरमं चन) छोटेको भी (नहि परिमंसते) छोड़कर स्तुति नहीं करता है किन्तु सबकी ही स्तुति करता है (अद्य) आज (अस्माकम्) हमारे (सुते) सोमका सम्पादन होनेपर (मरुत्) सोमकी इच्छा करतेहुए (विश्वे) सब (सचा) इकट्ठे होकर (पिबन्तु) पियें ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३

मा चिदन्यद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्र-

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २

मित्स्तोता वृषणꣳसचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत १०

अथ दशमी । प्रगाथः काण्व ऋषिः । हे सखायः ! समानख्यानाः स्तोतारः ! इन्द्रस्तोत्राद् अन्यत् स्तोत्रं मा चिद्विशंसत मैवोच्चारत । मा रिषण्यत मा हिंसितारो भवत । अन्यदीयस्तोत्रोच्चारणेन वृथोपक्षीणा मा भवत । सुते अभिषुते सोमे वृषणं कामानां वर्षितारम् इन्द्रमित् इन्द्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः ! सचा सह संघीभूय स्तोत स्तुत । उक्थानि च उक्था शस्त्राणि ऐन्द्राविषयाणि यूयं मुहुः पुनः पुनः शंसत उच्चारयत ॥ १० ॥

(सखायः) हे स्तोताओ (अन्यत्) इन्द्रके स्तोत्रसे अन्य स्तोत्र को (मा चिद्विशसत) मत उच्चारण करो (मा रिषण्यत) वृथा क्षीण मत होओ (सुते) सोमका संपादन होनेपर (वृषणम) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्रमित्) इन्द्रको ही (सचा) इकट्ठे होकर (स्तोत) स्तुति करो (उक्था च) इन्द्राविषयक शस्त्रोंका भी (मुहुः) वार वार (शंसत) उच्चारण करो ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः

२ ३१ २र ३२३१२ ३१२
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
२३२३२३१२३१ २३१२ ३१ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

अथ द्वितीयखण्डे—सैषा प्रथमा । आङ्गिरसः पुरुजन्मा ऋषिः । तं यजमानं कर्म्मणा हननादिव्यापारेण नकिर्नशत् नैव व्याप्नोति । यः इन्द्रं चकार इन्द्रमेवानुकूलयज्ञैः साधनैः कृतवान् । कीदृशमिन्द्रम् ? सदावृधम् ? सर्वदा वर्द्धकम् । विश्वगूर्त्तं सर्वैः स्तुत्यम् । ऋभ्वसं महान्तम् ओजसा बलेन अधृष्टम् अन्यैर्धर्षितुमशक्यम् । धृष्णुं शत्रूणां धर्षकम् । "धृष्णुमोजसा" "धृष्णवोजसम्" इति च पाठौ ॥१॥

(यः) जो यजमान (सदावृधम्) सदा बढानेवाले (विश्वगूर्त्तिम्) सबके स्तुति करनेयोग्य (ऋभ्वसम्) बड़े (ओजसा) बल करके (अधृष्टम्) किसीसे न दबनेवाले (न) और (धृष्णुम्) शत्रुओंको धमकानेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञोंसे अनुकूल (चकार) कर चुकता है (तम्) उसको (कर्मणा, नाकिः, नशत्) दुःख देना आदि कर्मसे नहीं दबाता है ॥ १ ॥

२ ३१ २ ३१२ ३२ ३१२ ३ १२
य ऋते चिदाभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
१२ ३ २ ३१२ ३२३१२३ १२३१२
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विहुतं पुनः २

अथ द्वितीया । मेधातिथिर्मेध्यातिथिरस्याः परस्याश्च ऋषिः । यः इंद्रः आभिश्रिषः अभिश्लिषः अभिश्लेषणात् सन्धानद्रव्यात् ऋते चित् विनापि जत्रुभ्यो ग्रीवाभ्यः सकाशात् आतृदः आतर्दनात् आरुधिरनिस्रवणात् पुरा पूर्वमेव सन्धिं संधातव्यं तं सन्धाता संयोजयिता भवति । मघवा धनवान् पुरूवसुः बहुधनः स इन्द्रः विहुतं विच्छिन्नं तं पुनः निष्कर्त्ता संस्कर्त्ता भवति ॥ २ ॥

(यः) जो इन्द्र (अभिश्रिषः) जोड़नेकी सामग्रीके (ऋतेचित्) विना भी (जत्रुभ्यः) ग्रीवाओं से (आतृदः) रुधिर निकलने से (पुरा) पहिले (सन्धिम्) जोड़ने योग्य वस्तुको (संधाता) जोड़ने वाला होता है (मघवा) धनवान् (पुरूवसुः) अनेकों ऐश्वर्योंवाला वह इन्द्र (विहुतम्) कटकर अलग हुएको (पुनः) फिर (निष्कर्त्ता) संस्कार करदेता है ॥ २ ॥

१ २ ३२३२ ३२ ३१ २र ३१२
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १२
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ३

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सहस्रं सहस्रसंख्याका हरय स्त्वदीया अश्वाः आ वहन्तु आ नयन्तु अस्मद्यज्ञम । तथा शतं शत-संख्याकाश्च भवदीया अश्वास्त्वामावहन्तु । यद्यपि द्वावेव हरी तथापि तद्विभूतयोऽन्येपि बहवोऽश्वाः सन्ति । ननु युगपदनेकैरश्वैः कथ यातुं शक्यते ? इत्यत आह । युक्ताः इति हिरण्यये हिरण्मये स्वर्णविकारे हिरण्यशब्दाद्विकारार्थे,विहितस्य मयटः ऋत्व्या वास्त्ये-त्यादौ मलोपो निपात्यते तादृशे रथे युक्ताः सम्बद्धाः बहूनामश्वानां शीघ्रगमनाय रथे नियुक्तत्वात् युगपदेव सर्वैरश्वैर्गन्तुं शक्यत इति भावः । कीदृशा हरयः ? ब्रह्मयुजः ब्रह्मणा परिवृढेनेन्द्रेण युक्ताः यद्वा ब्रह्मणास्मदीयेन स्तोत्रेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः । केशिनः केशाः ग्रीवायामुपरि वर्त्तमानाः सटाः तैर्युक्ताः । किमर्थमिन्द्रस्या-वहनम् ? तत्राह सोमपीतये सोमपानाय । यथास्मदीयं सोमं पिबेत् तथा आवहन्त्वित्यर्थः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (ब्रह्मयुजः) स्तोत्र पढ़कर हमारे दियेहुए हविसे युक्त (केशिनः) ग्रीवापर लम्बे केशोंवाले (हिरण्मये) सुवर्णके बनेहुए (रथे) रथमें (युक्ताः) आगे पीछे जुतेहुए (आ सहस्रम् शतम्) सहस्रों और सैंकड़ों (हरयः) घोड़े (त्वा) तुम्हें (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिये (आ वहन्तु) हमारे यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्रो यथार्थमिन्द्रमाह्वयति । हे इन्द्र ! मन्द्रैः मादयितृभिः मयूररोमभिः मयूररोमसदृशरोमयुक्तैः हरिभिः अश्वै-रुपेतस्त्वम् आयाहि यज्ञं प्रत्यागच्छ । केचिदपि जनाः त्वा त्वां मा नियमुः मा नियच्छन्तु । गमनप्रतिबन्धं मा कुर्वन्तु इत्यभिप्रायः । तत्र दृष्टान्तः पाशिनो न पाशिनः इव, यथा पाशहस्ता व्याधाः पक्षिणो नियच्छन्ति तद्वन्मा नियच्छन्तु किञ्च । धन्वेव यथा पान्था धन्व

मरुदेशं शीघ्रमतिगच्छन्ति तद्वद्गमनप्रतिबंधकारिणस्तानतीत्य शीघ्रम् एहि आगच्छ ॥ ४ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (मन्द्रैः) आनंद देनेवाले (मयूररोमाभिः) मोर केसे रोमोंवाले (हरिभिः) घोड़ों सहित तुम (धन्वेव) जैसे बटोही मरुदेशको शीघ्र ही लाँघजाते हैं तैसे (तान्) उन गमनके प्रतिबंधकों को (अति) लाँघकर (आयाहि) आइये (इत्) और (पाशिनः न) जैसे हाथमें पाश लियेहुए व्याधे पक्षियोंको पकड़ते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (मा नियमुः) कोई न रोकै (एहि) आइये ॥ ४ ॥

२ ३ २   २र   ३ १   २ ३ १ २

त्वमङ्ग प्रश ंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ १   ३ २ ३ १ २   ३ १ २

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः अङ्गेत्यभिमुखीकरणे अङ्ग शविष्ठ ! हे बलवत्तम ! इंद्र ! देवः द्योतमानस्त्वं मर्त्यं मरणधर्माणं त्वां स्तुवन्तं पुरुषं प्रशंसिषः सम्यगनेन स्तुतमिति प्रशंस । हे मघवन् ! धनवान् इन्द्र ! त्वदन्यः त्वत्तोऽन्यः कश्चित् मर्डिता सुखयिता नास्ति । अतः कारणात् तुभ्यमिदं स्तुतिलक्षणं वचो ब्रवीमि उच्चारयामि ॥ ५ ॥

(अङ्ग शविष्ठ) हे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ इंद्र ! (देवः) प्रकाशित होतेहुए तुम (मर्त्यम्) अपनी स्तुति करनेवाले मनुष्यको (प्रशंसिषः) इसने भलेप्रकार स्तुतिकी इसप्रकार प्रशंसा करते हो (मघवन् इंद्र) हे धनवान् इंद्र ! (त्वदन्यः) तुमसे अन्य कोई भी (मर्डिता) सुख देनेवाला (नास्ति) नहीं है, इसकारण तुम्हारे अर्थ यह (वचः) स्तुतिरूप वचन (ब्रवीमि) उच्चारण करता हूँ ॥ ५ ॥

१ २   ३ १   २   ३ १   २र३ १ २

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३ १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २   ३ १ २

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।

अथ षष्ठी । नृमेधपुरुमेधावृषी । हे इन्द्र ! शवसस्पतिः बलस्य पालयिता ऋजीषी अपचितोऽभिषुतः सोमः, तद्वान् त्वं यशा यशस्वी असि भवसि । कथमस्य यशस्वित्वम् तदाह-अप्रतीनि बलिभिरप्य-प्रतिगतानि पुरु पुरूणि शे छन्दसि बहुलम् (६, १, १०) इति शेर्लोपः बहूनि वृत्राणि रक्षांसि अनुत्तः न केनापि प्रेरितः चर्षणी-धृतिः चर्षणीनां यजमानमनुष्याणां धारकः । एक इत् असहाय एव त्व हंसि सम प्रहरसि अत एवास्य यशस्वित्वम् ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (शवसस्पतिः) बलका पालन करनेवाले (ऋ-जीषी) पूजित सोमको प्राप्त होनेवाले (त्वम्) तुम (यशा) यशस्वी (असि) हो, क्योंकि-(अप्रतीनि) बड़े २ बलवान् भी जिनके सन्मुख न आवें ऐसे (पुरु) बहुत से (वृत्राणि) राक्षसोंको (अनुत्तः) किसीके बिना प्रेरणा किये ही (चर्षणीधृतिः) यजमानोंके रक्षक तुम (एक इत्) अकेले ही (हंसि) नष्ट करदेते हो ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रँ्समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ७

अथ सप्तमी । एतदादीनां तिसृणां मेध्यातिथिर्ऋषिः । देवतातये देवैः स्तोतृभिः तायते विस्तार्यते इति देवतातिर्यज्ञः तदर्थम् इन्द्रमित् देवेषु मध्ये इन्द्रमेव हवामहे आह्वयामहे । अध्वरे यज्ञे प्रयति प्रगच्छति उपक्रान्ते सति इन्द्रं हवामहे । तथा समीके सम्यग्जाते सम्पूर्णे च यागे वनिनः सम्भजमानाः वयम् इन्द्रमेवाह्वयामहे।यद्वा । समीकमिति संग्राम नाम (नि० २, १७, ११) । समीके संग्रामे इन्द्रमेवाह्वयामहे धनस्य सातये लाभाय इन्द्रमेव आह्वयामहे । अतः शीघ्रमिन्द्र आगच्छतु इत्यर्थः ॥ ७ ॥

(देवतातये) देवताओंके निमित्त किये जानेवाले यज्ञके अर्थ(इंद्र-मित्) सब देवताओंमें इन्द्रको ही (हवामहे) आह्वान करते हैं (अध्वरे प्रयति) यज्ञके होते में (इंद्रम्) इन्द्रको आह्वान करते हैं (समीके) यज्ञके संपूर्ण होनेपर अथवा संग्राम के समय (वनिनः) आराधना करनेवाले हम (इंद्रम्) इंद्रको आह्वान करते हैं (धनस्य) धनके (सातये) लाभके निमित्त (इंद्रम्) इन्द्रका ही आह्वान करते हैं इसकारण हे इन्द्र ! शीघ्र आइये ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ८

अथ अष्टमी । हे पुरूवसो । बहुधनेन्द्र ! मम मदीयाः इमाः गिरः शब्दरूपा वाचः त्वा त्वां वर्द्धन्तु वर्द्धयन्तु तथा पावकवर्णाः अग्नि-समानतेजस्काः अतएवः शुचयः शुद्धा विपश्चितो विद्वांसः उद्गातारश्च

स्तोमैः स्तोत्रैर्बहिष्पवमानादिभिः अभ्यनूषत त्वामभिष्टुवन्ति (नु स्तुतौ कुटादिः ॥ ८ ॥

(पुरूवसो) हे बहुत धन वाले इन्द्र ! (मम) मेरी (इमाः) यह (याः) जो (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें हैं (त्वा) तुम्हें (वर्द्धन्तु) बढ़ावें (पावकवर्णाः) अग्निकी समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध (विपश्चितः) विद्वान् (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव।

अथ नवमी । त्ये ते प्रसिद्धाः मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुराः गिरः अप्रगीताः शस्त्ररूपा वाचः । स्तोमासः प्रगीतानि बहिष्पवमानादीनि स्तोत्राणि च उदीरते इन्द्र ! त्वामुद्दिश्योद्गच्छन्ति ऊर्ध्वं प्रसरन्ति ईर गतौ आदादिकः तत्र दृष्टान्तः । सत्राजितः सदैव शत्रून् जयन्तः अत-एव धनसाधनानि सम्भजन्तः वनु षणु सम्भक्तौ । जन-सन-खन-क्रमगमो विट् । विड्वनोरनुनासिकः स्यात् इत्यात्वम् अक्षितोतयः क्षियो भावे निष्ठायामण्यदर्थे इति पर्युदासादीर्घाभावः । अतएव क्षियो दीर्घात् इति निष्ठा नत्वाभावश्च । अक्षिताः क्षयरहिताः ऊतयो रक्षा येषां ते तथोक्ताः वाजयन्त वाजमन्नमिच्छन्तः क्यचि न छन्दस्य-पुत्रस्येति ईत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः । एवं गुणविशिष्टा रथा इव, ते यथा विविधमितस्ततः उत्तिष्ठन्ति तद्वदुदीरत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

(सत्राजितः) सदा शत्रुओंको जीतनेवाले (धनसा) अधिक धन वाले (अक्षितोतयः) क्षयरहित है रक्षा जिनकी ऐसे (वाजयन्तः) अन्नकी इच्छावाले रथ जैसे इधर उधर जाते हैं तैसे ही,(त्ये)प्रसिद्ध (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (गिरः) श्रेष्ठ वचन (स्तोमासः) बहिष्पवमान आदि स्तोत्र भी (उदीरते) तुम्हारे निमित्त उच्चारण किये हुए ऊपरको फैलते हैं ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २र ३
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् । आपि-
१ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
त्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सुसचा पिब १०

अथ दशमी । देवातिथिः काण्व ऋषिः । गौरः गौरमृगः तृष्यन् पिपासितः सन् अपा अद्भिः करकैः व्यत्ययेनैकवचनम् । ऊडिदमित्यादिना (६, १, १७१) विभक्तेरुदात्तत्वम् कृतं सम्पूर्णत्वं कृतम् इरिणं निस्तृणं तडागादेश यथा येन प्रकारेण अवैति अभिगच्छति अवशब्दोऽभिशब्दस्यार्थ,आभिमुखः सन् शीघ्रं गच्छति । तथा आपित्वे बन्धुत्वे प्रपित्वे प्राप्ते सति हे इन्द्र ! त्वं नः अस्मान् तूयं क्षिप्रनामैतत् शीघ्रम् आगहि आगच्छ । आगत्य च कण्वेषु कण्वपुत्रेष्वस्मासु सचा सह एकप्रयत्नेनैव क्रियमाणं सर्वं सोमं सु सुष्ठु पिब ॥ १० ॥

(गौरः) गौर मृग (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा) जलोंसे (कृतम्) पूर्ण कियेहुए (इरिणम्) तृणरहित तडागस्थान पर (यथा) जैसे (अवैति) अभिमुख होकर जाता है तैसे ही (आपित्वे) बन्धुभाव के (प्रपित्वे) प्राप्त होनेपर (इन्द्र) हे इंद्र ! तुम (नः) हमारे पास (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आओ और आकर (कण्वेषु) हम कण्वों में (सचा) सबके इकट्ठे होकर संपादन करे हुए सोमको (सुपिब) सुन्दरतासे पियो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

अथ तृतीये खण्डे—सैषा प्रथमा । भर्ग ऋषिः । हे शचीपते ! इन्द्र शग्धि देह्यभिमतम् । विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः रक्षाभिः सह हे शूर! भगं न भाग्यमिव यशसं यशस्विनम् । वसुविदं धनस्य लम्भकं त्वा त्वाम् अनुचरामसि परिचराम इत्यर्थः ॥ १ ॥

(शचीपते, शूर, इन्द्र) हे शचीपति पराक्रमी इंद्र! (विश्वाभिः) सकल (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (शग्धि) इच्छित वरदान दो (भगं न) हमारे भाग्यकी समान (यशसम्)यशस्वी (वसुविदम्) धन देनेवाले (त्वा) तुम्हें (परिचरामि) आराधन करता हूँ ॥ १ ॥

१ २३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ२ असुरेभ्यः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्द्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः २

अथ द्वितीया। रेभः काश्यप ऋषिरिन्द्रं प्रार्थयते। हे इन्द्र ! स्वर्वान् सुखवान् स्वर्गवान् वा अथवा स्वः शब्दः सर्वपर्यायः सर्वं भूतजातम् आत्मन एवोत्पन्नत्वात् तद्वान् एवं गुणस्त्वं याः यानि भुजो भोक्तव्यानि धनानि असुरेभ्यो बलवद्भ्यो राक्षसेभ्यः आभरः आहरः तान् हत्वा आहृतवानसि हृग्रहोरिति भकारादेशः अतएव हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! अस्य अन्वादेशे अशादेशः एतस्य आहृतस्य धनस्य दानेन स्तोतारमित् तव स्तोत्रकारिणमेव वर्द्धय वृद्धिमन्तं कुरु। ये च अन्ये यष्टारः त्वे त्वदर्थं वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषो भवन्ति अतः तांश्च धनेन वर्धय ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (स्वर्वान्) स्वर्गवाले तुमने (याः) जिन (भुजः) भोगने के धनोंको (असुरेभ्यः) बलवान् राक्षसोंसे (आभरः) उनको मारकर लिया है, इसकारण (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र ! (अस्य) इस लायेहुए धनके दानसे (स्तोतारमित्) अपनी स्तुति करनेवाले को ही (वर्द्धय) वृद्धिवाला करो (च) और (ये) जो यजन करनेवाले (त्वे) तुम्हारे अर्थ (वृक्तबर्हिषः) कुशासन बिछाते हैं, उनको भी धनसे बढ़ाओ ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो।

३ २ १२३ २ ३ १२ ३ १ २र

वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रंराजसु गायत ३

अथ तृतीया। जमदग्निर्ऋषिः। हे ऋतावसो ! यज्ञधन ! मित्राय सचथ्यं सेवार्हं छन्द्यं यज्ञगृहभवम् अभिप्रायानुसारं वा वचः स्तोत्रं प्रगायत प्रकर्षेण पठत। अर्य्यम्णे च प्रगायत। वरूथ्ये यज्ञगृहावस्थिते वरुणे च प्रगायत। प्रगायतेति बहुवचनं पूजार्थम् एतदेव दर्शयति राजसु राजमानेषु मित्रादिषु स्तोत्रं गायत पठत। मित्रादीन् त्रीन् राज्ञः स्तुतेति समुदायार्थः ॥ ३ ॥

(ऋतावसो) हे यज्ञधन ! (मित्राय) मित्र देवता के अर्थ (सचथ्यम्) सेवायोग्य (छन्द्यम्) यज्ञशालामें होनेवाले (वचः) स्तोत्र को (अर्यम्णे) अर्यमा देवता के अर्थ (वरूथ्ये) यज्ञशालामें स्थित (वरुणे) वरुणके अर्थ (राजसु) इनके विराजमान होनेपर (प्रगायत) गाओ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३१२ ३ २३ १ २ ३१२

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।

३ १ २ ३२३ १२ ३१२ ३२
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥४

अथ चतुर्थी । मेध्यातिथिर्ऋषिः हे इन्द्र ! आयवो मनुष्याः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैः त्वामभि ष्टुवन्ति । किमर्थम् ? पूर्वपीतये सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं प्रथमत एव सोमस्य पानाय सवनमुखे हि चमसगणैः इन्द्रस्यैव सोमो हूयते । तथा समीचीनासः सङ्गताः ऋभवः प्रथमवाचकेन शब्देन त्रयोऽप्युपलक्ष्यन्ते ऋभुर्विभ्वावाज इत्येते च समस्वरन् त्वामेव सम्यग् स्तुवन् स्वृ शब्दोपतापयोः रुद्राः रुद्रपुत्रा मरुतश्च पूर्व्यं पुरातनं वृद्धं त्वामेव गृणन्त अभ्यस्तुवन् वृत्रवधसमये प्रहर भगवो जहि वीरयस्वेत्येवं रूपया वाचा त्वां स्तुतवन्त इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (आयवः) स्तुति करनेवाले मनुष्य (पूर्वपीतये) सब देवताओंसे प्रथम सोम पीनेके निमित्त (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे (त्वाम् अभि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (समीचीनासः) इकट्ठे हुए (ऋभवः) सर्वोमे (समस्वरन्) भले प्रकार तुम्हारी ही स्तुति की (रुद्राः) रुद्रके पुत्र मरुतोंने (पूर्व्यम्) तुम पुरातन पुरुषकी ही (गृणन्त) स्तुति की ॥ ४ ॥

२३ १२ ३१ २र३ १२
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
३१ २ ३२ ३१२ ३१२ ३१२
वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥५

अथ पञ्चमी । अस्याः परस्याश्च नृमेधपुरुमेधौ ऋषी । हे मरुतः ! मितराविणः स्तोतारः ! बृहते महते वः स्तुत्यस्तोतृत्वलक्षणेन सम्बन्धेन युष्मदीयायेन्द्राय । ब्रह्मसामलक्षणं स्तोत्रं प्रार्चत प्रोच्चारयत । ततो वृत्रहा वृत्रस्य मेघस्य पापस्य वा हन्ता । शतक्रतुः शतविधकर्मा बहुविधप्रज्ञो वा इन्द्रः शतपर्वणा शतसंख्याकधारेण वज्रेण एतन्नामकेनायुधेन वा वृत्रम् अपामावरकं वृत्राख्यमसुरं वा हनति युष्माभिरभिष्टुतः सन् हन्तु । हन्तेर्लेट्यडागमः ॥ ५ ॥

(मरुतः) हे स्तोताओं ! (बृहते) महान् (वः) तुम्हारे अपने इन्द्रके अर्थ (ब्रह्म) सामरूप स्तोत्रका (प्रार्चत) उच्चारण करो, तब (वृत्रहा) पापका नाशक (शतक्रतुः) इन्द्र (शतपर्वणा) सौ धारों वाले (वज्रेण) वज्रसे (वृत्रम्) पापको (हनति) नष्ट करे ॥ ५ ॥

२१ २र ३१२ ३१२
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २

येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ६

अथ षष्ठी । हे मरुतः ! रुशब्दे, मितं रुवन्तीति मरुतः, हे मितभाषिणः स्तोतारः ! वृत्रहन्तमं अतिशयेन पापविनाशनं बृहत् साम इन्द्राय इन्द्रार्थं गायत अस्मदीये यज्ञे गानं कुरुत । ऋतावृधः ऋतस्य सत्यस्य वा वर्धका विश्वे देवाः अङ्गिरसो वा ऋषयः । देवाय द्योतमानायेन्द्राय देवं देवनशीलं जागृवि सर्वेषां जागरणशीलं ज्योतिः सूर्यं येन साम्ना अजनयन् इन्द्रार्थमुदपादयन् तत्साम गायतेति ॥ ६ ॥

(मरुतः) हे मितभाषी स्तोताओ ! (वृत्रहन्तमम्) अत्यन्त पापनाशक (बृहत्) बृहत्सामको (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गायत) गाओ (ऋतावृधः) सत्यको बढ़ानेवाले देवता वा ऋषि (देवाय) दीप्तिमान् इन्द्रके अर्थ (देवम्) दिव्य (जागृवि) सबको जगानेवाले (ज्योतिः) सूर्यको (येन) जिस सामके द्वारा (अजनयन्) उत्पन्न करतेहुए ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षाणो

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वशिष्ठ ऋषिः । हे इन्द्र ! नः अस्मभ्यं क्रतुं कर्म वा प्रज्ञानं वा आभर आहर । अपि च, यथा पिता पुत्रेभ्यः धनं प्रयच्छति तथा नः अस्मभ्यं शिक्ष धनं देहि । हे पुरुहूत ! बहुभिराहूतेन्द्र ! यामनि यज्ञे जीवा वयं ज्योतिः सूर्यम् अशीमहि प्रतिदिनं प्राप्नुयामः । यद्वा, हे इन्द्र ! भूतानि प्रकाशयितरिन्द्र ! तथाच यास्कः, इंद्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति, वेरां दधातीति, वेरां दारयत इति, वेरां धारयत इति, वेन्दवे द्रवतीति, वेन्दौ रमत इति, वेन्धे भूतानीति वा तद्यदेनं प्राणैः सर्वैः समैन्धंस्तादिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते (१०,८) इति । एवं गुणविशिष्ट ! परमात्मन् ! त्वं क्रतुं कर्म स्वविषयज्ञानं वा नः अस्मभ्यम् आभर आहर प्रयच्छेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः, पिता पुत्रेभ्यो यथा लोके वियां धनं वा प्रयच्छति तथा नोऽस्मभ्यं वियां धनं वा प्रयच्छ । हे पुरुहूत! बहुभिराहूतेन्द्र ! यामनि सर्वैः प्राप्तव्ये अस्मिन् प्रकृते ब्रह्मणि जीवा वयं ज्योतिः परं ज्योतिरशीमहि सेवेमहि ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हमें (क्रतुम्) कर्म वा ज्ञान (आभर) दो और (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंको धन देता है तैसे (नः) हमें (शिक्ष) धन दो (पुरुहूत) हे इन्द्र ! (यामनि) यज्ञमें (जीवाः) हम जीव (ज्योतिः)सूर्यको (अशीमहि)प्रतिदिन प्राप्त हों।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १२

त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ८

अथ अष्टमी । रेभ ऋषिः । हे इन्द्र ! नः हविषां प्रदातॄन् अस्मान् मा परावृणक् मा परित्याक्षीः वृजी वर्जने रौधादिकः । लङि रूपं तदेवाह त्वं नोऽस्माकं सधमाद्ये सह मादनहेतुभूते यज्ञे सोमपानाय भव । किञ्च हे इन्द्र ! नोऽस्मान् त्वमेव ऊती ऊत्यां स्थापय। यद्वा ऊती व्यत्ययेन कर्त्तरि क्तिचा निपातितः त्वमेवास्माकं रक्षिता खलु । तथा त्वमित् इद्वधारणे त्वमेव नोऽस्माकम् आप्यं ज्ञातव्यम् । त्वमेव बन्धुरित्यर्थः । अतएव मा न इन्द्रः परावृणागिति गतार्थः । सधमाद्ये सधमाद्यः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हवि देनेवाले हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो तुम (नः) हमारे (सधमाद्ये) आनन्दके कारणभूत यज्ञमें सोमपानके अर्थ (भव) प्राप्त होओ (इंद्र) हे इंद्र (नः) हमें (त्वामित्) तुम ही (ऊती) रक्षामें स्थापित करो (त्वम्) तुम (नः) हमारे (आप्यम्) बंधु हो (इंद्र) हे इंद्र (नः) हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ६

अथ नवमी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे वृत्रहन् त्वा त्वां वयं घ खलु सुतावन्तः सोममभिषुतवन्तः आपो न आप इव प्रवणमभिगच्छामः । पवित्रस्य सोमस्य प्रस्रवणेषु वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषः स्तोतारश्च त्वां पर्युपासते ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्) हे इन्द्र (त्वा) तुम्हे (वयम्) हम (घ) निश्चय (सुतावन्तः) सोमका सम्पादन किये हुए (आपः, न) जलोंकी समान नम्र

हुए प्राप्त होते हैं (पवित्रस्य) पवित्र सोमके (प्रस्रवणेषु) रस निकलते में (वृक्तबर्हिष:) आसन बिछाने वाले (स्तोतार:) स्तोता भी तुम्हारी (परिआसते) उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि-
१ २
पौंꣳस्या ॥ १० ॥

अथ दशमी । भरद्वाज ऋषिः । हे इंद्र ! नाहुषीषु नहुष इति मनुष्यनाम (नि० २, ३, ९) तत्सम्बन्धिनीषु कृष्टिषु प्रजासु आकारः समुच्चये यच्च ओजो बलं नृम्णं धनं च विद्यते । यद्वा यच्च पञ्च पञ्चानां क्षितीनाम् । निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्च क्षितयः तेषां स्वभूतम् । द्युम्नं द्योमानमन्नं तत्सर्वमस्मभ्यम् आभर आहर प्रयच्छ । तथा सत्रा महान्ति विश्वानि सर्वाणि पौंस्या पौंस्यानि बलानि चास्मभ्यमाहर ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नाहुषीषु) मानुषी (कृष्टिषु) प्रजाओंमें (ओजः) बल (च) और (नृम्णम्) धन है (यद्वा) और जो (पंच) पाँच (क्षितीनाम्) भूमियोंका (द्युम्नम्) दमकता हुआ अन्न है वह सब हमारे अर्थ (आभर) दो, तथा (सत्रा) बड़े (विश्वानि) सब (पौंस्या) बलोंको भी दो ॥ १० ॥

इति तृतीध्यायस्य तृतीयः खण्डः

---

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः १

अथ चतुर्थ खण्डे-सैषा प्रथमा । मेधातिथिर्ऋषिः । हे उग्र ! उद्गूर्णेन्द्र ! त्वं सत्यम् इत्था इत्थं वृषेत् कामानां वर्षक एवासि । वृषजूतिः वृषभिः सेक्तृभिः सोमरसस्य सोतृभिश्चाहूतो नः अस्मान् अविता रक्षिता भवसि । वृषाहि सेचक एव शृण्विषे श्रयसे । परावति दूरेऽपि वृषेव कामानां सेचक एवासि । अर्वावति समीपेऽपि वृषा सेचक एव श्रुनः अश्रूयत । अविथा अवृतः इति च पाठौ ॥ १ ॥

(उग्र) हे दर्पवाले इन्द्र ! तुम (सत्यम) सत्य (इत्था) इसप्रकार (वृषेत्) इच्छित वरदानोंकी वर्षा करनेवाले हो (वृषजूतिः) सोमरसका सेचन करने वालोंसे आह्वान किये हुए (नः) हमारे अविता रक्षक होते हो (वृषाहि) तुम वरदान देनेवाले ही (शास्त्रिवषे) सुनेजाते हो (परावति) दूर भी (वृषेव) वरदानोंकी वर्षा करनेवाले ही हो (अर्वावति) समीपमें भी (वृषः) मनोरथ पूरक (श्रुतः) सुनेगए हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । अतस्त्वा

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावा ँ आ विवासति ॥

अथ द्वितीया । रेभ ऋषिः । हे शक्र ! शत्रुहननसमर्थेन्द्र ! यद् यदा परावति विप्रकृष्टे दूरे द्युलोकदेशे आसि विद्यसे । हे वृत्रहन् ! वृत्रस्य हन्तरिन्द्र ! यद् यदा वा अर्वावति अर्वाचीने तस्मादधस्तात् स्थिते तदपेक्षया समीपे देशेऽन्तरिक्षे भवसि। तस्मादपि । अतः अस्माद्लोकाद्वा हे इन्द्र ! द्युगत् गम्लृ सृप्लृ गतौ । क्विपि गमः क्वौ इति अनुनासिकलोपः । तुक् । सुपां सुलुगिति भिसो लुक् । द्युलोकं प्रति गच्छद्भिः स्वभासा सर्वतो गच्छद्भिः केशिभि केशवद्भिः हरिभिरिव स्थिताभिः गीर्भिः स्तुतिभिः त्वा त्वां सुतवान् अभिषुतसोमवान् यजमानः आविवासति आत्मीयं यज्ञं प्रति आगमयति । त्वामेतैः स्तोत्रैः परिचरति वा ॥ २ ॥

(शक्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (परावति) दूर द्युलोक में (आसि) होते हो और (वृत्रहन्) हे इन्द्र ! (यत्) जब (अर्वावति) उससे समीप अन्तरिक्ष देश में होते हो (अतः) इसलोक से (इन्द्र) हे इन्द्र अपनी कान्ति से सर्वत्र फैलनेवालीं (केशिभिः) केशवाले घोड़ों की समान स्थित (गीर्भिः) स्तुतियों से (त्वा) तुम्हे (सुतवान्) सोम संपादन करनेवाला यजमान (आविवासति) अपने यज्ञ में बुलाता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २र

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रं नाम श्रुत्य ँ शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्स ऋषिः । इयं पिपीलिकमध्या बृहतीति बह्वृचाः आद्यन्त्यो पादौ त्रयोदशाक्षरौ मध्यमोऽष्टाक्षर इति त्रिपदा । हे उद्गात्राद्यः ! वः यूयम् अथवा हे यजमानाः ! वो युष्माकं हिताय अन्धसः सोमस्य मदेषु उत्पाद्यमानेषु सत्सु वीरं शत्रूणाम् ईरयितारम् । नाम शत्रूणां नामकम् । विचेतसं विशिष्टप्रज्ञं श्रुत्यं सर्वत्र श्रोतव्यं स्तुत्यम् शाकिनं शाक्तमन्तम् ईदृशम् इन्द्रम् महा महत्या गिरा स्तुत्या वचो वाचो युष्मदीया यथा येन प्रकारेण प्रवर्त्तते गायत्र्या त्रिष्टुभा वा तथा गाय गायत स्तुतिं कुरुत ॥ ३ ॥

हे उद्गाता आदि (वः) तुम अथवा हे यजामानों (वः) तुम्हारे हित के लिये (अन्धसः) सोमके (मदेषु) सम्पादन करते समय (वीरम्) शत्रुओंको भय देनेवाले (नाम) शत्रुओंको नमानेवाले (विचेतसम्) विशिष्ट बुद्धिवाले (श्रुत्यं) सर्वत्र स्तुतियोग्य (शाकिनम्) शक्तिमान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (महा) बड़ी (गिरा) स्तुति से (वचः) तुम्हारी वाणी (यथा) जिसप्रकार प्रवृत्त होती हैं तैसे (गाय) गाओ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथꣳ स्वस्तये ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ४

अथ चतुर्थी । शंयुः ऋषिः । हे इन्द्र ! त्रिधातु त्रिप्रकारं त्रिभूमिकम् ! त्रिवरूथं त्रयाणां शीतातपवर्षाणां वारकम् । स्वस्तये अविनाशाय छर्दिः छर्दिष्मत् आच्छादनयुक्तम् । एवं गुणविशिष्टं शरणं गृहम् । मघवद्भ्यश्च मघं हविर्लक्षणं धनं तद्वद्भ्यश्चास्मदीयेभ्यो यजमानेभ्यः मह्यं भारद्वाजाय च प्रयच्छ देहि । अपि च । एभ्यः सकाशात् दिद्युं शत्रुप्रेरितं द्योतमानमायुधं यवय पृथक्कुरु ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्रिधातु) तिमँजले (त्रिवरूथम्) शीत, धूप और वर्षाका वारण करने वाले (स्वस्तये) कल्याणके लिये (छर्दिः) छत हुए (शरणम्) गृहको (मघवद्भ्यः) हविरूप धनवाले हमारे यजमानोंको (मह्यम्, च) मुझ भी दो (एभ्यः) इनके समीप से (दिद्युम्) शत्रुओंके छोड़े हुए दीप्तिमान् आयुधको (यवय) अलग करो ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र १ २

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि

३ १ २र ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र

जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥५॥

अथ पञ्चमी। नृमेध ऋषिः। हे अस्मदीया जनाः! आयन्त इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्य्यं भजन्ते तथा इन्द्रस्य विश्वेत् विश्वान्येव धनानि भक्षत भजत। स च यानि वसूनि धनानि जाते उत्पन्ने जनिमानि जायमाने जनिष्यमाणे च ओजसा बलेन करोति अतो भागं न पित्र्यं भागमिव तानि धनानि प्रतिदीधिमः प्रतिधारयेमेति यद्वा। आयन्त इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्य्यमुपतिष्ठन्ते तथा इन्द्रस्य विश्वा विश्वानि धनानि विभक्तुमिच्छन्तः समाश्रिता मरुतः इन्द्रमुपतिष्ठत इति शेषः।उपस्थाय च मरुतो वसूनि उदकलक्षणानि धनानि जाते जायमानाय जनिमानि जनिष्यमाणाय मनुष्याय ओजसा बलेन भक्षत विभजन्ते। तत्र चास्माकं यो भागः तं भागं नेति सम्प्रत्यर्थे प्रतीत्येषः अनु इत्येतस्य स्थाने। अनुदीधिमः वयमनुध्यायाम। तथा च यास्कः (नै० ६, ८) समाश्रिता सूर्यमुपतिष्ठन्तेऽपि वोपमार्थे स्यात् सूर्यमिवेन्द्रमुपतिष्ठन्त इति सर्वाणीन्द्रस्य धनानि विभक्ष्यमाणाः स यथा धनानि विभजति जाते जनिष्यमाणे च तं वयं भागमनुध्यायामोजसा बलेनेति। जनिमानि जनिमानः इति च पाठौ॥५॥

हे हमारे पुरुषों! (आयन्त इव सूर्यम) जैसे आश्रयमें रहनेवाली किरणें सूर्यका सेवन करती हैं तैसे (इंद्रस्य) इंद्रके (विश्वेत्) सकल धनोंको (भक्षत) सेवन करो,वह इंद्र (वसूनि) जिन धनोंको (जाते) उत्पन्न होनेपर (जनिमानि) उत्पन्न होजानेपर (ओजसा) बलसे (करोति) करता है, उसमेंसे (भागं न) पिताके धनमेंके भागकी समान उन धनोंको (प्रतिदीधिमः) हम धारण करें॥५॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः।

१ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ६

अथ षष्ठी। पुरुहन्मा ऋषिः। हे दीर्घायो! नित्येन्द्र! सः अदेवः इन्द्राख्यदेवरहितः मर्त्यः मरणधर्मा मनुष्यः सीं सर्वं इषम् तत्प्रसिद्धम् अन्नं नाप न प्राप्नोति। यो मर्त्यः अस्येन्द्रस्य एतग्वाचित् एतवर्णावेवाश्वौ भवतोऽभिमतदेशगमनाय एतशः एतशौ अश्वौ युयोजते

योजयति रथे, यज्ञं गन्तुम्। यश्चेन्द्रो हरी युयोजते न स्तौति स न प्राप्नोतीति समन्वयः। आप तत् आपत् इति च पाठौ। एतशः एतशा इति पाठौ ॥ ६ ॥

(दीर्घायो) हे चिरञ्जीव इन्द्र ! वह (अनेवः) इन्द्र नामक देवता से रहित (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (सोम) सब (तत्) प्रसिद्ध अन्नको (न आप) नहीं प्राप्त होता है (यः) जो मनुष्य इस इन्द्रके तुम्हारे अभिमत स्थानमें जानेके निमित्त (एतग्वाचित्) विचित्र वर्णोके घोड़ेवाला है (यः) जो (एतशः) घोड़ोंको (युयोजते) जोड़ता है (इंद्रः) इन्द्र (हरी) हरिनामक घोड़ोंको (युयोजते) यज्ञमें जाने के निमित्त रथमें जोड़ता है, उसकी जो स्तुति नहीं करता वह उस को नहीं पाता है ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳ समत्सु भूषत।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम् ७

अथ सप्तमी। नृमेधपुरुमेधावृषी। हे स्तोतारः ! विश्वासु सर्वासु समत्सु असुरयुद्धेषु हव्यं सर्वैर्देवैरात्मरक्षार्थमाह्वातव्यम्। एतादृशम् इन्द्रम् उद्दिश्य नः अस्माकं यज्ञे ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवीरूपाण्यन्नानि वा उपभूषत अलंकुरुत प्रेरयत। हे वृत्रहन् ! वृत्रस्यासुरस्य पापस्य वा हन्तः ! परमज्याः युद्धेषु शत्रुहननार्थं परमा अविनश्वरी ज्या मौर्वी यस्य तथोक्तः। यद्वा परमान् बलेन प्रकृष्टान् शत्रून् जीनाति हिनस्तीति परमज्याः हे ऋचीषम ! स्तुतिभिरभिमुखीकरणीयेन्द्र ! एतादृशस्त्वं सवनानि प्रातः सवनादीनि त्रीणि ब्रह्माणि स्तोत्राणि च उपभूषत अलंकुरुत। भूषतः भूषतु इति पाठौ। वृत्रहन्। वृत्रहा इति च ॥ ७ ॥

हे स्तोताओं (विश्वासु) सब (समत्सु) असुरोंके साथ युद्धोंमें (हव्यम्) जिसको अपनी रक्षाके निमित्त सब देवता अवश्य बुलाते हैं ऐसे (इन्द्रम्) इंद्रके निमित्त (नः) हमारे यज्ञ मे (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपभूषत) शोभित और प्रेरित करो (वृत्रहन्) हे पाप-नाशक ! (परमज्याः) युद्धों में शत्रुओंका वध करनेके लिये जिसके पास अविनाशी प्रत्यञ्चा है (ऋचीषम) हे स्तुतियोंसे अभिमुख करनेयोग्य देव (सवनानि) प्रातःसवन आदि तीन (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपभूषत) अलंकृत करो ॥ ७ ॥

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा
१ २
गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। वसिष्ठ ऋषिः। हे इन्द्र! अवमम् अधमं त्रपु सीसादिकं वसु धनम्। यद्वा। भौमं वसु अवमं तवेत् तवैव। त्वं त्वमेव मध्यमं वसु रजतहिरण्यादिकम् आन्तरिक्षं वा पुष्यसि। विश्वस्य सर्वस्य परमस्योत्तमस्यापि रत्नादेर्दिव्यस्य वा वसुनो राजसि ईशिषे सत्रा सत्यमेव। अपिच। त्वा त्वां, गोषु निमित्तेषु न किर्वृण्वते केऽपि न वारयन्ति ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (अवमम्) भूमिकी नीची श्रेणीका (वसु) धन (तवेत्) तेरा ही है (त्वम्) तुम (मध्यमम्) चाँदी सोना आदि मध्यम धनको (पुष्यसि) पुष्ट करते हो (विश्वस्य) सम्पूर्ण (परमस्य) रत्न आदि श्रेष्ठ धनके (सत्रा) सत्य ही (राजसि) राजा हो (त्वाम्) तुम्हें (गोषु) गौ आदि धन देनेमें (नकिर्वृण्वते) कोई भी वारण नहीं करसकते ॥ ८ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ९

अथ नवमी। मेधातिथिमेध्यातिथिश्च ऋषिः। हे इन्द्र! क्व कुत्र देशे इयथ गतवानसि पुरा?क्वेत् कुत्र वा असि भवसि इदानीं वर्त्तसे पुरुत्राचिद्धि बहुषु हि ते त्वदीयं मनः सञ्चरति। हे युध्म युद्धकुशल!। खजकृत् युद्धस्य कर्त्तः! हे पुरन्दर! असुराणां पुरां दारयितः! हे इन्द्र! अलर्षि आगच्छ। गायत्रा गानकुशला अस्मदीयाः स्तोतारः प्रगासिषुः प्रगायन्ति स्तुवन्ति। अलर्षीत्येतत् दाधर्त्यादौ निपात्यते ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र पहिले (क्व) कहां (इयथ) गए थे (क्वेत् असि) और इस समय कहां हो (पुरुत्राचित् हि) बहुतोंमें (ते) तुम्हारा (मनः) मन जाता है (युध्म) हे युद्धकुशल (खजकृत्) हे युद्ध करने वाले (पुरन्दर) हे असुरोंके नाशक (अलर्षि) आइये (गायत्रा) गानेमें कुशल हमारे स्तोता (प्रगासिषुः) स्तुति आदिको गाते हैं ॥९॥

३ १२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥

अथ दशमी । कलिर्ऋषिः । वयं यजमानाः एनं वज्रिणं वज्रयुक्तमिन्द्रं इदा इदानीम् । ह्यः श्वः अतीतेऽह्नि । इह अस्माहगेयो अपीपेम आप्याययाम सोमेन । तस्मा उ तस्मादेव अद्य अत्र सवने सुतम् अभिषुतं सोमं भर हर हे अध्वर्यो ! । नूनम् इदानीं श्रुते सति आभूषत अलङ्कुरुत ॥ १० ॥

(वयम्) हम यजमान (एनम्) इस वज्रधारी इन्द्रको (इदा) इस समय (ह्यः) कलके बीतेहुए दिनमें (इह) इन दिनोंमें (अपीपेम) सोमसे तृप्त कर चुके हैं (तस्मात् उ) तिस कारणसे ही (अद्य) आजके (सवने) सवनमें (सुतम्) सम्पादन कियेहुए सोमको (भर) धारण करो (नूनम्) इस समय (श्रुते) स्तुतिको सुनने पर (आभूषत) शोभायमान करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सैषा प्रथमा । पुरुहन्मा ऋषिः । यः इन्द्रः चर्षणीनां मनुष्याणां राजा स्वामी रथैर्याता गन्ता । च अध्रिगुः अधृतगमनोऽन्यैः । विश्वासां सर्वासां पृतनानां सेनानां तरुता तारकः । यश्च ज्येष्ठः गुणैर्गरीयान् । यः च वृत्रहा वृत्रं हतवान् । तं ज्येष्ठं सर्वैरतिशयेन प्रशस्यम् अधिकं वृद्धं वा महाभागमिन्द्रं गृणे स्तौमि ॥१॥

(यः) जो इन्द्र (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) स्वामी है (रथेभिः) रथोंसे (याता) यात्रा करता है (अध्रिगुः) जिसकी समान कोई गमन नहीं करसकता (विश्वासाम्) सकल (पृतनानाम्) सेनाओंका (तरुता) पार लगाने वाला है, (यः) जो (वृत्रहा) पापका नाशक है उस (ज्येष्ठम्) सबके बड़े महाभाग इंद्रकी (गृणे) स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

१२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ १२
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन्
३ २उ ३ १ २ ३१२३ २ऊ ३ १ २र
छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥

अथ द्वितीया । भर्गऋषिः । हे इन्द्र ! यतः हिंसकात् भयामहे वयं ततः नः अस्मभ्यम् अभयं कृधि कुरु । हे मघवन् ! शग्धि शक्तो भवसि नः अस्मभ्यमभयं कर्त्तुम् । तव ऊतये रक्षणाय विजहि द्विषः अस्मद्वेष्टॄन् । मृधः अस्मद्धिंसकान् वि जहि ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! हम (यतः) जिस हिंसकसे (भयामहे) डरते हैं (ततः) तिससे (नः) हमें (अभयम्) अभय (कृधि) करो (मघवन्) हे इन्द्र ! (शग्धि) हमें अभय देनेकी शक्ति रखते हो (तव) तुम्हारी (ऊतये) रक्षाके लिये (द्विषः) हमारे शत्रुओंको (विजहि) नष्ट करो (मृधः) हमारे हिंसकोंको (वि) नष्ट करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाꣳसत्रꣳ सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाꣳसखा ३

अथ तृतीया । इरिमिठिर्ऋषिः । हे वास्तोष्पते ! गृहपते ! स्थूणा गृहाधारभूतस्तम्भः ध्रुवा स्थिरा भवतु । सोम्यानां सोमार्हाणां सोमसम्पादिनां वास्माकम् अंसत्रम् अंसत्राणम् अंसोपलक्षितस्य कृत्स्नस्य शरीरस्य त्रायकं बलं भवतु । अपिच, द्रप्सः द्रवणशीलः सोमः तद्वान् अर्श आदित्वाच्च्प्रत्ययः । शश्वतीनां बह्वीनां पुराम् असुरपुरीणां भेत्ता विदारयिता एवम्भूतः मुनीनाम् ऋषीणामस्माकं सखा मित्रभूतो भवतु ॥ ३ ॥

(वास्तोष्पते) हे गृहपते ! (स्थूणा) घरके आधारका खंभा (ध्रुवा) स्थिर हो (सोम्यानाम्) सोमका सम्पादन करनेवाले हमको (अंसत्रम्) कंधे आदि शरीरकी रक्षा करनेवाला बल प्राप्त हो (द्रप्सः) सोम पीनेवाला (शश्वतीनाम्) बहुतसी (पुराम्) असुरोंकी नगरियोंका (भेत्ता) विदारण करनेवाला (इंद्रः) इन्द्र (मुनीनाम्) हम ऋषियोंका (सखा) मित्ररूप हो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २
बण्महाꣳ असि सूर्य्य बडादित्य महाꣳ असि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मन्हा देव महाँ असि ४

अथ चतुर्थी। जमदग्निर्ऋषिः। अत्र शौनकः, बएमहामिति दृष्ट्वा-कमुपतिष्ठेदृचौ जपन्। वदन्नप्यमृतां वाणीं नानृतेन स लिप्यते इति। हे सूर्य्य ! प्रेरकेन्द्र ! त्वं महान् तेजसाधिकः असि। बट् सत्यम्। नैतन्मिथ्येत्यर्थः। हे आदित्य ! अदितेः पुत्र ! त्वं महान् बलेनाप्याधिकः असि बट् ! सत्यमेव। महो महतः सतो भवतः ते तव महिमा महत्वं पनिष्टम पनस्यते स्तोतृभिः स्तूयते। हे देव ! द्योतनादिगुणयुक्त ! सूर्य्य ! त्वं मन्हा महत्वेन वीर्य्येणाप्याधिकः असि भवसि न संशय इत्यर्थः। पनिष्टम पनस्यते इति मन्हा अद्धा इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(सूर्य) हे प्रेरक इन्द्र ! तुम (महान्) तेज करके अधिक (असि) हो (बट्) यह बात सत्य है (आदित्य) हे अदितिके पुत्र ! तुम (महान्) बलसे अधिक (असि) हो (बट्) यह बात सत्य ही है (महः) महान् (सतः) होनेवाले (ते) तुम्हारी (महिमा) महिमा (पनिष्टम) स्तोताओंसे स्तुतिकी जाती है (देव) हे सूर्यदेव (मह्ना) वीर्यसे भी (महान्) बडे (असि) हो ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३   ३   १ २   ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा।
३   २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५

अथ पञ्चमी। देवातिथिर्ऋषिः। हे इन्द्र ! ते तव सखा मित्रभूतः पुरुषः अश्वादिगुणविशिष्ट एव भवति इच्छब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते अश्वी इत्,बहुभिरश्वैरुपेत एव भवति न कदाचिदश्वैर्वियुज्यते।रथी रथवान् एव स भवति। सुरूपः शोभनरूपः शोभनावयव एव स भवति। गोमानित् बह्वीभिर्गोभिर्युक्त एव स भवति न कदाचिदेताभिर्वियुज्यत इत्यर्थः। अपि च, श्वात्रभाजा श्वात्रमिति धननाम आश्वलनीयं शीघ्रं प्राप्तव्यं शोभनं धनं सम्भजते ईदृग्धनसंयुक्तेन वयसा अन्ननामैतत्। अन्नेन स सदा सर्वदा सचते समवैति सङ्गच्छते। अत एव चन्द्रैः सर्वेषामाह्लादकैः स्तोत्रैर्युक्तः सन् सभां जनसंसदम् उपयाति उपगच्छति ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) जब (ते) तुम्हारा (सखा) मित्ररूप पुरुष होजाता है तब (इत्) अवश्य ही (अश्वी) घोडोंवाला (रथी) रथोंवाला (सुरूपः) सुन्दर रूपवाला (गोमान्) बहुतसी गौओंवाली होता है और (श्वात्रभाजा) शीघ्र प्राप्त होनेवाले श्रेष्ठ धनसहित

(वयसा) अन्न करके (सदा) सर्वदा (सचते) युक्त होता है अर्थात् शीघ्र ही धन और अन्न पाता है तदनन्तर (चन्द्रैः) सबको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्रोंसे युक्त होकर (सभाम्) जातिकी सभा आदिमें (उपयाति) जाता है ॥ ५ ॥

१ २र ३१ ३१ २र३२ १ २

यद्याव इन्द्र ते शतꣳ शतं भूमीरुत स्युः । न त्वा

३ २३ २ ३ २३२ ३१२३१२

वज्रिन्तसहस्रꣳ सूर्य्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

अथ षष्ठी । पुरुहन्मा ऋषिः । हे इन्द्र ! ते तव प्रति मानार्थं यद् यदि द्यावः द्युलोकाः शतं शतसंख्याकाः स्युः तथापि नाऽश्नुवन्ति । उत अपि च भूमी भूम्यः ते तव मूर्त्तिप्रतिबिम्बाय शतं स्युः तथापि नाऽश्नुवन्ति । हे वज्रिन् ! त्वा त्वां सहस्रम् अगणिता अपि सूर्य्याः भवन्ति न प्रकाशयन्तीत्यर्थः "न तत्र सूर्य्यो भातीति श्रुतेः" किं बहुना जातम् पूर्वमुत्पन्नं किंचिदपि न अनु नाश्नुते । तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ नाश्नुवाते त्वं सर्वेभ्योऽतिरिच्यत इत्यर्थः "ज्यायान् पृथिव्याः ज्यायानंतरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" इति श्रुतेः॥६॥

(इंद्र) हे इंद्र (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सैकड़ों (स्युः) हों तो भी (त्वा) तुम्हें (न) नहीं (अनु अष्ट) व्याप-सकते अर्थात् आपकी इयत्ता नहीं करसकते (उत) और (भूमी) भूमी (शतम्) सौ हों तो भी आपकी मूर्त्तिका प्रतिबिम्ब बनानेमें पर्याप्त नहीं होसकतीं (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (सहस्रम्) सहस्रों (सूर्य्याः) सूर्य (त्वा) आपको (न) प्रकाशित नहीं करसकते अर्थात् आपकी प्रभाके सामने सहस्रों सूर्योंकी प्रभा भी दबजाती है (जातम्) उत्पन्न हुए पदार्थोंमेंसे कोई पदार्थ भी आपको नहीं व्याप सकता (रोदसी) द्यावापृथिवी आपको नहीं व्यापसकते, क्योंकि—तुम सबसे ही बड़े हो ॥ ६ ॥

१ २ ३ २उ ३ २३क २र ३२३ १ २

यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

१ २ ३१ २ ३ २ ३१ २ ३१२

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥

अथ सप्तमी । देवातिथिर्ऋषिः । इंद्र ! यद् यदि प्राक् प्राच्यां दिशि वर्त्तमानैः सतःऽयन्तादि कराग्राहाहिनस्य असलातेरन्वेलंगिति लकु ।

यदि वा अपाक् प्रतीच्यां दिशि वर्त्तमानैः यदि वा उदक् उदीच्यां दिशि वर्त्तमानैः। यद्वा न्यक् नीच्यां दिशि अधस्ताद्वर्त्तमानैः न्यधी-च्चेति नेः प्रकृतिस्वरत्वम्। उदात्तस्वरितयोर्यण इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम्। एवंभूतैः नृभिः स्तोतृभिस्त्वं हूयसे स्वस्वकार्य्यायाहू-यसे हे सिम श्रेष्ठेन्द्र! सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षत इति वाजसनेय-कम्। यद्यप्येवं बहुभिराहूयसे तथापि आनवे अनुर्नाम राजा तस्य पुत्रे राजर्षौ पुरु बहुलं नृषूतः नृभिस्तदीयैः स्तोतृभिः प्रेरितः असि भवसि। राज्ञे हितकरणे त्वां स्तोतारः प्रेरयन्तीत्यर्थः षू प्रेरणे। अस्मात्कर्मणि निष्ठा। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। अपि च हे प्रशर्द्ध प्रकर्षेण शर्द्धयितरभिभवितरिन्द्र तुर्वशे एतत्संज्ञे च राजनि नृषूतः नृभिः प्रेरितो भवसि॥ ७॥

(इन्द्र) हे इंद्र (यत्) यदि (प्राक्) पूर्व दिशामें वर्त्तमान (वा) या (अपाक्) पश्चिम दिशामें वर्त्तमान (उदक्) उत्तर दिशामें वर्त्त-मान (न्यक्) नीचे वर्त्तमान (नृभिः) स्तुति करनेवाले मनुष्यों करके (हूयसे) अपने २ कार्यके लिये आह्वान कियेजाते हो (सिम) हे श्रेष्ठ इन्द्र! तो भी (आनवे) आनवके विषयमें (पुरु) बहुत (नृषूतः) उन के स्तुति करनेवालोंसे प्रेरणा कियेहुए (असि) होते हो अर्थात् स्तोता आपका राजाको हित करनेके निमित्त प्रेरणा करते हैं और (प्रशर्ध) हे अधिकतासे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इंद्र (तुर्वशे) तुर्वशके विषयमें भी स्तोताओंसे आह्वान कियेजाते हो॥७॥

१ २र ३ १ २र ३ १
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
ते मघवन् पार्य्ये दिवि वाजी वाजꣳसिषासति॥८॥

अथ अष्टमी। वशिष्ठ ऋषिः। हे वसो! वासक! व्यापक! वा, हे इंद्र! तं प्रसिद्धं त्वा त्वां कः मर्त्यः आदधर्षति आधर्षयेत्। हे मघ-वन् ते त्वदर्थं यः श्रद्धा श्रद्धया युक्तः सन् वाजी हविष्मान् यज-मानो भवेत्। पार्ये दिवि सौत्येऽहनि सः वाजं हविर्लक्षणमन्नं सिषा-सति दातुमिच्छति॥ ८॥

(वसो इन्द्र) हे व्यापक इन्द्र! (तम्) तिन प्रसिद्ध (त्वा) तुम्हें (कः) कौन मनुष्य (आदधर्षति) धमकी देसका है? (मघवन्) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे अर्थ जो (श्रद्धा) श्रद्धायुक्त हुआ यजमान

(वाजी) हविवाला होता है वह (पार्ये दिवि) सोम सम्पादनके दिन (वाजम्) हविरूप अन्नको (सिषासति) देना चाहता है ॥८॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वा शिरो

३ २ ३ १२३१२३ २ ३१ २

जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाज ऋषिः । हे इन्द्राग्नी ! अपात् पादरहिता इयम् उषाः पद्वतीभ्यः पादयुक्ताभ्यः सुप्ताभ्यः प्रजाभ्यः पूर्वा प्रथमभाविनी सती आगाद् आगच्छति । तथा प्राणिनां शिरो हित्वा त्यक्त्वा स्वयमशिरस्कापि जिह्वया प्राणिस्थया तदीयेन वागिन्द्रियेण रारपत् भृशं शब्दं कुर्वती चरत् एवं चरन्ती उषाः त्रिंशत्पदानि अवयवभूतान् त्रिंशन्मुहूर्त्तान् न्यक्रमीत् एकेन दिवसेनातिक्रामति एतच्च युवयोः कर्मेति स्तुतिः, हित्वा शिरो हित्वी शिरो इति पाठौ । रारपत् वावदद् इति च ॥ ९ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओं ! (अपात्) चरण रहित (इयम्) यह उषा (पद्वतीभ्यः) चरणवाली (सुप्ताभ्यः) प्रजाओंसे (पूर्वा) प्रथम (आगात्) आती है, तथा प्राणियोंके (शिरः) शिरको (हित्वा) त्यागकर (जिह्वया) प्राणियोंमें स्थित उनकी वाक् इन्द्रियके द्वारा (रारपत्) अत्यन्त शब्द करती हुई (चरत्) ऐसा वर्त्ताव करती हुई उषा (त्रिंशत्) तीस मुहूर्त्तोंको (न्यक्रमीत्) एक दिनमें ही लांघलेती है यह सब वीरता तुम्हारी ही है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २

आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः

अथ दशमी । वालखिल्या ऋषयः । हे इन्द्र ! नेदीयः अन्तिकतममस्माकं यज्ञस्थानम् एदिहि आगच्छैव । काभिः साकमिति ? उच्यते मितमेधाभिः परिमितप्रज्ञाभिः ऊतिभिः रक्षाभिः । यद्वा । निर्मितयज्ञाभिर्मरुद्भिः सह । हे शन्तम ! सुखतम ! शन्तमाभिः सुखतमाभिः अभिष्टिभिः प्राप्तिभिः अभिमताभिर्वा आगच्छेति शेषः उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः तथा हे स्वापे ! अस्माकं बन्धुभूत ! सुखस्य आपयितर्वा । स्वापिभिः बन्धुभूताभिः सुखस्य प्रापयित्रीभिः अभिष्टिभिः आगच्छेति शेषः ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (नेदीयः) बहुत समीपकी हमारी यज्ञशालामें (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धियोंके और (ऊतिभिः) रक्षाओंके साथ (एदिहि) अवश्य आओ (शन्तम) हे परमसुखरूप (शन्तमाभिः) परमसुखरूप (अभिष्टिभिः) प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ (स्वापे) हे बन्धो (स्वापिभिः) सुखदायक प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्र ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् । आशु
२र ३ १ २ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २
जेतारꣳ हेतारꣳ रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१॥

अथ षष्ठे खण्डे—सैषा प्रथमा । नृमेध ऋषिः । हे अस्मदीया जनाः वो यूयम् अजरं जरारहितं प्रहेतारं शत्रूणां प्रेरकम् अप्रहितं केनाप्यप्रेषितम् आशुं वेगवन्तं जेतारं शत्रूणाम् । हेतारं गन्तारम् । रथीतमं रथिनां श्रेष्ठम् अतूर्तं केनाप्यहिंसितम् । तुग्रियावृधं उदकस्य वर्धयितारमिन्द्रम् ऊती ऊत्यै रक्षणाय इतः कुरुत पुरस्कुरुतेति यावत् ॥१॥

हे हमारे पुरुषों ! (वः) तुम (अजरम्) जरारहित (प्रहेतारम्) शत्रुओंके प्रेरक (अप्रहितम्) किसीके भी न भेजेहुए (आशुम्) वेगवान् (जेतारम्) शत्रुओंको जीतनेवाले (हेतारम्) यज्ञभवनमें पहुँचनेवाले (रथीतमम्) रथियोंमें श्रेष्ठ (अतूर्तम्) जिनको कोई नहीं मारसकता ऐसे (तुग्रियावृधम्) जलको बढ़ानेवाले इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (इतः कुरुत) आगे करो ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि २

अथ द्वितीया । वसिष्ठ ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वां वाघतश्चन यजमाना अपि अस्मतु अस्मत्तः आरे दूरे मो निरीरमन् नितरां मा रमयन्तु । अतस्त्वम् आरात्ताद्वा दूरेऽपि वर्त्तमानः नः अस्मदीयं सधमादं यज्ञम् सु सुष्ठु आगहि आगच्छ । इह वा अत्रापि वा सन् विद्यमानः उपश्रुधि अस्मदीयं स्तोत्रम् उपशृणु । आरात्ताद्वा आरात्ताच्चित् इति च पाठौ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (वाघतश्चन) यजमान भी (अस्मत्) हम

से (आरे) दूर (मो निरीरमन्) रमण न करावें, इस कारण तुम (आरात्ताद्वा) दूर रहकर भी (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञको (सु) भली प्रकार (आगहि) प्राप्त हूजिये (वा) वा (इह) यहां (सन्) वर्त्तमान् होते हुए (उपश्रुधि) हमारी स्तुतिको सुनिये ॥ २ ॥

२ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २

सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ३

अथ तृतीया । वशिष्ठ ऋषिः । हे मदीयाः पुरुषाः ! वज्रिणे वज्रवते सोमपाव्ने सोमस्य पात्रे इन्द्राय सोमं सुनोत अभिषुणुत । अवसे इन्द्रन्तर्पयितुं पक्तीः पक्तव्यान् पुरोडाशादीन् पचत च । कृणुध्वमित् इन्द्रप्रियकराणि कर्माणि च कुरुतैव । इन्द्रो हि मयः सुखं पृणन्नित् यजमानाय प्रयच्छन्नेव पृणते हवींषीति शेषः ॥ ३ ॥

हे मेरे पुरुषों ! (वज्रिणे) वज्रधारी (सोमपाव्ने) सोमपान करने वाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सोमम्) सोमको (सुनोत) सम्पादन करो (अवसे) इन्द्रको तृप्त करनेके निमित्त (पक्तीः) पुराडाशोंको (पचता) पकाओ (कृणुध्वमित्) इन्द्रको प्रसन्न करनेवाले कर्म करो क्योंकि इन्द्र (मयः) सुख (पृणन्नित्)यजमानको देता हुआ ही (पृणते) हवियोंको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तꣳ हूमहे वयम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ४

अथ चतुर्थी । शंयुः ऋषिः । यः इन्द्रः सत्राहा महतां शत्रूणां हंता विचर्षणिः विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा तमिन्द्रं वयं हूमहे स्तुतिपदैराह्वयामः उत्तरार्द्धः प्रत्यक्षकृतः हे सहस्रमन्यो ! बहुविधं शत्रुनाशार्थे सहस्रसङ्ख्यकक्रोपयुक्त ! यद्वा । मन्युः । क्रतुः, सहस्रसङ्ख्याकैः क्रतुभिः पूज्येन्द्र ! हे तुविनृम्ण ! बहुधन ! सत्पते ! सतां पालयितरिन्द्र ! समत्सु सङ्ग्रामेषु नः अस्माकं वृधे वर्द्धनाय भव । सहस्रमन्यो सहस्रमुष्क इति च पाठौ ॥ ४ ॥

जो इन्द्र (सत्राहा) शत्रुओंका वध करता है (विचर्षणिः) विशेष रूपसे सबको देखनेवाला है, उस इन्द्रको हम (हूमहे) स्तुति के

पदोंसे आह्वान करते हैं (सहस्रमन्यो) हे शत्रुओंका नाश करने को सहस्रों प्रकार के कोपसे युक्त (तुविनृम्ण) हे बहुधन (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (समत्सु) सग्रामों में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के अर्थ (भव) हूजिये ॥ ४ ॥

१२ ३ २ ३ १ २ १
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् । मा
२ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
वाꣳ रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ५

अथ पञ्चमी । परुच्छेप ऋषिः । अश्विद्वयदेवता । हे शचीवसू ! शचीति कर्मनाम अस्मदनुष्ठितज्योतिष्टोमादिकर्मधनौ ! युवां शचीभिः अस्मदीयैः कर्मभिर्यागादिभिर्निमित्तभूतैः दिवानक्तम् अहनि रात्रौ च दिशस्यतं विसृजतम् अभिमतं दत्तमित्यर्थः । दाशृ दाने इत्यस्येदं छान्दसं रूपम् । यद्वा दशस्यतिर्दानार्थः कण्ड्वादिषु द्रष्टव्यः । वां युवयोः रातिः दानं कदाचन सर्वदा यागकालेऽपि अयागकालेऽपि मोपदसत् मोपक्षीणां भूत् दसु उपक्षये । लुङि पुषादिद्युतादीति च्लेरङ्नाम केवलं युष्मदीयम् अपि तु अस्मद् अस्माकमपि रातिर्दानं हविरादिप्रदानं सर्वविषयं दानं वा, अर्थिभ्यः कदाचन सर्वावस्थायामपि मोपदसत् उपक्षीणां माभूत् सर्वदा वर्त्तताम् । अहमपि सर्वदा युष्मानुद्दिश्य ददाम । युवामपि मदभिमतं सर्वदा दत्तमित्यर्थः । दिशस्यतं दशस्यतम् इति च पाठौ ॥ ५ ॥

(शचीवसू) हे हमारे किये हुए ज्योतिष्टोम आदि कर्मको ही धन मानने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम (शचीभिः) हमारे यज्ञरूप कर्मोंसे (दिवानक्तम्) रात दिन (दिशस्यतम्) अभिमत फल दो (वाम्) तुम्हारा (रातिः) दान (कदाचन) कभी भी (मोपदसत्) उपक्षीण न हो और (अस्मत्) हमारा भी (रातिः) दान (कदाचन) कभी उपक्षीण न हो, अर्थात् आप सदा हमें इच्छित पदार्थ देते रहें और हम सदा आप के निमित्त यज्ञादि करते रहें ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥

अथ षष्ठी । वामदेव ऋषिः । यदा कदा च यस्मिन् काले मीढुषे

सेक्के हविःप्रदश्च यजमानाय तस्य यागार्थं मर्त्यो मरणधर्मा स्तोता स्तुतिकर्त्तोद्गाता जरेत स्तूयात् । आदित् अनन्तरमेव तस्मिन्काले इत्यर्थः । वरुणं पापस्य वारकं विव्रतानां विविधानां कर्मणां धर्त्तारं धारकं वरुणनामानं देवं विपा विशेषेण रक्षिकया गिरा स्तुत्या वन्देत स्तूयात् । यदा यजमानार्थमुद्गाता स्तौति तदा वरुणमेव स्तौतीत्यर्थः अथवा मीढुषे अभिमतवर्षिणे वरुणाय तत् प्रीतये यदा कदा च यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले स्तुत्यर्हे मर्त्यः स्तोतोद्गाता जरेत स्तूयात् । आदिदनन्तरमेव यजमानोऽपि उक्तलक्षणं स्वयमपि विपा गिरा वन्देत नमस्कुर्य्यात् स्तूयाद्वा ॥ ६ ॥

(यदा कदा च) जिस किसी समय भी (मीढुषे) हवि देनेवाले यजमानके यज्ञके लिये (मर्त्यः) मनुष्य (स्तोता) स्तुति करने वाला (जरेत) स्तुति करे (आदित्) तदनन्तर ही (वरुणम्) पापों को दूर करनेवाले (विव्रतानाम्) नाना प्रकारके कर्मों के (धर्त्तारम्) धारण करनेवाले वरुण नामक देवताको (वपा) विशेष रक्षा करने वाली (गिरा) स्तुतिसे (वन्देत) स्तुति करे ॥ ६ ॥

२ १   २र ३   २ ३   १ २   १

पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे । यः

२र ३   २ ३ १   २ ३ २ ३   १ २   ३ १   २ ३ १ २

संमिश्लो हर्य्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥

अथ सप्तमी । मेध्यातिथिर्ऋषिः । इन्द्रायेति चतुर्थ्येकवचनमिदं सम्बुद्ध्येकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् । हे इन्द्र ! मेध्यातिथे ! मेधो यज्ञं तस्मिन् भवो मेध्यः मेध्यश्चासौ अतिथिश्चेति मेध्यातिथिः, तस्य सम्बोधनं हे मेध्यातिथे ! यज्ञे भव अतिथिभूत इन्द्र ! अन्धसः पीतस्य सोमस्य मदे सति त्वमस्मदीयाः प्रजाः पाहि रक्ष । यः इन्द्रः हर्य्योः अश्वयोः संमिश्लः स्वरथे संमिश्रयिता यश्च इन्द्रो वज्री हिरण्ययः हितरमणीयः यस्य रथो हिरण्ययो हिरण्मयः । हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः इति छन्दोगाः । हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(इंद्राय) हे इंद्र ! (मेध्यातिथे) हे यज्ञमें अतिथि बनने वाले (अन्धसः) पिये हुए सोमका (मदे) आनन्द आनेपर तुम हमारी (गाः) गौओंको (पाहि) रक्षा करो (यः) जो (इन्द्रः) इंद्र(हर्योः) हरि नामक घोड़ोंको (संमिश्लः) रथमें जोतता है (वज्री) वज्रधारी है (हिरण्ययः) हितकारी और रमणीय है (हिरण्ययः) सुवर्ण के रथवाला है ॥ ७ ॥

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ २   २र   ३ १
उभयꣳ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्रा-
२   ३२ ३   १ २   ३ १   २र ३ १ २
च्या मघवान्तसोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥

अथ अष्टमी । भर्गऋषिः । उभयं स्तोत्रात्मकं शस्त्रात्मकं चोभयविधम् इदं वचो अर्वाग् अस्मदभिमुखं इंद्रः शृणवत् शृणोतु । श्रुत्वा च सत्राच्या अस्माकं यज्ञं पूजयन्त्या धिया युक्तः सन् मघवान् धनवानिन्द्रः शविष्ठः अतिशयेन बलवान् सोमपीतये सोमपानाय आगमत् आगच्छतु । मघवान् मघवा इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(उभयम्) स्तोत्र और शस्त्र दोनों प्रकारका (नः) हमारा (इदं वचः) यह वचन (अर्वाक्) हमारे अभिमुख होकर (इन्द्रः) इंद्र (शृणवत्) सुनै (च) और सुनकर (सत्राच्या) हमारे यज्ञका पूजन करनेवाली (धिया) बुद्धिसे युक्त होकर (मघ ान्) धनवाला (शविष्ठः) अत्यन्त बलवान् इन्द्र (सोमपीतये) सो पान करनेको (आगमत्) आवै ॥ ८ ॥

३ २ ३ १ २   ३ १२ ३ १ २
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
२ ३१२ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥

अथ नवमी । अस्याः परस्याश्च मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । हे अद्रिवः वज्रवन्निन्द्र ! च नेति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः महे च महतेऽपि शुल्काय मूल्याय नाहं त्वां परादीयसे न विक्रीणामि ददातेरुत्तमपुरुषस्य कर्त्तर्येव व्यत्ययेन रूपम् । परा शुक्लाय देयाम् इति बह्वृचा आमनन्ति । हे वज्रिवः ! वज्रहस्तेन्द्र ! सहस्राय सहस्रसंख्याकाय धनाय च न परादीयसे अयुताय दशसहस्राय शुक्लाय न परादीयसे । शतामघ ! बहुधनेन्द्र ! शताय बहुनामैतत् अपरिमिताय धनाय च न परादीयसे न विक्रीणामि । उक्तसंख्याकाद्धनादपि त्वां न परित्यजामि । किन्तु बहुभिर्हविर्भिः परिचरामीत्यर्थः ॥ ९ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रवाले इन्द्र ! (महे च) महान् भी (शुक्लाय) मूल्यके लिये मैं तुम्हें (न) नहीं (परादीयसे) बेचता हूँ (वज्रिवः) हे वज्रहस्त (सहस्राय) सहस्रके लिये (न) नहीं (अयुताय) दश

सहस्रके लिये (न) नहीं बेचता हूँ (शतामघ) हे बहुत धनवाले (शताय) अपरिमित धनके लिये भी नहीं बेचता अर्थात् चाहे जितना धन मिलजाय परन्तु मैं हाथियों के द्वारा आपका पूजन त्यागना नहीं चाहता ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
वस्याँ३ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माता
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

अथ दशमी । हे इन्द्र ! त्वं मे मदीयात् पितुः जनकादपि वस्यान् वसीयान् वसुमत्तरोऽसि । उत अपि च अभुञ्जतः अपालयतो मम भ्रातुः अपि त्वं वसीयानधिकोऽसि । हे वसो ! वासकेन्द्र ! मे मदीया माता च त्वं च समा समौ समानौ सन्तौ पुमान् स्त्रियेति पुंसः शेषः छदयथः अर्चनीयं मां पूजितं कुरुथः किमर्थम ? वसुत्वनाय व्यापनाय राधसे धनाय च उभयोर्लाभायेत्यर्थः ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (मे) मेरे (पितुः) पितासे भी (वस्यान्) अधिक धनवान् हो (उत) और (अभुञ्जतः) पालन न करते हुए (भ्रातुः) मेरे भ्रातासे अधिक धनवान् हो, (वसो) हे व्यापक (म) मेरी (माता) माता (च) और तुम भी (समा) समान होकर (वसुत्वनाय) धनवान् होनेके निमित्त (राधसे) अन्नके लिये (छदयथः) मुझे प्रतिष्ठित करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

---

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः । ताँ३
२र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

अथ सप्तमे खण्डे—सैषा प्रथमा । वसिष्ठ ऋषिः । हे वज्रहस्त ! दध्याशिरः दधिमिश्रणाः इमे सोमासः सोमाः इन्द्राय तुभ्यं सुन्विरे सुता बभूवुः । तान् सोमान् मदाय मदार्थं पीतये पानाय ओको यज्ञ-सदनम् आ अभि हरिभ्याम् अश्वाभ्यां आयाहि आगच्छ ॥ १ ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी (दध्याशिरः) दहीसे मिलेहुए (इमे) यह (सोमासः) सोम (इन्द्राय) तुम्हारे निमित्त (सुन्विरे) संपादन किये गए थे (तान्) उन सोमोंको (मदाय) आनन्दके निमित्त

(पीतये) पीनेको (ओकः) यज्ञमण्डपमें (अ) अभिमुख (हरिभ्याम) अश्वोंके द्वारा (आयाहि) आइये ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः । मधोः
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः २

अथ द्वितीया । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! ते तव मदाय मदार्थम् उक्थिनः स्तोत्रयुक्ताः इमे सोमाः चिकित्रे ज्ञायन्ते दृश्यन्ते कित ज्ञाने कर्मणि लिट् । इरयोरे इति रे इत्यादेशः किञ्च । मधोः मदकरस्य कर्मणि षष्ठी मदकरसोमं पपानः अत्यर्थं पिबन् अस्माकं गिरः स्तोत्ररूपा वाचः उपशृणु सम्यक् शृणु । गिर्वणो गीर्भिर्वननीय ! हे इन्द्र ! स्तोत्राय स्तोत्रकर्त्रे मह्यं रास्व अभीष्टं देहि ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (मदाय) हर्षके निमित्त (उक्थिनः) स्तोत्रयुक्त (इमे) यह (सोमाः) सोम (चिकित्र) दीखते हैं और (मधोः) प्रसन्नता देनेवाले सोमको (पपानः) अधिकतासे पीते हुए हमारी (गिरः) स्तोत्ररूप वाणियोंको (उपशृणु) सुनिये (गिर्वणः) हे स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (स्तोत्राय) स्तुति करने वाले मुझे (रास्व) इच्छित फल दीजिये ॥ २ ॥

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा३द्य सर्वदुघाꣳ हुवे गायत्रवेपसम् ।
१ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र धेनुꣳ सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरं कृतम् ॥३॥

अथ तृतीया । मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । एके विश्वामित्र इत्याहुः अमयेन्द्रं धेनुरूपेण वृष्टिरूपेण च निरूपयन् स्तौति । अद्य इदानीं धेनुं धेनुरूपमिन्द्रं तु ज्ञिप्रं आहुवे आह्वये । कीदृशीं धेनुम ? सबर्दुघां पयसो दोग्ध्रीं गायत्रवेपसं प्रशस्यवेगाम् । सुदुघां सुखेन दोग्धुं शक्याम् । अन्यां इतरविलक्षणाम उरुधारां बहूदकधाराम् इषम् एषणीयां वृष्टिं लिङ्गव्यत्ययः एतद्रूपेण वर्त्तमानम् । अरंकृतं अलङ्कर्त्तारं पर्याप्तकारिणं बेन्द्रं वाह्वये ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (अद्य) इस समय (सर्वदुघाम) अधिक दूध देने वाली (गायत्रवेपसम) प्रशंसनीय वेगवाली (सुदुघाम) सुख से दुहने योग्य (अन्याम) विलक्षण प्रकारकी (उरुधाराम) जिस के स्तनोंमें से अनेकों दुग्धधारा निकलती हैं ऐसी (इषम) चाहने

योग्य (धेनुम्) धेनुरूप (अरमकृतम्) शोभा देनेवाले इन्द्रको (तु) शीघ्र (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः । यच्छि-

२र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

क्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

अथ चतुर्थी । नोधा ऋषिः । हे इन्द्र ! बृहन्तो बलेन महान्तः अत एव वीडवः । यच्छिक्षसि स्तुवते मावते सर्वतो दृढा अपि अद्रयः पर्वताः त्वा त्वां न वरन्ते बलेन न निवारयन्ति । अनिवारणमेवोत्तरार्द्धेन विवृणोति—स्तुवते स्वद्धिषयं, स्तोत्रं कुर्वते मावते मत्सदृशाय मादृशाय स्तोत्रे यद् वसु धनं शिक्षसि ददासि । ते तव तदेतद्धनं नकिर्नकश्चित् आ मिनाति आभिमुख्येन हिनस्ति । मीञ् हिंसायाम् । मीनातेर्निगमे (७,३,८१) इति ह्रस्वः । मावते । युस्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्य (५,१,६१) इति मतुप् । शिक्षसि दित्ससि इति च पाठौ॥४॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (बृहन्तः) बलसे बड़े (वीडवः) बलवान् दृढ़ (अद्रयः) पर्वत भी (त्वा) तुम्हें (न) नहीं (वरन्ते) बलसे निवारण करसकते हैं (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (मावते) मुझसे पुरुष को (यत्) जो (वसु) धन (शिक्षसि) देते हो (ते) तुम्हारे (तत्) उस धनको (नकिः) कोई नहीं (आमिनाति) रोक सकता है ॥४॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

३ १ २र ३ २र ३ २ ३ १ २

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मंदानः शिप्र्यन्धसः ५

अथ पञ्चमी । मेधातिथिर्ऋषिः । सुते अभिषुते सोमे सचा ऋत्विग्भिः सह सोमं पिबन्तम् एनमिन्द्रं को वेद वेत्ति न कोऽपि वेत्तीत्यर्थः कः किम्वा वयः अन्नं दधे धारयति । योऽयम् इन्द्रः शिप्री हनुमान् अन्धसः सोमेन मन्दानः मन्दमानः ओजसा बलेन पुरो विभिनत्ति ॥५॥

(सुते) सोमरसके सम्पन्न होनेपर (सचा) ऋत्विजोंके साथ (पिबन्तम्) सोमको पीतेहुए (ईम्) इस इन्द्रको (को वेद) कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता (कत्) कितने (वयः) अन्न को (दधे) धारण करता है (यः अयम्) जो यह इन्द्र (शिप्री) वेगवाला (अन्धसः) सोमसे (मंदानः) आनन्दित होताहुआ (ओजसा) बलसे (पुरः) शत्रुओंके नगरों को (विभिनत्ति) नष्ट करता है ॥५॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
३ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्माकꣳशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ६

अथ षष्ठी । अस्याः परस्याश्च वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! यद् यस्मात् कारणात् शासः शिक्षणीयानां यज्ञविरोधिनां शिक्षकस्त्वं तस्मात् कारणात् सदसः अस्मद्यागगृहस्य परितो वर्त्तमानम् अव्रतम् अकर्माणं यागविरोधिनमित्यर्थः । च्यावय दूरं निःसारय । अपिच—हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयम् अस्माकम् अस्मदीयम् अंशुं सोमं वसव्ये वस्तव्ये निवासयोग्ये स्थाने अधि बर्हय अधिकं वर्द्धय । यज्ञगृहे यागविरोधिनो राक्षसादीन्निःसार्य्य सोमं प्रवर्द्धयेत्यर्थः ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (यत्) क्योंकि (शासः) तुम यज्ञके विघ्नकर्त्ताओंको दण्ड देते हो इसकारण (सदसः) हमारी यज्ञशाला के (परि) चारों ओर वर्त्तमान (अव्रतम्) यज्ञकर्मके विरोधीको (च्यावय) दूर निकाल दो और (मघवन्) हे धनपते ! (पुरुस्पृहम्) बहुतोंके चाहने योग्य (अस्माकम्) हमारे (अंशुम्) सोमको (वसव्ये) निवासयोग्य स्थान में (अधिबर्हय) अधिक बढ़ाओ ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ७

अथ सप्तमी । त्वष्टा एतत्संज्ञको रूपाभिमानी देवः नः अस्मदीयं वचः पातु । ब्रह्मणस्पतिः एतत्संज्ञको मन्त्राभिमानी देवः अस्मदीयं वचः पातु । किञ्च । अदितिर्नु अखण्डनीया अदीना वा एतन्नाम्नी देवमाता च पुत्रैर्भ्रातृभिः स्वकीयैः सहिता नः अस्माकं सम्बन्धि दुस्तरं कर्म विरोधिभिस्तरीतुमशक्यं त्रामणं रक्षणीयं वचः पातु ।७।

(त्वष्टा) रूपका अभिमानी त्वष्टा देवता (पर्जन्यः) मेघका अधिष्ठात्री देवता (ब्रह्मणस्पतिः) मंत्राभिमानी ब्रह्मणस्पति देवता (पुत्रैः भ्रातृभिः) अपने पुत्र और भ्राताओं सहित (अदितिः) देवमाता अदिति (नः) हमारे (दुस्तरम्) विघ्नकर्त्ताओंके कारण तरनेको अशक्य (त्रामणम्) रक्षा करने योग्य (वचः) यज्ञीय स्तुति को (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करै ॥ ७ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।

२ ३ १ २ र २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २

उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥

अथ अष्टमी । बालखिल्या ऋषयः । हे इन्द्र ! त्वं कदाचन कदाचिदपि स्तरीः हिंसको नासि । यद्वा । स्तरीर्निवृत्तप्रसवा गौः, तथाविधो न भवसि । सा यथा वत्साभावात् गृहं प्रति नागच्छति न तथा करोषीत्यर्थः । किन्तु, दाशुषे हविर्दात्रे यजमानाय सश्चसि सङ्गच्छसे अस्मान् । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! देवस्य द्योतनादिगुणकस्य तव भूयः प्रभूतं दानम् उपोपेत् पृच्यते अपर उपशब्दः पूरणः उपपृच्यत एव अस्माभिः संपृच्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! तू (कदाचन) कभी भी (स्तरः) हिंसक (न असि) नहीं है (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (सश्चसि) ऋत्विजोंको प्राप्त कराते हो (मघवन्) हे धनवन् (देवस्य) प्रकाशस्वरूप (ते) तुम्हारा (भूयः) बहुतसा (दानम्) दान (उपोपेत् पृच्यते) हमारे समीप आकर प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

३ १ २ र ३ १ २ ३ १ २

युंक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।

२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अर्वाचीनो मघवन्तसोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ।

अथ नवमी । मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा ऋषिः । हे वृत्रहन्तम ! वृत्रं हतवान् वृत्रहा अतिशयेन वृत्रं हतवान् वृत्रहन्तमः यथा पुनर्नोत्तिष्ठति तथा हतवानित्यर्थः । अनो नुट् (पा० ८, २, १६) इति तमपो नुट् । हे तादृशेन्द्र ! हरी त्वदीयावश्वौ युंक्ष्व हिरवधारणे आत्मीय रथे योजयैव । हे मघवन् ! धनवन् ! उग्रः उद्गूर्णबलस्त्वं सोमपीतये सोमस्य पानार्थं । दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् अर्वाचीनोऽस्मदभिमुखः ऋष्वेभिः ऋष्वैर्दर्शनीयैर्मरुद्भिः सार्द्धं परावतः दूरनामैतत् दूरे वर्त्तमानात् द्युलोकात् आगहि आगच्छ ॥ ९॥

(वृत्रहन्तम) हे सर्वथा पापका नाश करनेवाले इन्द्र ! (हि) निश्चय (हरी) अपने घोड़ोंको (युंक्ष्व) रथमें जोड़ो (मघवन्) हे धनवन् (उग्रः) प्रकट बलवाले तुम (अर्वाचीनः) हमारे अभिमुख (ऋष्वेभिः) दर्शनीय (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (परावतः) दूर द्युलोकसे (आगहि) आइये ॥ ९ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि १०

अथ दशमी। नृमेध ऋषिः। हे वज्रिन्! इन्द्र! यं त्वां भूर्णयो हविर्भरणशीला नरः कर्मणां नेतारो यजमानाः इदा अद्य ह्यः पूर्वेद्युश्च अपीप्यन् सोममपाययन्। हे इन्द्र! स त्वं स्तोमवाहसः षष्ठ्यर्थे प्रथमा स्तोमवाहसां स्तोत्रवाहकानामास्माकं स्तोत्रम् इह यज्ञे श्रुधि शृणु स्वसरं गृहं च। दुर्याः स्वसराणीति (नै० ३, ४, १०) गृहनामसु पाठात् उपागहि उपागच्छ॥ १०॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी! (त्वाम्) जिन तुम्हे (भूर्णयः) हवि अर्पण करनेवाले (नरः) कर्मकर्त्ता यजमानोंने (इदा) आज (ह्यः) पहिले दिन (अपीप्यन्) सोम पिलाया था (इंद्र) हे इंद्र (सः) वह तुम (स्तोमवाहसः) स्तोत्र पढ़नेवाले हमारे स्तोत्रको (इह) इस यज्ञमें (श्रुधि) सुनो (स्वसरम्) हमारे स्थानमें (आगहि) आइये॥ १०॥

तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ १ १ ३ २ ३२ १ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो
३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ १ २
मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी।१।

अथ अष्टमे खण्डे—सैषा प्रथमा। वयोर्वसिष्ठ ऋषिः। आयती आगच्छन्ती उच्छन्ती तमांसि विवासयन्ती वर्जयन्ती दिवो द्युलोकस्य सूर्यस्य वा दुहिता पुत्री एवम्भूता उषाः प्रत्यदर्शि सर्वैः प्रतिदृश्यते उ इति पूरणः सैषा मही महती। यद्वा मही महत्तमो नैशं तमोऽन्धकारं अप उ इति निपातद्वयसमुदायः। अपेतस्यार्थे अपोवृणुते अपवृणोति। कथं? चक्षुषा दर्शनेन। एवं कृत्वा सूनरी। जनानां सुष्ठु नेत्री उषाः ज्योतिः प्रकाशं कृणोति करोति। अपो मही वृणुते चक्षुषा इति छन्दोगाः। अपो महि व्ययति चक्षुषे इति बह्वृचाः॥ १॥

(आयती) आती हुई (उच्छन्ती) अन्धकारोंको दूर करतीहुई (दिवः) सूर्यकी पुत्री उषा (प्रत्यदर्शि उ) सबोंने निश्चितरूपसे देखी (चक्षुषा) दर्शनसे (मही) बड़े भारी रात्रिके अन्धकारको (उप-उ-वृणुते) दूर

करती है (सूनरी) मनुष्योंकी श्रेष्ठ नेत्ररूप उषा (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशꣳ हि गच्छथः २

अथ द्वितीया । इमाः दिविष्टयः दिवमिच्छन्त्यः प्रजाः ऋत्विजोऽपि उ इति चार्थे । हे अश्विना ! अश्विनौ ! उस्रौ ! वासकौ ! वां युवां हवन्ते आह्वयन्ति। अयमहं वासिष्ठोऽपि हे शचीवसू ! कर्मधनौ! वां युवां अवसेऽस्मद्रक्षणाय युवयोस्तर्पणाय वा अह्वे आह्वयामि। किमर्थमेवं प्रजामप्यहमपीत्यादरोक्तिरिति तत्राह । विशंविशं हि गच्छथः । हि यस्मात् सर्वाः स्तुतिकर्त्रीः प्रजाः प्रति युवां गच्छथः खलु तस्मादेवमुच्यत इति ॥ २ ॥

(इमाः) यह (दिविष्टयः) द्युलोकको चाहनेवाली प्रजाएं (उ) ऋत्विज भी (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (उस्रौ) व्यापक (वाम्) तुम्हें (हवन्ते) आह्वान करते हैं (अयम्) यह मैं भी (शचीवसू) हे कर्मको धन माननेवाले (वाम्) तुम दोनों को (अवसे) अपनी रक्षाके लिये अथवा तुम दोनोंको तृप्त करनेके लिये (अह्वे) आह्वान करता हूँ (हि) क्योंकि तुम (विशंविशम्) अपनी स्तुति करनेवाले प्रत्येक यजमानके समीप (गच्छथः) जाते हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
कु ष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः । घ्नता
२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वामश्मया क्षपमाणोꣳशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

अथ तृतीया । अश्विनौ वैवस्वतावृषी । अश्विना ! अश्विनौ ! हे देवा ! देवौ द्योतमानौ ! वां युवां कुष्ठः क्व पृथिव्यां वर्त्तमानः को मर्त्यः मरणधर्मा मनुष्यः स्तोता तपानः तापनः प्रकाशको भवति इति शेषः । न कश्चिदप्यनुष्ठादित्यर्थः । वां युवयोरर्थाय अश्मया अश्मशब्दाद्विसो यादेशः ग्रावभिरभिषवसाधनैरश्मभिः घ्नता हन्यमानेन अभिपूयमाणेन अंशुना सोमेन । यद्वा । अस्माभिरभिषुतेन घ्नता युवामभिगच्छता अंशुना सोमेन क्षपमाणः क्षीयमाणो यजमानः इत्थम् इत्थमेव भवति अत्यन्तं समृद्धो भवतीत्यर्थः । आद्वन् यथा अभिमताभरसादेभक्षणा-

वान् राजादिरिव । स यथा प्रवृद्धो दृष्टान्तविषयो भवति तद्वदयमपि भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(देवा) प्रकाशवान् (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (कुष्ठः) भूमण्डल पर निवास करनेवाला (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (धाम) तुम्हारा (तपानः) प्रकाशक होता है ? (धाम) तुम्हारे निमित्त (अश्नया) सोमरस निकालनेके पाषाणों करके (घ्नता) कूटेहुए (अंशुना) सोमसे (च्यवमानः) थकाहुआ यजमान (आढ्यन् यथा) यथेच्छ अन्न रसादि खानेवाले राजाकी समान (इत्थम्-उ) इस प्रकार ही ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु । तमश्विना

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तꣳ रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रस्कण्व ऋषिः । हे अश्विना ! अश्विनौ ! वां युवयोः दिविष्टिषु दिव एषणेषु यज्ञेषु अयं पुरोवर्त्ती सोमः सुतो अभिषुतः कीदृशः ? मधुमत्तमः । अतिशयेन माधुर्यवान् । तिरो अह्न्यं तिरोभूते पूर्वस्मिन्दिनेऽभिषुतं तं सोमं पिबतं । दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि धत्तं प्रयच्छतम् । दिविष्टिषु ऋतावृधे इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हारे (दिविष्टिषु) यज्ञोंमें (मधुमत्तमः) अत्यन्तमधुर (अयम्) यह सोम (सुतः) सम्पादन कियागया है (तिरो अह्न्यम्) पहिले दिन सम्पादन किये हुए सोमको (पिबतम्) पियो (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानको (रत्नानि) श्रेष्ठ धन (धत्तम्) दो ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ५

अथ पञ्चमी । मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सवनेषु यज्ञेषु सोमस्य गल्दया गालनेन आस्रावणेन । ज्या जयशीलया स्तुत्या अत एव गिरेति बह्वृचाः पठन्ति तया युक्तः अहं सदा सर्वदा याचन् याचमानः सन् आचुक्रुधं मा चुक्रुधं क्रुधमपनयामि

आ इति प्रतिषेधार्थः निपातानामनेकार्थत्वात् । अतएव बह्वृचाः मात्वे-त्यामनन्ति बहुशो याच्यमाने त्वयि क्रोधो जायते तं सोमगालनेन स्तुत्या चापनयामीत्यर्थः । कीदृशं त्वां भूर्णिं भर्त्तारं मृगं न सिंहमिव भीमं स्वामिनः इन्द्रस्य याचने लौकिकं न्यायं दर्शयति लोके को वा पुरुषः ईशानम् ईश्वरं स्वामिनं न याचिषत् न याचेत सर्व एव हि याचते । अतोऽहमपि त्वां स्वामिनं याचे इति भावः ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (भूर्णिम) भरणकर्त्ता (मृगं न) सिंहकी समान (त्वा) तुम्हे (सवनेषु) यज्ञोंमें (सोमस्य) सोमके (गल्दया) रससे (ज्या) विजयशील स्तुति करके भी युक्त (अहम्) मैं (सदा) सर्वदा (याचन्) याचना करता हुआ (आचुक्रुधं) क्रोधको दूर करता हूं (कः) कौन पुरुष (ईशानम्) अपने स्वामीसे (न) नहीं (याचिषत्) याचना करता है ? अर्थात् सब ही स्वामीसे याचना करते हैं, इसी कारण मैं भी अपने स्वामी आपसे याचना करता हूं कि- ऐसी कृपा करिये, जिससे मुझे किसीके ऊपर क्रोध न आवै ५

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ १ २
अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति । उपो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥

अथ षष्ठी । देवातिथिर्ऋषिः । हे अध्वर्यो ! अध्वरस्य नेतस्त्वं सोमं द्रावय उत्तरवेदिलक्षणं स्थानं प्रापय । यद्वा । रसात्मना द्रवणशीलं कुरु । अभिषुणवित्यर्थः । किं कारणमिति चेत् इन्द्रः पिपासति सोमं पातुमिच्छति त्वयैतत्कथमवगतमिति चेत्तत्राह वृषणा वर्षितारौ युवानौ वा । हरी अश्वौ नूनं अद्य उपो युयुजे उपगम्यैव सारथियों-जितवान् रथे । वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता इन्द्रश्च आ जगाम आगतवान् । उपो नूनं उपनूनं इति पाठौ ॥ ६ ॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञके नेता अध्वर्यु ! तू (सोमम्) सोमको (द्रावया) उत्तरवेदी नामक स्थानपर पहुँचा क्योंकि (इन्द्रः) इन्द्र (पिपासति) सोमको पीना चाहता है,(वृषणा) युवा (हरी) घोड़ोंको (नूनम्) आज (उपोयुयुजे) सारथिने रथमें जोड़ा है (वृत्रहा) वृत्रासुरके नाशक इंद्र (आजगाम) आगए ॥ ६ ॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

३ २ ३ १   ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥७॥

अथ सप्तमी । द्वयोर्वसिष्ठ ऋषिः । हे ज्यायः ज्यायन्निन्द्र ! आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवदितीन्द्रपदस्य विद्यमानवद्भावात् ज्याय इत्यस्य सर्वानुदात्तत्वाभावः । नकारस्य रुत्वं व्यत्ययेन नुमभावो वा कनीयसः सतो मम तत् प्रसिद्धं धनम् । अभ्याभर अभ्याहर हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र पुरुवसुः बहुभिर्वननीयो बभूविथ असि । भरे भरे संग्रामे च हव्यो होतव्यश्च बभूविथ ॥ मघवन् बभूविथ इति छन्दोगाः । मघवत्सनादसि इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ज्यायः) हे सर्वोसे बडे इंद्र ! (इषतः) याचना किये हुए (तत्) उस प्रसिद्ध धनको (कनीयसः) मुझ छोटेको (अभ्याभरः) सब ओरसे लाकर दीजिये (मघवन्) हे धनवान् ! (पुरूवसुः) बहुतोंसे याचना करने योग्य (बभूविथ) हुए हो (भरे भरे) प्रत्येक संग्राम में (हव्यः) आह्वान करने योग्य और हवि देने योग्य भी हुए हो ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वायरꣳसिषम् ८

अथ अष्टमी । हे इन्द्र ! यद् यतो यावतो धनस्य ईशिषे एतावत् षष्ठ्यालुक् एतावतो धनस्य अहमीशीय ईश्वरो भवेयम् । हे रदावसो रदति ददाति वसूनीति रदवसुः तादृश हे इन्द्र ! ततोऽहमस्मदीयं स्तोतारम् इत् दधिषे धनप्रदानेन धारयेयमेव । पापत्वाय क्षीणत्वाय न रंसिषं न दद्याम् । स्तोतारमिद्दधिषेरदावसोनपापत्वाय रंसिषम् इति छन्दोगाः । दिधिषेयरदावसोपापत्वायरासीय इति बह्वृचाः ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (यत्) जिसकारणसे (त्वम्) तुम (यावतः) जितने धनके (ईशिषे) स्वामीहो (एतावत्) उतने ही धनका (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी होऊँ (रदावसो) हे धन देनेवाले इंद्र ! तिससे मैं (स्तोतारम्) अपने सामगान करनेवाले स्तोताको (इत् दधिषे) धन देकर अवश्य रखसकूं (पापत्वाय) वृथा नष्ट करनेको (न) नहीं (रंसिषम्) दूं ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ९

अथ नवमी । नृमेध ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वं प्रतूर्त्तिषु सङ्ग्रामेषु विश्वाः सर्वाः स्पृधो युद्धकारिणीः शत्रुसेनाः अभ्यसि अभिभवसि किञ्च हे तूर्य्य ! शत्रूणां बाधक इन्द्र ! त्वम् अशस्तिहा दैवीनामशस्तीनां हन्तासि । जनिता असुरेभ्यः अशस्तीनां जनयिता चासिः वृत्रतू सर्वस्य शत्रुवर्गस्य हिंसिता चासि । तरुष्यतः बाधकांश्च बाधमानोऽसि ९

(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों में (विश्वाः) सब (स्पृधः) युद्ध करनेवाली शत्रुओंकी सेनाओंका (अभ्यसि) तिरस्कार करते हो (तूर्य) हे शत्रुओंके बाधक इंद्र ! (त्वम्) तुम (अशस्तिहा) दैवी आपत्तियोंके नाशक हो (जनिता) हमारे शत्रुओंकी आपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो (वृत्रतूः) सकल शत्रुसमूह का नाश करनेवाले (असि) हो (तरुष्यतः) हमारे विघ्नकर्त्ताओं का निवारण करते हो ॥ ९ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ १
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि । न
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ १०

अथ दशमी । नोधा ऋषिः । हे इन्द्र ! यस्त्वं दिवो द्युलोकस्य सदोभ्यः स्थानेभ्यः परि पर्य्यन्तेभ्यः ओजसा बलेनैव प्र रिरिक्षे प्रकर्षेणातिरिक्तो भवसि रिचेर्लिटि बहुलञ्छन्दसीति इलुः । प्रत्ययस्वरः किञ्च । हे इंद्र ! पार्थिवं पृथिव्यां भवं रजो लोकः त्वा त्वां महता स्वशरीरेण न विव्याच न व्याप्नोति द्यावापृथिवीभ्यामपि स्वतः स त्वं बलेन समर्थोऽसीत्यर्थः। एवम्भूतः सन् त्वम् अस्मान् विश्वम् अति अतिक्रम्य ववक्षिथ। वोढुमिच्छ वहेः सन्नन्तस्य छान्दसेलिटि रूपं मन्त्रत्वादामभावः १०

असाविदेवमेकोनत्रिंशत्तासुप्रवोमहे ।
त्रिपदोक्ताविराडन्यास्त्रिष्टुभोऽष्टोर्ध्वविंशतिः ॥
ऐन्द्रीषु तासु तार्क्ष्यस्य स्तुतिरेका त्वमुष्विति ।
पर्वतेन सहेन्द्रस्य गीरिन्द्रापर्व[illegible]प ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! जो तुम (दिवः) द्युलोकके (सदोभ्यः) स्थानों

से (ओजसा) बल करके (प्ररिरिक्षे) अधिकता करकै श्रेष्ठ होते हो और हे इंद्र ! (पार्थिवम्) पृथिवीपर उत्पन्न हुआ (रजः) लोक (त्वा) तुम्हें अपने बड़े शरीरसे (न विव्याच) व्याप्त नहीं करसका ऐसे बलवान् तुम हमें (विश्वम्) विश्वको (अति) त्यागकर (ववक्षिथ) धारण करो अर्थात् हमें सबसे श्रेष्ठ बनाओ ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३१ २र ३२३क २र ३ १ २
असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निद्रो
३ १ २ १ २ ३ १ २र
जनुषे। मुवोच बोधामसि त्वा हर्य्यश्व यज्ञैर्बोधा
३ २ ३१ २ ३ १ २
न स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥

तत्र नवमखण्डे—सैषा प्रथमा । द्वयोर्वसिष्ठ ऋषिः । देवं दीप्तं गोऋजीकं गोभिः संस्कृतं गव्येन मिश्रितमित्यर्थः । अन्धः सोमरूपमन्नम् असावि अभिषुतम् । ईम् अयम् इन्द्रः अस्मिन् अभिषुते सोमरूपेऽन्धसि जनुशा स्वभावत एव न्युवोच नितरां सक्तो भवति उ च समवाये अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे हर्य्यश्व ! त्वा त्वां यज्ञैः स्तोत्रैः हविर्भिर्वा बोधामसि बोधयामः । अन्धसः सोमस्य मदेषु नो ऽस्माकं स्तोमं स्तोत्रं बोध बुध्यस्व च ॥ १ ॥

(देवम्) प्रकाशमय (गोऋजीकम्) गोघृत दुग्धादिसे संस्कार किये हुए (अन्धः) सोमरूप, अन्नको (असावि) संपादन किया (ईम्) यह (इन्द्रः) इंद्र (अस्मिन्) इस सम्पादन कियेहुए सोमरूप अन्नमें (जनुषा) स्वभावसे ही (न्युवोच) अत्यन्त तत्पर होता है (हर्यश्व) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (यज्ञैः) स्तोत्र और हवियोंसे (बोधामसि) बोध कराते हैं (अन्धसः) सोमके (मदेषु) मदोंमें (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तोत्रको (बोध) जानो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
योनिष्ट इन्द्रसदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि
२ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद् ददो वसूनि ममदश्च सोमैः

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! ते तव सदने सदनार्थं योनिः स्थानम् अकारि । हे पुरुहूत ! बहुभिराहूतेन्द्र ! नृभिः नेतृभिर्मरुद्भिः सार्द्धं तं

योनिम् आ प्रयाहि । नो ऽस्माकं यथा अविता रक्षिता असः भवसि । नोऽस्माकं वृधाश्चित् वृधे वर्द्धनाय चासः । वृधे च इति बह्वृचा तथा वसूनि ददः अस्मभ्यं देहि । अस्मदीयैः सोमैः ममदो माद्यस्व च ॥२॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (सदने) विराजमान होने के निमित्त (योनिः) स्थान (अकारि) रचागया (पुरुहूत) हे अनेकों के आह्वान कियेहुए इन्द्र (नृभिः) नेता मरुतोंके साथ (तम्) उस स्थान पर (आ प्रयाहि) आइये (नः) हमारे (यथा) जैसे (अविता) रक्षक (वृधश्चित्) वृद्धि करनेवाले (असः) होओ हमें (वसूनि) धन (ददः) दीजिये (च) और (सोमैः) हमारे सोमोंसे (ममदः) आनन्दित हूजिये ॥ २ ॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्धधाना ँ ३

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३

अरम्णाः । महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा

२ ३ १ २ ३ २

अव यद्दानवान् हन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गातुर्ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वम् उत्सम् उत्स्यन्दमानं मेघं अदर्दः विदारितवानसि । तदनन्तरं खानि मेघस्थोदकनिर्गमनद्वाराणि व्यसृजः विशेषेण सृष्टवानसि । किञ्च । बद्धधानान् बाधमानान् अर्णवान् उदकवतो मेघान् अरम्णाः विसर्जयसि चारयसीत्यर्थः। अत्र रम्णातिर्विसर्जनकर्मा हे इन्द्र ! यत् यस्त्वं यदिति लिङ्गव्यत्ययः महान्तं प्रभूतं पर्वतं मेघं विवृतवानासि धारा अपां विसृजत् व्यसृजः विसर्जितवानसि । यद् यदा दानवान् दनोः पुत्रान् । यद्वा । उदकस्य दातॄन् मेघान् अवहन् अभिहतवानासि । अत्र निरुक्तम्, अदृणा उत्समुत्स उत्सरणाद्वोत्सदनाद्वोत्स्यन्दनाद्वोनत्तेर्वास्यात् व्यसृजोऽस्य खानि त्वमर्णवानर्णस्वत एतान् इत्यादि । वियद्वः सृजद्धारा अवयद्दानवान् वियद्वः सृजोविधारा अवदानवं हन् इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तुमने (उत्सम्) जलभरे मेघको (अदर्दः) विदीर्ण किया है, फिर (खानि) मेघमेंके जल निकलनेके द्वारोंको (व्यसृजः) विशेषरूपसे रचा है (बद्धधानान्) बाधा देनेवाले (अर्णवान्) जलवाले मेघोंको (अरम्णाः) टपकाया है (यत्) जिन तुमने (महान्तम्) बहुतसे (पर्वतम्) मेघको (व्यसृजत्) विवृत किया है (धाराः) जलकी धाराओंको छोड़ा है (यत्) जब (दानवान्) दानवोंको (अवहन्) विनष्ट किया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तु-
३ १ २ १ २ ३ १ २र ३
विनृम्ण वाजम् । आ नो भर सुवितं यस्यको
२उ ३ १ २ ३ १ २
ना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पृथुर्वैन ऋषिः । हे इन्द्र ! सुष्वाणासः सोममभिषुतवन्तो वयं त्वा त्वां स्तुमसि स्तुमः । हे तुविनृम्ण ! बहुबल बहुधन वा इंद्र ! वाजं चरुपुरोडाशादिलक्षणमन्नं सनिष्यन्तः दत्तवन्तः सम्भक्तवन्तो वा वयं त्वां स्तुमः । यत एवम् अतो हेतोः नोऽस्मभ्यं सुवितं सुष्ठु प्राप्तव्यं शोभनं धनम् आभर आहर प्रयच्छ । यद्वा यस्य यद्धनमतिप्रियत्वेन कोना कनेः कान्तिकर्मण इदं रूपम् । पचाद्यच् । अकारस्य व्यत्ययेन ओकारः । प्रथमैकवचनस्याकारः कामयमानो भवसि तद्धनमाभरेत्यर्थः । वयं च त्वोताः त्वया रक्षिताः सन्तः । तना धननामैतत् विस्तृतानि धनानि त्मना आत्मना स्वयमेव अन्यनैरपेक्ष्येणैव सह्याम सह अभिभवे । धातूनामनेकार्थत्वात् त्वत्प्रसादाल्लभेमहि । सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्णवाजम् इति छन्दोगाः । ससवांसश्चतुविनृम्णवाजम् इति बह्वृचाः । कोनातनात्मनासह्याम चाकन्त्मनातनासनुयाम इति पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सुष्वाणासः) सोमका अभिषव करनेवाले (त्वा स्तुमसि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (तुविनृम्ण) हे बहुत धन वाले इन्द्र (वाजम्) सुन्दर पुरोडाशरूप अन्न (सनिष्यन्तः) विभाग करके देतेहुए हम स्तुति करते हैं, इस कारण (नः) हमें (सुवित्तम्) प्राप्त होनेयोग्य श्रेष्ठ धनको (आभर) दीजिये (यस्य) जिस धनको अतिप्रिय होनेसे (कोना) कामना करते हो वह धन हमें दो (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा कियेहुए (तना) बहुतसे धनोंको (त्मना) स्वयं ही (सह्याम) आपके अनुग्रह से पाते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वसूनाम् । विद्मा हि त्वा गोपतिꣳ शूर गोना-

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मस्मभ्यं चित्रं वृषणꣳ रयिं दाः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । सप्तगुर्ऋषिः । हे वसुपते ! वसूनां धनानां स्वामिन् ! इन्द्र ! ते तव दक्षिणं हस्तं वसूयवो धनकामा वयं जगृह्म गृह्णीमः । यथा बहुप्रदस्यार्थिनोऽस्मभ्यमदत्वा न गन्तव्यमिति हस्तं गृह्णन्ति तद्वत् हे शूर ! विक्रान्तेन्द्र ! त्वा त्वां गोपतिम् । अत्र वृत्त्यर्थाभ्यां स्वामित्वं बहुत्वं च प्रतिपाद्यते बह्वीनां गवां गोपतिं विद्म जानीम । अतोऽस्मभ्यं चित्रं चायनीयं वृषणं वर्षकं रयिं दाः धेहि ॥ ५ ॥

(वसूनाम्) बहुतसे धनोंमें (वसुपते) हे धनोंके स्वामी (ते) तुम्हारे (दक्षिणं हस्तम्) दाहिने हाथको (वसूयवः) धनकी इच्छा करनेवाले हम (जगृह्म) ग्रहण करते हैं (शूर) हे पराक्रमी !(गोनाम्) बहुतसी गौओंमें (त्वा) तुम्हें (गोपतिम्) गौओंका स्वामी (विद्मः) जानते हैं, इस कारण हमें (चित्रम्) अनेक प्रकार के (वृषणम्) मनोरथोंके पूरक (रयिम्) धनको (दाः) दो ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्य्या युनजते
२ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
धियस्ताः । शूरो नृषाता श्रवसश्चकाम आ
२र ३ १ २ ३ १ २
गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसिष्ठ ऋषिः । यद् यदा पार्य्याः युद्धे मरणनिमित्तभूतास्ताः प्रसिद्धाः धियः कर्माणि युनजते प्रयुज्यन्ते । तदा नरो नेतारो यज्ञानां संग्रामाणां वा नेमधिता नेमधितौ यज्ञे संग्रामे वा यमिन्द्रं हवन्ते ह्वयन्ति । हे इन्द्र ! स त्वं शूरः नृषाता नृणां सम्भक्ता च । श्रवसो बलस्य अन्नस्य वा चकाने चकामे काम्यमाने सति गोमति गोयुते व्रजे गोष्ठे नः अस्मान् भज भागिनः कुरु । श्रवसश्चकामे शवसश्चकाने इति पाठौ ॥ ६ ॥

(यत) जब (पार्याः) युद्धमें रक्षाके कारणभूत (ताः) प्रसिद्ध (धियः) कर्म (युनजते) प्रयोग किये जाते हैं तब (नरः) यज्ञ वा संग्राम करनेवाले मनुष्य (नेमधिता) यज्ञ वा संग्राममें (इन्द्रम्) जिस इन्द्रको (हवन्ते) आह्वान करते हैं वह (शूरः) वीर (नृषाता)

मनुष्योंको विभाग करके यथास्थान पर खड़ा करनेवाले तुम (अवसः) अन्न वा बलके (चकामे) चाहने पर (गोमति) गौआदि पशुओंसे युक्त (व्रजे) गोठमें (नः) हमें (भज) भागी करो ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो
१ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
नाधमानाः । अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षु-
३ २ २ ३ १ २ ३ २
र्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । गौरिवीति ऋषिः । वयो गन्तारः सुपर्णाः सुपतनाः आदित्यरश्मयः इन्द्रम् उपसेदुः उपसन्ना अभवन् । कीदृशाः प्रियमेधाः प्रिययज्ञाः ऋषयो द्रष्टारः नाधमानाः प्रज्ञां याचमानाः याचनप्रकार उच्यते हे इन्द्र ! ध्वान्तम् अन्धकारम् अपोर्णुहि परिहर अपध्वान्तमूर्णुहीति येन तमसा प्रावृतो मन्येत तन्तमसा गच्छेदपैहवास्मात्सल्लुप्यते इत्यैतरेयब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम् । पूर्द्धि पूरय च चक्षुः तेजश्च । मुमुग्धि मोचय च अस्मान् निधयेव बद्धान् । निधा पाश्या भवति पाश्या पाशसमूहः । पाशसमूहेन बद्धान् यथा मुञ्चन्ति तद्वत् । अत्र वयो वेर्बहुवचनम् इत्यादि निरुक्तं (४, ३) द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥

(वयः) गमन करनेवाली ((सुपर्णाः) सुख देना है पतना जिन का ऐसी (प्रियमेधाः) यज्ञसे प्रेम करने वाली (ऋषयः) देखने वाली (नाधमानाः) प्रज्ञाकी याचना करती हुई सूर्यकी किरणें (इन्द्रम्) इन्द्रको (उपसेदुः) प्राप्त हुई (इन्द्र) हे इन्द्र (ध्वान्तम्) अंधकारको (अपोर्णुहि) दूर करो (चक्षुः) तेजको (पूर्द्धि) पूर्ण करो (निधया इव बद्धान्) पाशियोंसे बँधहुएसे (अस्मान्) हमें (मुमुग्धि) छुड़ाओ ॥ ७ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १
अभ्यचक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वेनोभार्गव ऋषिः । दे० वेनः । हे वेन ! त्वा त्वां हृदा हृदयेन मनसा वेनन्तः कामायमाना स्तोतारः नाके अन्तरिक्षे अभ्यचक्षत अभिपश्यंति तदानीं त्वम् उपगच्छसीति शेषः । कथम्भूतं ! सुपर्णं शोभनपतनं पतन्तं अन्तरिक्षं गच्छंतम् । हिरण्यपक्षं हिरण्मयाभ्यां पक्षाभ्यामुपेतम् । वरुणस्य जलाभिमानिनो देवस्य दूतं चारम् । यमस्य नियामकस्य वैद्युताग्नेः योनौ स्थाने अन्तरिक्षे शकुनं पक्षिरूपेण वर्त्तमानम् भुरण्युं भर्त्तारं वृष्टिदानादिना सर्वस्य जगतः पोषकं भुरण धारणपोषणयोः कण्ड्वादिः । अस्मादौणादिक उ प्रत्ययः ।८।

(सुपर्णम्) सुन्दर है पतन जिसका (पतन्तम्) अन्तरिक्षमें जाते हुए (हिरण्यपक्षम्) सुवर्णके पक्षोंवाले (वरुणस्य) जलाभिमानी देवताके (दूतम्) दूत (यमस्य) नियामक विद्युताग्नि के (योनौ) स्थान अन्तरिक्षमें (शकुनम्) पक्षीरूपसे वर्त्तमान (भुरण्युम्) वर्षा आदिके द्वारा सब जगत्का पोषण करनेवाले (त्वा) तुम्हें (हृदा) मनसे (वेनन्तः) चाहतेहुए स्तोता (नाके) अन्तरिक्षकी ओरको (अभ्यचक्षत) देखते हैं, तब तुम जाते हो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो
३ १ २ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
वेन आवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ६ ॥

अथ नवमी । बृहस्पतिर्नकुलो वा ऋषिः । वेनो नाम कश्चित् कमनीयो गन्धर्वः । तथा च शाखान्तरे-वेनस्तत्पश्यन्नित्यारभ्य गन्धर्वो नाम इत्याम्नातम् । स च वेनः पुरस्तात् पूर्वस्मिन् काले जज्ञानम् उत्पन्नम् अभिज्ञं वा ब्रह्म ब्राह्मण-जातिरूपं प्रथमम् आद्यशरीरम् । अतोऽस्याः सर्वैर्दृश्यमानायाः सुरुचः शोभनायाः कान्तेः आवः रक्षितवान् वसुमेत्यनुग्रहसूचकः कश्चिदनुकरणशब्दः, तथाविधं शब्दं मुखेनाभिव्यञ्जयन् । ब्राह्मणशरीरं महत्या कान्त्या योजितवानित्यर्थः । स वेनः बुध्न्याः मूलं अन्तरिक्षं वा बुध्नः तत्र भवाः अस्योपमाः एतदीयशरीरकान्तिसदृशाः आदित्यप्रकाशादिरूपाः कान्तीः विष्ठाः विशेषेण स्थापितवान् । तथा सतश्च इदानीं विद्यमानस्य च असतश्च भविष्यद्रूपस्येदानीमविद्यमानस्य च योनिम् उत्पत्तिकारणं निवासस्थानं वा विवः विवृतवान् निष्पादितवानित्यर्थः ॥ ९ ॥

पूर्व मन्त्रमें वर्णन किया हुआ (वेनः) वेन नामक गन्धर्व (पुरस्तात्) पूर्वकाल में (जज्ञानम्) उत्पन्न हुए अथवा ज्ञानवान् (ब्रह्म) ब्राह्मण जातिरूप (प्रथमम्) आद्य शरीरको (विसीम्) मुखसे आनन्दसूचक शब्द करता हुआ (अतः) इस सबको दीखती हुई (सुरुचः) श्रेष्ठ कान्तिसे (आवः) रक्षा करता हुआ अर्थात् ब्राह्मण शरीरको बड़ा कान्तिमान् करदिया (सः) वह गन्धर्व (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में की (अस्य, उपमाः) इस शरीरकी कान्ति की समान आदित्य आदिके प्रकाशरूप कान्तियों को (विष्ठाः) विशेषरूप से स्थापन करता हुआ तथा (सतः) इस समय विद्यमान (च) और (असतः) आगे को होने वाले इस समय अविद्यमान (योनिम्) उत्पत्तिके कारणको वा निवासस्थानको (विवः) निष्पन्न करता हुआ ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे
३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
तुराय । विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि
१ २ ३ १ २
वचाꣳस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥ १० ॥

अथ दशमी । सुहोत्रऋषिः । दे०इन्द्रः । अपूर्व्या अपूर्व्याणि पूर्वैरकृतानि पुरुतमानि बहुतमानि शन्तमानि सुखकृत्तमानि वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यानि अस्मै इन्द्राय तक्षुः ततक्षुः तक्षतिः करोतीत्यर्थे कुर्वन्ति स्तोतार इति शेषः । कीदृशाय ? महे महते । वीराय विविधशत्रूणां मारयित्रे तवसे तवस्विने बलवते । तुराय त्वरमाणाय विरप्शिने विशेषेण स्तुत्याय वज्रिणे वज्रवते । स्थविराय प्रवृद्धाय १०

(महे) महान् (वीराय) अनेकों शत्रुओंका वध करनेवाले (तवसे) बलवान् (तुराय) शीघ्रता करनेवाले (विरप्शिने) विशेषरूपसे स्तुतिके योग्य (वज्रिणे) वज्रधारी (स्थविराय) वृद्ध (अस्मै) इस इन्द्रके अर्थ (अपूर्व्या) नवीन (पुरुतमानि) बहुत से (शन्तमानि) परम सुखदायक (वचांसि) स्तुतिरूप वचनोंको (तक्षुः) स्तोता उच्चारण करते हैं ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

—०—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो
३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २ ३
दशभिः सहस्रैः । आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्त-
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मप स्नीहितिं नृमणा अपद्राः ॥ १ ॥

अथ दशमे खण्डे—सैषा प्रथमा अस्याः परस्याश्च द्युतानऋषिः । अत्रेतिहासमाचक्षते, पुरा किल कृष्णो नामासुरः दशसहस्रसंख्याकैरसुरैः परिवृतः सन् अंशुमतीनामधेयाया नद्यास्तीरे अतिष्ठत् । तत्र तं कृष्णमुदकमध्ये स्थितम् इन्द्रो बृहस्पतिना सहागच्छत् । आगत्य तं कृष्णं तस्यानुचरांश्च बृहस्पति—सहायो जघानेति केचिदन्यथा वदन्ति । तेषां कथाहेतुः, द्रप्स इत्युदककणोऽभिधीयते । स तु सोमः द्रप्सश्चस्कन्देत्यादिषु सोमपरत्वेनोक्तत्वात् । एतत्पक्षमाश्रित्याहुः,—

अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयार्दितः ।
नदीमंशुमतीं नाम अभ्यातिष्ठत् कुरुं प्रति ।
तं बृहस्पतिनैकेन सोऽभ्ययात्तत्र वृत्रहा ।
योत्स्यमानः सुसंहृष्टैर्मरुद्भिर्विविधायुधैः ।
दृष्ट्वा तानागतान् सोमः स्वबलेन व्यवस्थितः ।
मन्वानो वृत्रमायान्तं जिघांसुमरिसेनया ।
व्यवस्थितं धनुष्मन्तं तमुवाच बृहस्पतिः ।
मरुत्पतिरयं सोम प्रेहि देवान् पुनर्विभो ! ।
सोऽब्रवीन्नेति तं शक्रः खड्ग एव बलाद् बली ।
इन्द्राय देवमादाय तं पुनर्विधिवत्पुरा ।
जघ्नुः पीत्वा च दैत्यानां समरे नवतीर्नव ।

तदवद्रप्स इत्यस्मिन्नृचेसर्वं निगद्यते । एतदनार्षत्वेऽनादरणीयं भवति । एषोऽर्थः क्रमेण ऋचि वक्ष्यते । तथाचास्य ऋचोऽयमर्थः—द्रप्सो द्रुतं सरति गच्छतीति द्रप्सः पृषोदरादिः द्रुतं गच्छन् दशभिः सहस्रैः दशसहस्रसंख्याकैरसुरैः इयानः इयमानः कृष्णः एतन्नामकोऽसुरः अंशुमतीं नाम नदीम् । अवातिष्ठत् अवातिष्ठते । ततः शच्या स्वकर्मणा प्रज्ञानेन वा धमन्तम् उदकस्यान्तरुच्छ्वसन्तम् । यद्वा । जगद्भीतिकरं शब्दं कुर्वन्तं तं कृष्णासुरम् इन्द्रो मरुद्भिः सह आवत् प्राप्नोत् । अथ अनन्तरं पश्चात् तं कृष्णासुरं तस्यानुचरांश्च हतवान् इति वदति । नृमणाः नृषु मनो यस्य सः । यद्वा । कर्मनेतृषु ऋत्विक्षु

एकविधं मनो यस्य स तथोक्तः । तादृशो भूत्वा स्नीहितिं स्नीहितिर्वधकर्मसु पठितः (नि० नै० ३, १९) सर्वस्य हिंसित्रीं तस्य सेनाम् अपद्राः द्रातिः कुत्सितगतिकर्मा । स इन्द्रः अपगमयत् अवधीदित्यर्थः तस्यानुचरान् हत्वा तं द्रुतं गच्छन्तं असुरं हतवानित्यभिप्रायः ॥ १ ॥

(द्रप्सः) शीघ्र गमन करनेवाला (दशभिः सहस्रैः) दश सहस्र असुरोंके साथ (इयानः) चढ़ाई करता हुआ(कृष्णः)कृष्णनामक असुर (अंशुमतीं) अंशुमती नदी पर (अवातिष्ठत्) आकर प्राप्त होगया, तदनन्तर (शच्या) अपने कर्म वा प्रज्ञानसे (धमन्तम्) जगत्को भयदायक शब्द करनेवाले (तम्) उस कृष्णासुरको (इन्द्रः) इन्द्र मरुतों सहित (आवत्) प्राप्त हुआ (अथ) इसके अनन्तर (नृमणाः) ऋत्विजों में एकतान होकर जिसका मन लग रहा है ऐसा इन्द्र (स्नीहितिम्) हिंसा करनेवाली उसकी सेनाको (अपद्राः)वध करता हुआ अर्थात् उसको मारकर उसकी सेनाको भी मारडाला ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अज-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ
हुर्ये सखायः । मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा
३ १ २
विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! तव ये विश्वेदेवाः प्राक् सखायः संग्रामे साहित्यं कुर्यामेति मित्राण्यभवन् । ते सर्वे देवाः वृत्रस्य वृत्रासुरस्य श्वसथात् श्वसेरौणादिकोऽथप्रत्ययः । सर्वान् आगच्छतो दृष्ट्वा तेषां भीत्युत्पादनाय वृत्रासुरः श्वासमकार्षीत् श्वासाद्भीताः सन्तः अतएव ईषमाणाः सर्वतः पलायमानाः त्वा त्वाम् अजहुः संग्रामे त्यक्तवन्तः । एवं सति हे इन्द्र ! मरुद्भिः सह सख्यं सखिभावः ते तवास्तु । ये मरुतस्त्वां न परित्यजन्ति तैः सहेति । अथ अनन्तरम् इमाः विश्वाः सर्वाः पृतनाः शत्रुसेनाः जयासि स्वबलेनाभिभवसि अनेन वृत्रघ्नं तमिन्द्रमाह अत्र मन्त्रे इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन् इत्यादि (३, २, ९) ऐतरेयब्राह्मणमनुसन्धेयम ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तेरे (ये) जो (विश्वे देवाः) विश्वे देवता पहिले (सखायः)युद्धमें सहायता करनेवाले मित्र थे, वह सब देवता (वृत्रस्य) वृत्रासुरके (श्वसथात्) सबको आते हुए देखकर वृत्रासुरने जो श्वास छोड़ा था उससे भयभीत होकर (ईषमाणाः) चारों ओरको

भागते हुए (त्वा) तुम्हें (अजहुः) छोड़ गए थे, ऐसा होने पर हे इन्द्र ! (मरुद्भिः) तेरा साथ न छोड़नेवाले मरुतोंके साथ (ते) तेरा (सख्यम्) मित्रभाव (अस्तु) हो (अथ) फिर (इमाः) इन (विश्वाः) सब (पृतनाः) शत्रुसेनाओं को (जयासि) अपने बल से जीतोगे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां युवानꣳ सन्तं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

पलितो जगार । देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या

३ २ ३ १ २र

ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । बृहदुक्थऋषिः । अनया कालात्मक इन्द्रः स्तूयते, विधुं विधातारं सर्वस्य युद्धादेः कर्त्तारं विपूर्वो दधातिः करोत्यर्थे तथा समने अननमनः प्राणनं सम्यगननोपेते संग्रामे बहूनां शत्रूणां दद्राणं द्रावकम् । ईदृक्सामर्थ्योपेतमपि युवानं सन्तं पुरुषम् । पलितो जगार निगिरतीन्द्रकृपया । एवमुक्तलक्षणं वक्ष्यमाण—लक्षणं च । देवस्य कालात्मकस्येन्द्रस्य महित्वा महत्त्वेनोपेतं काव्यं सामर्थ्यं पश्य हे बृहदुक्थ ! ऋषिः स्वात्मानमामन्त्र्य वदति,—तथा यो जरां प्राप्तोऽद्य ममार म्रियते स ह्यः परेद्युः समान सम्यग् जीवति पुनर्जन्मान्तरे प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

कालस्वरूप इन्द्रकी स्तुति कीजाती है, कि—(विधुम्) युद्ध आदि के विधाता तथा (समने) संग्राम में (बहूनाम्) बहुतसे शत्रुओं के (दद्राणम्) भगानेवाले भी (युवानम्) युवा पुरुषको इन्द्रकी कृपा से (पलितः) बूढ़ा पुरुष (जगार) निगलजाता है अर्थात् जीतलेता है इस तथा आगे कहीहुई भी (देवस्य) कालस्वरूप इन्द्रकी (महित्वा) महत्वभरी (काव्यम्) सामर्थ्यको (पश्य) देख, हे जीवात्मन् ! जो जराको प्राप्त हुआ (अद्य) आज (ममार) मरता है (सः) वह (ह्यः) दूसरे दिन (समान) अन्य जन्म धारण करके संसारमें आजाताहै॥३॥

२ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३

त्वꣳ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः

१२ ३ १ २र २ १ २र ३

शत्रुरिन्द्र । गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभु-

२ ३ १२ ३ १२
मह्व्या भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । द्युतामऋषिः । हे इन्द्र! त्वं ह त्वं खलु त्यत् तदेतत् कर्म कृतवानसि । किं तदुच्यते ? जायमानः त्वं प्रादुर्भवन्नेव अशत्रुभ्यः शत्रुरहितेभ्यः सप्तभ्यः कृष्णावृत्रनमुचिशम्बरादिभ्यः सप्तभ्यो बलवद्भ्यः प्राणिभ्यः शत्रुः अभवः यद्वा सप्तभ्यः पूर्भ्यः शत्रुः शातयिता दारयिता अभवः सप्त यत्पुरःशर्मशारदीर्दर्त् (ऋ० स० २, ४, १६, २) इति हि निगमः अथवा सप्तभ्यः सप्तहोतृप्रभृतयो होत्रकाः, तदर्थं यज्ञेषु प्रादुर्भवन्नेव कर्मविघ्नकारिभ्यः शत्रुरभवः । किञ्च, हे इंद्र ! त्वं गूढे संवृते द्यावापृथिव्यौ सूर्यात्मना प्रकाश्य अनुक्रमेण ते अविन्दः अलभथा तथा विभुमद्भ्यो महत्वयुक्तेभ्यः भुवनेभ्यो लोकेभ्यः रणं रमणं धाः धारयसि विदधासीत्यर्थः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र (त्वम् ह) तुम निश्चय (त्यत्) ऐसा पराक्रम करनेवाले हो, कि-(जायमानः)प्रकट होते हीं (अशत्रुभ्यः) शत्रुरहित (सप्तभ्यः) कृष्ण वृत्र नमुचि आदि सात असुरों के अर्थ (शत्रुः) शत्रु (अभवः) हुए था सात पुरोंको नष्ट करनेवाले हुए अथवा सात होता वाले यज्ञों में विघ्न करनेवालों के शत्रु हुए और हे इन्द्र! तुमने (गूढे) अन्धकारसे ढके हुए (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकको (अन्वविन्दः) सूर्यरूप से प्रकाशित करके पाया तथा (विभुमद्भ्यः) गौरवयुक्त (भुवनेभ्यः) लोकोंसे (रणम) रमणको (धाः) धारण करते हो ॥ ४ ॥

३ १ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभ
३ १ २ ३२३ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
ॐ स्थिरप्स्नुम् । करोष्यर्य्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं
२ ३ १ २
वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! दुवस्युः दुवः परिचरणं स्तुत्यादिलक्षणं तदिच्छुस्त्वं यतः अर्य्यः अरीन् अस्मद्विरोधिनः तरुषीः तारकान् जेतृनस्मान् करोषि यद्वा । तरुषीः तरुणस्वभावान् । पक्षद्वयेऽपि लिङ्गव्यत्ययः । अर्य्यः अरीनस्माकं शत्रून् करोषि उपक्षीणानिति शेषः । अतः मेडिं न मेडिरिति वाङ्नाम (नि० १, १, १,१९) माध्यमिकीं वृष्टिप्रदां वाचामिव तां यथा वृष्ट्यर्थं स्तुवन्ति तद्वत् त्वा

त्वां गृणीषे स्तोत्रमुच्चारयामि स्तौमि कीदृशं त्वां वृत्रहणं वृत्रस्यासुरस्य मेघस्य वा हन्तारम्। द्युक्षं द्युलोके वर्त्तमानम् । पुरुधस्मानं बहूनामुदकानां धारकं यद्वा । वर्णव्यत्ययः। पुरूणां बहूनां दासयितारं शत्रूणां सपायितारं वृषभं कामानां वर्षकम्। स्थिरप्स्नुं स्थिररूपम्। न हीन्द्रस्य रूपं कदाचिदपि प्रच्युतं भवति यद्वा । स्थिराणां शत्रूणां भक्षकं विघातिनमित्यर्थः । वज्रिणं वज्रवन्तम् भृष्टिमन्तं शत्रूणां भर्जनवन्तम् ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (दुवस्युः) स्तुति आदि आराधना की इच्छा करते हुए तुम (अर्यः) हमारे शत्रुओंको क्षीण (तरुषीः) हमें विजय पानेवाला (करोषि) करते हो, इसकारण (मेडिं न) जिस प्रकार वृष्टिकारिणी वाणीकी वर्षाके निमित्त प्रार्थना करते हैं,तैसे ही (वृत्रहणम्) मेघों के प्रेरक (द्युक्षम्) द्युलोकमें वर्त्तमान (पुरुधस्मानम्) बहुतसे जलों के धारक वा अनेकों शत्रुओंके नाशक (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (स्थिरप्स्नुम्) स्थिररूप (वज्रिणम्) वज्रधारी (भृष्टिमन्तम्) शत्रुओंको भूननेवाले (त्वा) तुम्हें (गृणीषे) स्तोत्र पढ़कर मनाता हूँ ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्

१ २ ३ १ २र ३ २

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वसिष्ठ ऋषिः। छ० विराट् । हे अस्मदीयाः पुरुषाः! वो यूयं महेवृधे महतां धनानां वर्द्धयित्रे महे महते इन्द्राय प्रभरध्वं सोमान् प्रणयत। प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय इन्द्राय सुमतिं सुष्टुतिं च प्रकृणुध्वं प्रकुरुत। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे इन्द्र ! चर्षणिप्राः कामैः प्रजानां पूरयिता त्वं पूर्वीः हविषां पूरयित्रीः विशः प्रजाः प्रचर अभिगच्छ ॥ ६ ॥

हे हमारे पुरुषों ! (वः) तुम (महेवृधे) बहुतसे धनोंकी वृद्धि करनेवाले (महे) महान् इन्द्रके अर्थ (प्रभरध्वम्) सोम अर्पण करो (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवान् इन्द्रके अर्थ (सुमतिम्) श्रेष्ठ स्तुति (प्रकृणुध्वम्) करो । हे इन्द्र ! (चर्षणिप्राः) मनोरथोंसे प्रजाओंको पूर्ण करनेवाले तुम (पूर्वीः) हवि समर्पण करनेवाली (विशः) प्रजाओंको (प्रचर) अभिमुख होकर प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३
शुनꣳ हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ ३ १ २
वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं
३ १ २ ३ २ ३ १ २
वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्र ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । हे इन्द्र ! वाजसातौ वाजस्यान्नस्य सातिर्लाभो यस्मिन् सोऽयं वाजसातिः तस्मिन् भरे बिभ्रति जयलक्ष्मीमनेन योद्धार इति भरः संग्रामः तस्मिन् संग्रामे शुनं शुनम् उत्साहेन प्रवृद्धं मघवानं धनवन्तम् अत एव इन्द्रं निरतिशयैश्वर्य्यसंपन्नं नृतमं सर्वस्य जगतोऽतिशयेन नेतारं त्वां हुवेम कुशिका वयं यज्ञार्थमाह्वयेम । तथा शृण्वन्तम् । उग्रं शत्रूणामुद्गूर्णम् । समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि वृत्रोपलक्षितानि सर्वाणि रक्षांसि घ्नन्तं हिंसन्तम् । धनानि शत्रुसम्बन्धीनि सञ्जितं सम्यग् जेतारं त्वाम् ऊतये रक्षणाय वयम् ह्वयेम ॥ ७ ॥

हम (वाजसातौ) अन्नकी प्राप्ति करानेवाले (अस्मिन्) इस (भरे) योधाओंको विजयलक्ष्मी प्राप्त करानेवाले संग्राम में (शुनम्) उत्साहसे बढ़े हुए (मघवानम्) धनवान् (नृतमम्) सकल जगत्के सर्वोपरि नेता (इन्द्रम्) इंद्रको (ह्वेम) यज्ञके निमित्त आह्वान् करते हैं । तथा (शृण्वन्तम्) हमारी स्तुतिको सुननेवाले (उग्रम्) शत्रुओंको भयदायक (समत्सु) संग्रामोंमें (वृत्राणि) राक्षसोंको (घ्नन्तम्) मारनेवाले (धनानि) शत्रुओं के धनोंको (सञ्जितम्) जीतनेवाले तुम्हे (ऊतये) रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥७॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रꣳ समर्य्ये महया
१ २र ३ १ २ ३ १ २
वशिष्ठ । आ यो विश्वानि श्रवसा ततानो-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
पश्रोता म ईवतो वचाꣳसि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वशिष्ठ ऋषिः । श्रवस्या अन्नेच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवींषि च इन्द्रार्थम् उदैरत सर्वे ऋषय इति शेषः । उ इति पूरणः हे

वसिष्ठ ! त्वमपि समर्ये यज्ञे इन्द्रं महय स्तोत्रेण हविषा च पूजय । अपि च य इन्द्रो विश्वानि भुवनानि श्रवसा अन्नेन कीर्त्या वा आततान । सः. ईवतः उपगमनवतो मे मम वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यानि उपश्रोता भवतु ॥ ८ ॥

(श्रवस्या) अन्नकी इच्छा करके (ब्रह्माणि) स्तोत्र और हवियों को सब ऋषि इन्द्रके अर्थ (उदीरत) अर्पण करो (वशिष्ठ) हे जितेन्द्रियोंमें प्रतिष्ठित तू भी (समर्ये) यज्ञमें (इन्द्रम्) इन्द्रको (महय) स्तोत्र और हविसे पूज और (यः) जो इन्द्र (विश्वानि) लोकोंको (श्रवसा) अन्न और कीर्त्तिसे (आततान) बढ़ाता हुआ वह (ईवतः) उपासना करने वाले (मे) मेरे (वचांसि) वचनोंको (उपश्रोता) सुनै ॥ ८ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्च-
३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १
च्छद्यात् । पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्व-
२र ३ १ २
दधा ओषधीषु ॥ ६ ॥

अथ नवमी । गौरिवीतिर्ऋषिः । अस्य इंद्रस्य चक्रम् आयुधम् अप्सु अन्तरिक्षे आ सर्वतो निषत्तं निषण्णमासीन्मेघहननार्थम् । उतो तत् अपि च अस्मै इन्द्राय मध्वित् उदकमपि चच्छद्यात् वशं नयति । पृथिव्याम् अतिषितं विमुक्तं यदूधः उदकमस्ति तत् पयोगोष्वोषधीषु च आदधा आदधाति ॥ ९ ॥

(अस्य) इस इन्द्रका (चक्रम्) आयुध (अप्सु) अन्तरिक्ष में (आ) सब ओर (निषत्तम्) मेघके हननके निमित्त स्थित था (उतो) और वह भी (अस्मै) इस इन्द्रके अर्थ (मध्वित्) जल को भी (चच्छद्यात्) वशमें करता है (पृथिव्यां) पृथिवीमें (अतिषितम्) छोड़ा हुआ (यदूधः) जो जल है वह (पयोगोषु) ओषधियोंमें (आदधाः) स्थापन करता है ॥ ९ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

---

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमू षु वाजिनं देवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳ
१ २ १ २ ३ १ २ ३ २
रथानाम् । अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳ

३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्वस्तये तार्द्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

अथैकादशे खण्डे—सैषा प्रथमा । तार्द्यपुत्रोऽरिष्टनेमिर्ऋषिः । त्यमु तं प्रसिद्धमेव तार्द्यं तृक्षपुत्रं सुपर्णं तृक्षशब्दो गर्गादिः स्वस्तये क्षेमाय इह अस्मिन् कर्मणि हुवेम भृशमाह्वयेमहि बहुलं छन्दसीति (६, १, ३४) ह्वयतेः सम्प्रसारणम् । लिङ्याशिष्यङ् (३, १, ८६) । यद्वा, प्रार्थनायां लिङि व्यत्ययेन शः (३, १, ८५) । कीदृशम् ? वाजिनम् अन्नवन्तं बलवन्तं वा देवजूतं देवैः सोमाहरणाय प्रेरितं जु इति गत्यर्थः सौत्रो धातुः अस्मात् कर्मणि क्तः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । यद्वा, देवैः प्रीयमाणं तर्प्यमाणम् । यदाह यास्कः, जूतिर्गतिः प्रीतिर्वा देवजूतं देवप्रीतं वेति सहोवानं सहस्वन्तं सहश्शब्दाद्वनिप् मत्वर्थीयः बलवन्तं वा । अतएव रथानाम् अस्मदीयानां तरुतारं संग्रामे तारकम् यद्वा, रंहरणशीला अमी इमे लोका रथाः तान् सोमाहरणसमये शीघ्रं तरीतारं श्रूयते हि एष हीमान् लोकान् सद्यस्तरतीति । तरतेस्तृचि ग्रसितस्कभितेत्यादौ (७, २, ३४) उडागमो निपात्यते अरिष्टनेमिं अहिंसितरथं यद्वा । नेमिर्नमनशीलमायुधम् अहिंसितायुधम् । अथवा उपचाराज्जनके जन्यशब्दः । अरिष्टनेमेर्मम जनकं पृतनाजं पृतनानां शत्रुसेनानां प्राजितारं प्रगमयितारं जेतारं वा अजगतिक्षेपणयोः । अस्मात् क्विप् । बलादावार्द्धधातुके विकल्प इष्यते (२, ४, ५६ वा०) इति वचनात् वीभावाभावः । यजतेर्वा डिप्रत्ययः आशुं शीघ्रगामिनम् ॥ १ ॥

(त्यम्) उस प्रसिद्ध (वाजिनम्) अन्नयुक्त वा बलवान् (देवजूतम्) सोम लानेके निमित्त देवताओंके प्रेरणा किये हुए (सहोवानम्) शक्तिमान् (रथानाम्) औरोंके रथोंको संग्राममें (तरुतारम्) तारनेवाले (अरिष्टनेमिम्) तीक्ष्ण आयुधवाले (पृतनाजम्) शत्रुसेनाओंको जीतनेवाले (आशुम्) शीघ्रगामी (तार्द्यम्) तृक्षसे उत्पन्न हुए सुपर्णको (स्वस्तये) कल्याणके लिये (इह) इस कर्ममें (हुवेम) वारंवार बुलाते हैं ॥ १ ॥

३ २३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ
२ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ र ३ २
शूरमिन्द्रम् । हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ

३ २ ३ १ २ ३ १ २
हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । त्रातारं शत्रुभ्यः पालयितारम् इन्द्रं हुवे आह्वयामि । तथा अवितारं कामैस्तर्पयितारमिन्द्रमाह्वयामि । हवे हवे सर्वेष्वाहवनेषु सुहवं सुखेनाह्वातुं शक्यम् । शूरं शौर्य्यवन्तं शक्रं सर्वकार्य्येषु शक्तं पुरुहूतं पुरुभिर्बहुभिः पालनार्थमाहूतम् । एवंविधमिन्द्रम् आहुवे आह्वयामि । एवमाहूतो मघवा धनवान् स इन्द्रः इदं पुरोवर्त्ति हविः वेतु भक्षयतु ॥ २ ॥

(त्रातारम्) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (हुवे) आह्वान करता हूँ (अवितारम्) मनोरथोंसे तृप्त करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्रको आव्हान करता हूँ (हवे हवे) सकल संग्रामोंमें (सुहवम्) सुख से बुलानेयोग्य (शूरम्) वीर (शक्रम्) सकल कार्योंमें समर्थ (पुरुहूतम्) जिसको अनेकोंने रक्षाके लिये बुलाया ऐसे (इन्द्रम्) इन्द्रको आह्वान करता हूँ (मघवान्) धनवान् वह इन्द्र (इदम्) इस (हविः) हविको (वेतु) भक्षण करे ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणꣳ हरीणाꣳ रथ्या३

१ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
विव्रतानाम् । प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि

२र ३ १ २ ३ १ २र
सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वसुक्रो विमदो वा ऋषिः । वयं इन्द्रं यजामहे सोमलक्षणैर्हविर्भिः पूजयामः । कीदृशं ? वज्रदक्षिणं शत्रुवधाय सततं वज्रो दक्षिणो हस्ते यस्य तम् । विव्रतानां रथवाहनादिर्विविधकर्मणां हरीणाम् एतत्संज्ञकानामश्वानां रथ्यम् आनेतारम् । स इन्द्रः सोमपानानन्तरं श्मश्रुभिः स्वकीयैः दोधुवत् पुनः पुनः धुन्वानः सन् ऊर्ध्वधाः ऊर्ध्वं बिभ्रत् विशेषेण प्रादुर्भवति । किञ्च । सेनाभिः मरुदादिभिः स्वकीयैः सैन्यैः भयमानः शत्रून् कम्पयन् राधसा द्वितीयार्थे तृतीया (३, १, ८५) राधो धनं वीत्युपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः विविधं स्तोतृभ्यो ददाति ॥ ३ ॥

(वज्रदक्षिणम्) दाहिने हाथमें वज्र धारण करनेवाले (विव्रतानाम्) रथोंको लेजाना आदि अनेकों कर्म करनेवाले (हरीणाम्) हरि

नामक घोड़ोंको (रथ्यम्) वशमें रखकर चलानेवाले (इन्द्रम्) इंद्र को (यजामहे) सोमरूप हवियोंसे पूजते हैं । वह इन्द्र सोमपानके अनंतर (श्मश्रुभिः दोधुवत्) अपनी दाढ़ीमूछोंको वार वार कंपाता हुआ (ऊर्ध्वधाः) ऊपर (विभुवत्) प्रकट होता है (सेनाभिः) और अपनी देवसेनाओंसे (भयमानः) शत्रुओंको भयभीत करता हुआ (राधसा) नाना प्रकारका धन (वि) स्तुति करनेवालोंको देता है ॥

३ २३ १ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ

३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

सुवज्रम् । हन्ता यो वृत्रꣳसनितोत वाजं दाता

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । एतदार्षिस्तृगां वामदेव ऋषिः । सत्राहणं बहूनां शत्रूणां हन्तारं दाधृषिम् अतिशयेन धर्षकम् । तुम्रं तुमिः प्रेरणकर्मा शत्रूणां प्रेरकम् । महां महान्तम् । अपारम् अपरिमाणं विनाशरहितमित्यर्थः । वृषभं कामानां वर्षितारम् । सुवज्रं शोभनेन वज्रेणोपेतमिन्द्रं वयं स्तोतारः स्तुम इति शेषः । य इन्द्रो वृत्रं वृत्रनामानमसुरं हन्ता हिंसिता भवति। उतापि च । य इन्द्रो वाजम् अन्नं सनिता दाता भवति। सुराधाः शोभनधनयुक्तो यो मघवेन्द्रः मघानि धनानि दाता भवति तमिन्द्रं स्तुम इति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्र सर्वत्र तृन्नन्तत्वात् न लोका-व्ययेत्यादिना (२, ३, ६९) षष्ठीप्रतिषेधे सति द्वितीयैव भवति ॥४॥

हम स्तुति करनेवाले (सत्राहणम्) अनेकों शत्रुओंको मारनेवाले (दाधृषिम्) अत्यन्त धमकानेवाले (तुम्रम्) शत्रुओंको भगानेवाले (महाम्) बड़े (अपारम्) विनाशरहित (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (सुवज्रम्) श्रेष्ठ वज्रको धारण करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रकी स्तुति करते हैं (यः) जो इन्द्र (वृत्रं हंता) वृत्रासुरका बध करता है (उत) और (वाजम् सनिता) अन्नका दाता होता है (सुराधाः) श्रेष्ठ धन वाला (मघवा) जो इन्द्र (मघानि दाता) धनोंका दाता होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १२ ३ १ २

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्य-

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

मानस्तुरो वा । क्षिधी युधा शवसा वा तमि-

३ १ २ ३ १ २
न्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। हे इन्द्र! यो मर्त्तो मनुष्यः नः अस्मान् वनुष्यन् हन्तुमिच्छन् अभि दाति आभिमुख्येनागच्छति। यो वा मन्यमानः आत्मानं बहु मन्यमानो मर्त्त्यः उगणा वा उत्कृष्टगणाः उद्गूर्णगणाः तुरो हिंसित्रीरस्मदीयाः प्रजाः अभिगच्छति। केन साधनेन हिंसिष्यन्? क्षिधी क्षिः क्षयो धीयते क्रियते अनेनेति क्षिधिः तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णः क्षयकरणेन युधा आयुधेन शवसा वेगेन बलेन वा आयाति। त्वोताः त्वया रक्षिताः वृषमणः वृषा इवाचरन्तो वयं तम् अभिष्याम अभिभवेम ॥ ५ ॥

(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हमें (वनुष्यन्) मारनेकी इच्छा करताहुआ (अभिदाति) चढ़ाई करके आता है और जो (मन्यमानः) अपनेको बहुत मानता हुआ मनुष्य (क्षिधी) क्षयकारी (युधा) आयुध लेकर (शवसा) वेगसे (उगणाः) श्रेष्ठ समूहरूप (तुरः) प्रहार करनेवाली हमारी प्रजाओंके ऊपर चढ़ाई करके आताहै (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा करेहुए (वृषमणः) वृषकी समान आचरण करतेहुए हम (तम्) उसको (अभिष्याम) तिरस्कृत करें ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३
यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो
१ २ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १
हवन्ते। य५ शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं
२र ३ १ २ ३ १ १२
विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वृत्रेषु आवरकेषु युद्धेषु स्पर्द्धमानाः क्रोधयुक्ताः क्षितयो मनुष्याः क्षयन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षितयो मनुष्याः यं इन्द्रं हवन्ते आह्वयन्ति युक्तेषु सन्नद्धेषु आयुधैर्युक्तेषु संग्रामेषु तुरयन्तः परस्परं हिंसन्तो जनाः यमाह्वयन्ति। शूरसातौ शूराणां सम्भजने यमाह्वयन्ति। युद्धजयार्थमिति शेषः। किञ्च। अपाम् उदकानां सातौ लाभे यम् उपज्मन् वृष्टिप्रदानार्थं यमुपगच्छन्ति आह्वयन्तीत्यर्थः विप्रासो विप्राः मेधाविनो यजमानाः यमिन्द्रं वाजयन्ते वाजिनं कुर्वन्ति हविर्भिर्बलिनं कुर्वन्ति स तादृश इन्द्रः ॥ ६ ॥

(वृत्रेषु) युद्धोंमें (स्पर्धमानाः) क्रोधयुक्त (क्षितयः) मनुष्य (यम्) जिसको (हवन्ते) पुकारते हैं (युक्तेषु) आयुध उठेहुए सं-

ग्रामोंमें (तुरयन्तः) परस्पर हिंसा करते हुए पुरुष (यम्) जिसको पुकारते हैं (शूरसातौ) योधाओंका विभाग होनेपर वा योधाओंकी प्राप्तिके लिये (यम्) जिसको पुकारते हैं (अपाम्) जलोंकी प्राप्तिके विषयमें (यम्) जिसको पुकारते हैं (उपज्मन्) वर्षाकी प्राप्तिके लिये (यम्) जिसकी शरणमें जाते हैं (विप्रासः) बुद्धिमान् यजमान (वाजयन्ते) जिसको हवि अर्पण करके बलवान् करते हैं (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ६ ॥

१ २ ३ ३ २र ३ २उ ३ १ २
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतꣳ
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीराः । वीतꣳ हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्द्धेथां
३ १ २र ३ १ २
गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्रः स्तौति । इन्द्रापर्वता इन्द्रश्च पर्वतश्च हे इन्द्रापर्वतौ ! बृहता महता रथेनागत्य वामी वननीयाः सुवीरा शोभनपुत्रोपेताः इषः अन्नानि आवहतम् अस्मदर्थं धारयतं प्रयच्छतमित्यर्थः। किञ्च । हे देवा देवौ द्योतमानौ ! हे इन्द्रापर्वतौ ! अध्वरेषु अस्मत् सम्बन्धियज्ञेषु हव्यानि हवनयोग्यानि पुरोडाशादीनि हवींषि वीतं भक्षयतम् । तथा इडया अस्माभिर्दत्तेनान्नेन मदन्ता हृष्यन्तौ युवां गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिरस्मदीयाभिर्वाग्भिः वर्द्धेथां प्रवृद्धौ भवतौ ॥७॥

(इन्द्रापर्वता) हे इन्द्र और पर्वत (बृहता) बडे (रथेन) रथ में आकर (वामी) प्रार्थना करनेयोग्य (सुवीराः) श्रेष्ठ पुत्रों सहित (इषः) अन्नोंको (आवहत) दो (देवा) हे प्रकाशवान् इन्द्र पर्वत (अध्वरेषु) हमारे यज्ञोंमें हवियोंको (वीत) भक्षण करो तथा (इडया) हमारे दियेहुए अन्नसे (मदन्ता) प्रसन्न होते हुए तुम (गीर्भिः) स्तुतिरूप हमारी वाणियोंसे (वर्द्धेथाम्) बढ़ो ॥ ७ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगर,
३ १ २ १ २र ३ २ ३ १ २ ३
स्य बुध्नात् । यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभि-
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
र्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । रेणुर्ऋषिः । इन्द्राय इन्द्रार्थम् अनिशितसर्गाः अनतनूकृतविसर्गाः उपर्युपरि वर्त्तमानाः याः गिरः स्तुतयः ताभिर्गीर्भिः सगरस्य अन्तरिक्षस्य बुध्नात् प्रदेशात् अपः उदकानि प्रैरयत् प्रेरयति यः इन्द्रः शचीभिः कर्मभिः पृथिवीम् उत अपि च । द्यां दिवं च चक्रियो रथचक्राणि अक्षेणेव यथा रथाक्षेण तद्वत् विष्वक् सर्वतः तस्तम्भ अस्तम्नात् ॥ ८ ॥

(इंद्राय) इंद्रके अर्थ (अनिशितसर्गाः) निरंतर उच्चस्वरसे उच्चारण की हुई जो (गिरः) स्तुतियें हैं उनसे (सगरस्य) अंतरिक्षके (बुध्नात्) स्थानसे (अपः) जलोंको (प्रैरयत्) प्रेरणा करता है (यः) जो इंद्र (शचीभिः) यज्ञादि कर्मोंसे (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोकको भी (चक्रियो अक्षेण इव) रथके पहिये जैसे धुरेसे थमे रहते हैं तैसे (विष्वक्) सब ओरसे (तस्तम्भ) स्तंभित करता हुआ ॥ ८ ॥

२ ३ १२ ३ १ २ ३२ ३ १ २
आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिद
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
र्णवां जगम्याः । पितुर्नपातमा दधीत वेधा
३ १ २र ३ १ २र
अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सखायः स्तोतारः सख्या सख्येन स्तुतिभिरित्यर्थः । ताभिः आ ववृत्युः अभिमुखं कुर्वन्ति यतस्त्वं तिरः तिर्यग्भूत्वा पुरु विस्तीर्णाम् अर्णावम् अन्तरिक्षं जगम्याः अगच्छः । चिच्छब्दः कारणपरः अथ परोक्षकृतः वेधा विधाता इंद्रः पितुः मदीयस्य नपातं पौत्रं मम पुत्रमित्यर्थः । तमादधीत प्रयच्छतु । कीदृशः ? अस्मिन् क्षये निवासभूते यज्ञे प्रतरां प्रकृष्टं दीद्यानः तेजसा दीप्यमान इंद्रः पुत्रं ददातु ॥ ९ ॥

हे इंद्र (सखायः) स्तोता (सख्या) प्रिय स्तुतियोंसे (त्वा) तुम्हें (आववृत्युः) अभिमुख करते हैं, क्योंकि तुम (तिरः) उडनेवाले होकर (पुरु) विस्तारवाले (अर्णवम्) अंतरिक्षमेंको (जगम्याः) चलेगए थे (अस्मिन्) इस (क्षये) निवासस्थानरूप यज्ञमें (प्रतराम्) अत्यन्त (दीद्यानः) तेजसे दमकता हुआ (वेधाः) विधाता इंद्र (पितुः) मेरे पिताके (नपातम्) पौत्रको अर्थात् मेरे पुत्रको (आदधीत) देय ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भामिनो दुर्हृणायून् । आसन्नेषामप्सुवाहो
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥

अथ दशमी । गोतम ऋषिः । अद्य अस्मिन् कर्मणि ऋतस्य यज्ञस्य गच्छत इन्द्रसम्बन्धिनो रथस्य धुरि अश्ववहनप्रदेशे गाः गतिमतोऽश्वान् एषामश्वानां सम्बन्धिनः प्रग्रहान्वा आसन् आस्येन तज्जनितेन स्तोत्रेण को युङ्क्ते को नाम नियोक्तुं शक्नोति न कोऽपीत्यर्थः । कीदृशानश्वान् ? । शिमीवतः वीर्यकर्मोपेतान् । भामिनः तेजसा युक्तान् दुर्हृणायून् परैर्दुःसहेन क्रोधेन युक्तान् हृणीयतिः क्रुध्यतिकर्मा (नै० २, १३) अप्सुवाहः आपः कर्माणि तेषु इन्द्रं वहन्तीति तान् मयोभून् मयसः सुखस्य भावयितॄन् । स्वकीयानां सुखप्रदानित्यर्थः । यो यजमानः एषां ईदृशानामश्वानां भृत्यां भरणक्रियां रथवहनक्रियाम् ऋणधत् समर्धयति स्तौतीति यावत् स ह यजमानो जीवात् जीवनवान् भवेत्॥यद्वा। कः इति प्रजापतिरुच्यते को ह वै नाम प्रजापतिः इति श्रुतेः ऋतस्य यज्ञस्य धुरि निर्वोढ़ गाः वेदरूपान् वाग्विशेषान् अद्य इदानीं युङ्क्ते संयोजयति कीदृशान् ? ।शिमीवतः प्रतिपाद्यैः कर्मभिर्युक्तान् भामिनः उज्ज्वलान् दुर्हृणायून् हृणीयतिर्हानिकर्मा । हातुमशक्यान् वेदाध्ययनस्य नित्यत्वात् एषां शब्दानाम् आत्मप्रतिपादकानाम् आसन् आस्यानि मुखवदाकारभूतानित्यर्थः । अप्सुवाहः अप्सु अन्तरिक्षे तदुपलक्षिते स्वर्गे वहन्ति यजमानं प्रापयन्ति तान् । मयोभून् मयसः अध्ययनप्रभवस्य सुखसाधनस्यादृष्टस्य भावयितॄन् । यो यजमानः एषां वचसां भृत्यां भरणक्रियां ऋणधत् ऋद्धिमतीं करोति स जीवात् स एव जीवति । अन्ये जीवन्मृता इत्यर्थः ॥ आसन्नेषामप्सुवाहः इति, आसन्निषून् हृत्स्वसः इति पाठौ ॥ १० ॥

(अद्य) आज इस कर्ममें (ऋतस्य) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके रथके (धुरि) जुएमें (गाः) जुड़े हुए (शिमीवतः) वीरताके काम करनेवाले (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) शत्रुओंके असह्य क्रोध से युक्त (अप्सुवाहः) यज्ञादि कर्मोंमें इन्द्रको लेजानेवाले (मयोभून्) सुखदायक अश्वोंको वा उनकी लगामोंको (आसन्) मुखसे उच्चारण कियेहुए स्तोत्रके द्वारा (कः) कौन (युङ्क्ते) नियुक्त करसका है

अर्थात् कोई नहीं रोक सकता (यः) जो यजमान (एषाम्) इन घोड़ों की (भृत्याम्) रथको लेजाने की क्रियाकी (अगृणधत्) स्तुति करता है (सः) वह यजमान (जीवात्) आयुष्मान् होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

इहाष्टाविंशतिर्ऋचो गायन्तित्वेत्यनुष्टुभः ।
यदीवहन्तीत्यनया स्तूयन्ते महतोऽत्र हि ॥
ईडितोऽग्निर्दधिक्रावा दधिक्रावण्णो इति ह्यृचा ।
ययाग्निरित्युपस्थेयं वेदवदेवीत्यमी इति ॥
शुक्रसामयोः स्तुतिर्ऋचसामेत्यैन्द्र्योऽपरा ऋचः ।
समाख्या प्राणभृन्न्यायादिति पूर्वमुदीरितम् ॥

अथ द्वादशे खण्डे—सैषा प्रथमा । मधुच्छन्दा ऋषिः । हे शतक्रतो बहुकर्मन् बहुप्रज्ञ वेन्द्र ! त्वा त्वां गायत्रिणः उद्गातारः गायन्ति स्तुवन्ति । अर्किणोऽर्चनहेतुमन्त्रयुक्ता होतारः अर्कम् अर्चनीयमिन्द्रं अर्चन्ति शस्त्रगतैर्मन्त्रैः प्रशंसन्ति । ब्रह्माणो ब्रह्मप्रभृतय इतरे ब्राह्मणाः त्वा त्वाम् उद्येमिरे उन्नतिं प्रापयन्ति । तत्र दृष्टान्तः, वंशमिव यथा वंशाग्रे नृत्यन्तः शिल्पिनः प्रौढं वंशम् उन्नतं कुर्वन्ति । यथा वा सन्मार्गवर्त्तिनः पुत्राः स्वकीयं कुलम् उन्नतं कुर्वन्ति तद्वत् । एतामृचं यास्क एवं व्याचष्टे, गायन्ति त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति तेऽर्कमर्किणो ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्येमिरे वंशमिव वंशो वनशयो भवति वननाच्छ्रूयत इति वा (५, ४,) इति ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (गायत्रिणः) उद्गाता (गायन्ति) स्तुति करते हैं (अर्किणः) पूजन के मन्त्र बोलते हुए होता (अर्कम्) पूजनीय इन्द्रकी (अर्चन्ति) मन्त्रों से प्रशंसा करते हैं (ब्रह्माणः) अन्य ब्राह्मण (वंशमिव) जैसे बांसकी नोकपर नाचनेवाले नट दृढ़ बांसको ऊँचा करते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (उद्येमिरे) उन्नति पर पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । जेता माधुच्छन्दसऋषिः । विश्वाः सर्वाः गिरः अस्मदीयाः स्तुतयः इन्द्रम् अवीवृधन् वर्द्धितवत्यः । कीदृशमिन्द्रं ? समुद्रव्यचसं समुद्रं व्याप्तवन्तम् । रथीनां रथयुक्तानां योद्धृणां मध्ये रथीतमम् अतिशयेन रथयुक्तं वाजानाम् अन्नानां पतिं स्वामिनम् सत्पतिं सतां सन्मार्गवर्त्तिनां पालकम् ॥ २ ॥

(विश्वाः) सकल (गिरः) हमारी स्तुतियोंने (समुद्रव्यचसम्) समुद्रकी समान महान् (रथीनाम्) योधाओं में (रथीतमम्) श्रेष्ठ योधा (वाजानाम्) अन्नोंके (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक (इन्द्रम्) इन्द्रको (अवीवृधन्) बढ़ाया ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इमामिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सदने ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोतमऋषिः । हे इंद्र ! सुतम् अभिषुतम् इमं सोमं पिब । कीदृशम् ? ज्येष्ठम् अतिशयेन प्रशस्यं मदं मदकरम् अमर्त्यम् अमारकं सोमपानजन्यो मदो मदान्तरवन्मारको न भवतीत्यर्थः । तथा ऋतस्य यज्ञस्य सम्बन्धिनि सदने गृहे वर्त्तमानस्य शुक्रस्य दीप्तस्यास्य सोमस्य धाराः त्वा अभ्यक्षरन् आभिमुख्येन सञ्चलन्ति त्वां प्राप्तुं स्वयमेवागच्छन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (इमम्) इस (ज्येष्ठम्) परम प्रशंसनीय (मदम्) आनन्ददायक (अमर्त्यम्) अन्य मदों की समान नष्ट न करने वाले (सुतम्) सम्पादन किये हुए सोमको (पिब) पियो (ऋतस्य) यज्ञ के (सदने) मण्डप में वर्त्तमान (शुक्रस्य) दीप्त सोमकी (धाराः) धाराएं (त्वा अभ्यक्षरन्) तुम्हारे अभिमुख होकर चली आरही हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३१२ ३ १ २

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अत्रिऋषिः । हे अद्रिवो ! वज्रवन् ! चित्र ! चायनी-

येन्द्र ! यद् इदं त्वादातं त्वया दातव्यं यद् राधः धनम् इह अस्मिन् लोके मे मम नास्ति तद्धनं हे विद्वसो ! लब्धधनेन्द्र ! नः अस्मभ्यम् उभया हस्त्या उभाभ्यां हस्ताभ्याम् आभर आहर । अत्र निरुक्तं, यदिन्द्र चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमस्ति यन्म इह नास्तीति वेति [४,४] द्रष्टव्यम् ॥ ४ ॥

(चित्र) विचित्र गुणसम्पन्न (अद्रिवः) वज्रधारी (विद्वसो) प्राप्तधन (इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) जो (त्वादातम्) तुम्हारे देने योग्य (राधः) धन (इह) इस लोकमें (मे) मेरे (नास्ति) नहीं है (तत्) वह धन (नः) हमें (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दो ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्य्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्य्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाꣳ असि ॥५॥

अथ पञ्चमी । तिरश्ची आङ्गिरस ऋषिः । हे इन्द्र ! यः त्वा त्वां सपर्य्यति सपरशब्दः कण्ड्वादिः हविर्भिः परिचरति तादृशस्य तिरश्च्या एतन्नामकस्य ऋषेर्मम हवं स्तुतिं श्रुधि शृणु । श्रुत्वा च हे इंद्र ! त्वं सुवीर्य्यस्य शोभनवीर्य्योपेतस्य । यद्वा, वीरे पुत्रे भवं वीर्य्यं सुपुत्रवतः । गोमतः गवादिपशुमतः । रायो धनस्य दानेन पूर्द्धि अस्मान् पूरय । एतत्सामर्थ्यं कुत इत्यत आह, त्वं महान् गुणाधिकः देवानां श्रेष्ठश्च असि भवसि खलु ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो (त्वा) तुम्हें (सपर्यति) हवियों से आराधन करता है उस (तिरश्च्या) मुझ तिरश्च्य की (हवम्) स्तुतिको (श्रुधि) सुनो और सुनकर तुम (सुवीर्यस्य) श्रेष्ठ वीरता वा श्रेष्ठ पुत्रों से युक्त (गोमतः) गौ आदि पशु सहित (रयः) धन देकर (पूर्द्धि) हमें पूर्ण करो (महान् असि) तुम सब देवताओं से गुणवान् हो ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्य्यो न रश्मिभिः

अथ षष्ठी । गोतम ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं सोमः असावि

अभिषुतोऽभूत् हे शविष्ठ ! अतिशयेन बलवन् ! अतएव धृष्णो शत्रूणां धर्षयितरिन्द्र ! आ गहि देवयजनदेशमागच्छ । आगतश्च त्वा त्वाम् इन्द्रियं सोमपानेनोत्पन्नं प्रभूतं सामर्थ्यम् आ पृणक्तु आ पूरयतु । रजः अन्तरिक्षं रश्मिभिः किरणैः सूर्य्यो न यथा सूर्य्यः पूरयति तद्वत्॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोमः) सोम (असावि) संपादन किया गया (शविष्ठ) हे परमबली ! (धृष्णो:) हे शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले (आगहि) इस देवयजन के स्थान में आओ (सूर्यः, रश्मिभिः, रजः, न) जैसे सूर्य किरणों से अन्तरिक्षको पूर्ण करता है, तैसे (इन्द्रियम्) सोमपान से उत्पन्न हुई बड़ीभारी शक्ति (त्वा) आयेहुए तुम्हें (आ पृणक्तु) पूर्ण करे ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

अथ सप्तमी । काण्वो निपातिथिर्ऋषिः। हे इंद्र ! कण्वस्य एतन्नामकस्य ऋषेः सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं प्रति हरिभिः अश्वैः उपायाहि आगच्छ। दिवो द्युलोकं द्वितीयार्थेषष्ठी(२,१,८५) अमुष्य अमुष्मिन्निन्द्रे शासतः शासति विभक्तिव्यत्ययः(३,१,८५)तत्र वयं सुखमास्महे। हे दिवावसो ! दीप्तहविष्केन्द्र ! दिवं स्वर्गं यय यूयं गच्छत बहुवचनं पूजार्थम् यद्वा, हे दिवावसो दिवो द्युनामकम् अमुष्य अमुं लोकं शासतः शासनं कुर्वन्तो यूयं दिवं स्वर्गं यय गच्छत अत्र बहुवचनं पूजार्थमित्यर्थः ॥७॥

(इंद्र) हे इन्द्र (कण्वस्य) कण्वकी (सुष्टुतिम्) श्रेष्ठ स्तुति के समीप (हरिभिः) अश्वों के द्वारा (उपायाहि) आइये (अमुष्य) इसके (दिवः) द्युलोकके (शासतः) शासन करने पर, हम सुख पाते हैं (दिवावसो) हे दीप्त हविवाले इंद्र ! (दिवम्) स्वर्ग को (यय) जाइये ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

अथ अष्टमी । अस्याः परस्याश्च तिरश्ची ऋषिः । गिर्वणः गीर्भिर्वननीय हे इंद्र ! सुतेषु सोमेषु अभिषुतेषु सत्सु गिरः अस्माकं स्तुति-

लक्षणा वाचः त्वा त्वाम् आ स्थुः अभिमुख्येन शीघ्रं गच्छन्ति तिष्ठन्ती त्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः, रथीरिव यथा रथवान् रथेन गच्छन् वीरः प्राप्यं देशं क्षिप्रं गच्छति तद्वत्। किञ्च। हे इन्द्र! अस्मदीया गिरः त्वा त्वाम् अभि लक्ष्य समनूषत सम्यक् शब्दायन्ते स्तुवन्तीत्यर्थः णु स्तवने। कुटादिः। तस्य लुङि रूपं तत्र दृष्टान्तः, वत्सन्नं धेनवः यथा धेनवः प्रीतियुक्ता गमनशीला वा गावः वत्समभिलक्ष्य हम्भारवा-दिशब्दं कुर्वन्ति तद्वत् ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) वेद मंत्रों से स्तुति करने योग्य हे इन्द्र! (सुतेषु) सोम रसोंका संपादन होने पर (गिरः) हमारी स्तुतिकी वाणियें (रथीरिव) जैसे रथी रथके द्वारा जाकर वीरों के पहुँचने योग्य स्थानपर पहुँच जाता है तैसे ही (त्वा आस्थुः) शीघ्र ही तुम्हारे अभि-मुख पहुँचती हैं। हे इंद्र! हमारी वाणियें (त्वा अभि) तुम्हारे अभि-मुख होकर (वत्सं, धेनवः गावः न) जैसे प्रेममें भरीं गौएं रम्भाती हुई बछड़े की ओर को जाती हैं तैसे (समनूषत) भले प्रकार स्तुति करती हैं ॥ ८ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु॥९॥

अथ नवमी। विश्वामित्र ऋषिः। अत्रेतिहासमाचक्षते, पुरा किलेन्द्रो वृत्रादिकानसुरान् हत्वा ब्रह्महत्यादिदोषेणात्मानमपरिशुद्धमित्यमन्यत तद्दोषपरिहाराय इन्द्र ऋषीनवोचत्—यूयम् अपूतं मां युष्मदीयेन साम्ना शुद्धं कुरुतेति। ततस्ते च शुद्धशुत्पादकेन साम्ना शस्त्रैश्च परि-शुद्धमकार्षुः। पश्चात् पूतायेन्द्राय यागादिकर्माणि सोमादीनि हवींषि च प्रादुरिति। एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे प्रतिपादितः इन्द्रो वा असु-रान् हत्वा पूत इवामेध्यो ऽमन्यत असौ अकामयत शुद्धमेव मा सन्तं शुद्धेन साम्ना स्तूयुरिति स ऋषीनब्रवीत् स्तुत मेति। ततः ऋषयः सामापश्यन् तेनास्तुवन् एतोन्विन्द्रमिति ततो वा इन्द्रः पूतः शुद्धो मेध्योऽभवत् इति। तथाच अस्या ऋचोऽयमर्थः—ऋषयः परस्परम् ब्रुवन्ति। नु क्षिप्रम् एत उ आगच्छतैव। आगत्य च शुद्धेन शुद्धत्वोत्पा-दकेन साम्ना। तथा शुद्धैः शुद्धिहेतुभिः उक्थैः शस्त्रैश्च इंद्रं शुद्धम् अपापिनं कृत्वा स्तवाम स्तुयाम। ततः साम्ना शस्त्रैः वावृध्वांसं ८ाप-

राहित्येन वर्द्धमानं तमिममिन्द्रम् शुद्धैः शुद्धयुत्पादकैः स्तोत्रैः क्रिया-विशेषैः वा आशीर्वान् आश्रयणावान् गव्यादिभिः संस्कृतः सोमः ममत्तु इन्द्रं मादयतु माद्यतेश्छान्दसः श्लुः ॥ शुद्धैराशीर्वान् शुद्धआ-शीर्वान्—इति पाठौ ॥ ९ ॥

पहिले किसी समय इन्द्रने वृत्रादि असुरोंका वध करके समझा कि-मैं ब्रह्महत्या आदिके दोषसे लिप्त होगया हूँ और उस दोषको दूर करनेके लिये इन्द्रने ऋषियोंसे कहा, कि-तुम मुझे अपने साम से शुद्ध करो,तब ऋषियोंने सामसे शुद्ध किया,फिर उस पवित्र हुए इंद्र को यज्ञादि कर्म में सोम आदि हवि दिया,यह तत्त्व शाट्यायनक ब्राह्मण में कहा है, यही विषय इस मंत्रसे सूचित होता है। ऋषियोंने परस्पर कहा, कि—(नु, एत, उ) शीघ्र ही आओ और आकर (शुद्धेन, साम्ना) शुद्धि करनेवाले साम के द्वारा (शुद्धैः, उक्थैः) तथा शुद्ध करनेवाले मंत्ररूप शस्त्रों से (शुद्धम्) शुद्ध हुए इन्द्रकी (स्तवाम) स्तुति करें, तदनन्तर (वावृध्वसम्) पापरहित होने के कारण बढ़े हुए उस इंद्रको (शुद्धैः) स्तोत्रों से (आशीर्वान्) गो दुग्धादि से संस्कार किया हुआ सोम (ममत्तु) आनन्ददायक होय ॥ ९ ॥

२ ३१ २ ३१ २ १ ३ ३ २ ३ १ २
यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १० ॥

अथ दशमी । शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । हे इन्द्र ! यः सोमः वः वच-नव्यत्ययः—(३, १, ८,) तव परिचारकेभ्यः स्तोतृभ्यः रयिं धनं प्रय-च्छतीति शेषः । कीदृशः रयिन्तमः अतिशयेन रयिमान् । यश्च द्युम्नैः द्योतमानैर्यशोभिर्द्युमत्तमोऽतिशयेन यशस्वी । हे स्वधापते ! स्वधाया अन्नस्य सोमलक्षणस्य पालकेन्द्र ! स सोमः अभिषुतः सन् ते तव मदः मदकरः अस्ति भवति ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो (रयिन्तमः) अत्यन्त धनवान् है (यः) जो (द्युम्नैः) प्रकाशवान् यशों से (द्युम्नवत्तमः) परम-यशस्वी है (सः) वह (सोमः) सोम (वः) तुम्हारे उपासकोंको (रयिम्) धन देता है (स्वधापते) हे सोमरूप अन्नके पालक इंद्र! (सुतः) अभिषुत होनेपर वह सोम (ते) तुम्हारा (मदः) मदकारी (अस्ति) होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः, तृतीयाध्यायश्च समाप्तः ॥

* श्रीः *

अथ चतुर्थाध्याय आरभ्यते ।

अस्मिन्नध्यायेऽपि इन्द्रः स्तूयते ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

तत्र प्रथमखण्डे—सैषा प्रथमा । भरद्वाज ऋषिः । हे अध्वर्यो ! नरः कर्मणि नेतस्त्वं अस्मै इन्द्राय प्रतिभर प्रतिहर सोमं प्रयच्छेत्यर्थः । कीदृशायेन्द्राय ? पिपीषते पातुमिच्छते । विश्वानि सर्वाणि येद्यानि विदुषे जानते अरङ्गमाय पर्याप्तगमनाय । जग्मये यज्ञेषु गमनशीलाय अपश्चादध्वने दधिर्गतिकर्मा अपश्चादूगमनाय सर्वेषामग्रगामिने नरः नृशब्दाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ङसि ऋलो गुणश्छान्दसः ! नरे कमर्यान्नेत्रे । अतएव बह्वृचा अपश्चाद्दध्वने नरे इति चतुर्थ्यन्तत्वेनामनन्ति ॥ १ ॥

हे अध्वर्यो (नरः) कर्ममें नेता तुम (अस्मै) इस (पिपीषते) सोमको पीनेकी इच्छा करनेवाले (विश्वानि) सकल जाननेयोग्य वस्तुओंको (विदुषे) जाननेवाले (अरङ्गमाय) ठीक २ पहुँचनेवाले (जग्मये) यज्ञोंमें जानेवाले (अपश्चादध्वने) सबसे आगे पहुँचने वाले इन्द्रको (प्रति भर) सोम अर्पण करो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ नो वयोवयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं
३ २ ३ २उ ३ १ २
पूर्विनेष्ठाम् । उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेवः शाकपूतो वा ऋषि । हे वयस्य ! मित्रभूतेन्द्र ! अयम ईदृशस्त्वं महान्तं महत्प्रभूतं गह्वरेष्ठां गिरिगुहादौ वर्त्तमानं नः अस्मदीयं वयः सोमलक्षणमन्नम आ हर उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः आहृत्य महान्तं महत्प्रभूतं पूर्विनेष्ठां पूर्वभावौ

संसारे प्रवर्त्तमानम् । उग्रं क्षुत्पिपासानिमित्तेन भयङ्करम् । वचः अस्मदीयं वचनम् "अशनायापिपासे ह स्वा उग्रं वचः" इति श्रुतेः । अपावधीः अपजहि, देवत्वं प्रापयेत्यर्थः तत् प्राप्नोत्यशनायापिपासे निवर्त्तेते । "न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति" इति श्रुतेः ॥ २ ॥

(वयस्य) हे मित्ररूप इन्द्र (अयम्) ऐसा तू (महान्तम्) बहुत से (गृहरेष्ठम्) पर्वतकी गुफामें वर्त्तमान (नः) हमारे (वयः) सोमरूप अन्नको (आ हर) लाकर (महान्तम्) बहुतसे (पूर्विनिष्ठाम्) पहिलेही संसारमें वर्त्तमान (उग्रम्) भूख प्यासके कारण भयानक (वचः) हमारे वचनको (अपावधीः) नष्ट करो अर्थात् हमें देवयोनि में पहुँचाओ ॥ २ ॥

२ ३ २३ २३ १२ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
३ १ २३ २३ ३ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रꣳ शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

अथ तृतीया । प्रियमेधऋषिः हे इन्द्र ! त्वा त्वाम् आवर्त्तयामसि आवर्त्तयामः । किमर्थम् ? ऊतये अस्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखाय च । किमिव ? रथं यथा ऊतये सुखाय चावर्त्तयन्ति तद्वत् ! हे शविष्ठ! बलवत्तमेन्द्र ! तुविकूर्मिं बहुकर्माणम् ऋतीषहम् हिंसकानामभिभवितारम् । सत्पतिं सतां पालकमिन्द्रं त्वामिति समन्वयः ॥ ३ ॥

(शविष्ठ) हे परमबली इन्द्र ! (ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (सुम्नाय) सुखके लिये (रथं यथा) जैसे रथको भ्रमण कराते हैं तैसे (तुविकूर्मिम्) विचित्रपराक्रमी (ऋतीषहम्) हिंसकोंका तिरस्कार करनेवाले (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक (त्वा इन्द्रम्) तुम इन्द्रको (वर्त्तयामसि) भ्रमण कराते हैं ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

अथ चतुर्थी । प्रगाथ ऋषिः । स इन्द्रः पूर्व्यो मुख्यः महोनां पूज्यानां यजमानानां क्रतुभिः यज्ञैर्निमित्तभूतैः वेनः कान्तः तेषां हविः कामयमानः आनजे आगच्छति । यस्य इन्द्रस्य द्वारा द्वाराणि प्राप्त्युपायानि धियः कर्माणि देवेषु एतेषु मध्ये पिता सर्वेषां पालकः मनुः आनजे प्रापयति नजिः प्राप्तिकर्मा । महोनां महानाम् इति पाठौ ॥४ ॥

(सः) वह इंद्र (पूर्व्यः) मुख्य (महोनाम) पूज्य यजमानोंके (क्रतुभिः) यज्ञोंके द्वारा (वेनः) उनके हवियोंको चाहता हुआ (आनजे) आता है (यस्य) जिस इंद्रके (द्वारा) प्राप्तिके उपाय रूप (धियः) कर्मोंको (देवेषु-पिता) देवताओंमें सबका पालक (मनुः) मनु (आनजे) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ २३ २

यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।

१ २ ३ २र ३ २३ १ २

पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५॥

अथ पञ्चमी । श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । हे इन्द्र ! यदि यत्र यस्मिन् यज्ञे रथेषु भ्राजमानाः दीप्यमाना आशवः क्षिप्रगामिनस्त्वदीया महतः आवहन्ति । यत्र आभिमुख्येन त्वां प्रापयन्ति तत्र तस्मिन् यज्ञे मदिरं मदकरं मधु उदकादिरसविशेषितं सोमलक्षणमन्नं वा पिबन्तः श्रवांसि अन्नानि कृण्वते वृष्टिद्वारा कुर्वन्ति । यद्वा अस्मिन् यज्ञे भ्राजमानाः दीप्यमानाः आशवः शीघ्रगामिनः मदिरं मदकरं मधु सोमं पिबन्तः पास्यन्त ऋत्विग्यजमानाः रथेषु सोममावहन्ति तत्र तस्मिन् यज्ञे श्रवांसि अभिषवादिकर्मभिः प्रशस्तान्यन्नानि कृण्वते कुर्वन्ति ॥ ५ ॥

(यदि) जिस यज्ञमें (रथेषु) रथोंमें (भ्राजमानाः) दीप्यमान (आशवः) शीघ्रगामी तुम्हारे मरुत (आवहन्ति) तुम्हें अभिमुख करके पहुँचाते हैं (तत्र) तिस यज्ञमें (मदिरम्) मदकारी (मधु) रसीले सोमको (पिबन्तः) पीतेहुए (श्रवांसि) अन्नोंको (कृण्वते) वृष्टि के द्वारा उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं विश्वासाहं नरꣳ शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

अथ षष्ठी । शंयुर्ऋषिः हे ऋत्विग्यजमानाः वो युष्मदर्थं त्यम् तमेवेन्द्रं गृणीषे स्तौमि । यद्वा, वो यूयं गृणीत स्तुत । वचनव्यत्ययः । कीदृशमिन्द्रम् ? अप्रहणम् अप्रहर्त्तारं भक्तानामनुग्राहकम् । शवसो बलस्य पतिं पालकम् । विश्वासाहं विश्वस्य शत्रोरभिभवितारं नरं नेतारं शचिष्ठं यज्ञादिकर्मसुस्थितम् । विश्ववेदसम् विश्वं वेदो धनं यस्यासौ विश्ववेदाः तम् ॥ ६ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे अर्थ (त्यमु) उन ही (अप्रहणम्) भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले (शवसः) बलके (पतिम्) पालक (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (नरम्) नेता (शचिष्ठम्) यज्ञादि कर्ममें स्थित (विश्ववेदसम्) विश्व ही है धन जिनका ऐसे इन्द्रकी (गृणीषे) स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

१ १ ३ ३ १ २र ३ १ ३
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वामदेव ऋषिः दधिक्रावाऽग्निविशेषः । स चाश्वरूपः अग्निर्देवेभ्योनिलीयत अश्वो रूपं कृत्वा यदश्वेत्यतिष्ठत् इत्यादि अध्वर्युब्राह्मणमनुसन्धेयम् । दधिक्राव्णो देवस्य स्तुतिं अकारिषं करवाणि । जिष्णोः जयशीलस्य अश्वस्य तद्रूपस्य वाजिनो वेगवतः । स देवो नोऽस्माकं मुखा मुखानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि सुरभि सुरभीणि करत् करोतु । नोऽस्मभ्यम् आयूंषि प्रतारिषत् प्रवर्द्धयन्तु प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्द्धनार्थः ॥ ७ ॥

(जिष्णोः) जयशील (अश्वस्य) अश्वरूपधारी (वाजिनः) वेगवान् (दधिक्राव्णः) दधिक्रावा नामक अग्निदेवताकी स्तुतिको (अकारिषम्) करता हूँ, वह अग्निदेव (नः) हमारी (मुखा) मुख आदि इन्द्रियोंको (सुरभि) शक्तिसम्पन्न (करत्) करे (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओंको (प्रतारिषत्) बढ़ावे ॥ ७ ॥

३२ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । जेता माधुच्छन्दसः ऋषिः । अयम् इन्द्रः उच्यमानगुणयुक्तः अजायत संपन्नः कीदृग्गुणक इति तदुच्यते पुरां पुराणां भिंदुः भेत्ता युवा अत्यधिकेऽपि वलीपलितादिवार्द्धक्यरहितः । कविः मेधावी अमितौजा प्रभूतबलः विश्वस्य कर्मणः कृत्स्नस्य ज्योतिष्टोमादेः धर्त्ता पोषकः वज्री यजमानरक्षणार्थं सर्वदा वज्रयुक्तः पुरुष्टुतः बहुभिर्होत्रादिभिस्तत्तत्कर्मणि स्तुतः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) वह इन्द्र (पुराम्) शत्रुओं के नगरोंका (भिन्दुः) तोड़ने वाला (युवा) सदा तरुण (कविः) बुद्धिमान् (अमितौजाः) परमबली (विश्वकर्मणः) सकल कर्मकारयिता (धर्ता) पोषणकर्त्ता (वज्री) यजमानकी रक्षार्थ सदा वज्र धारण करनेवाला (पुरुष्टुतः) अनेकोंसे स्तुति किया जानेवाला (अजायत) हुआ ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे—सैषा प्रथमा । प्रियमेधा ऋषिः । हे अध्वर्य्वादयः ! वो यूयं प्रथमार्थे द्वितीया । त्रिष्टुभं स्तोभत्रयोपेतम् इषम् अन्नं प्र प्र अपरः प्रशब्दः पूरणः । भरतेति शेषः । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । कस्मै वन्दद्वीराय यो वीरान् स्तौति स वन्दद्वीरः तस्मै इन्दवे इन्द्राय । इन्दतेरैश्वर्य्यैकर्मणः इदं रूपम् । अथवा फलैर्वृष्टिभिर्वा उनत्तीतीन्दुरिन्द्रः तस्मै । स चेन्द्रो वो युष्मान् मेधसातये यज्ञसम्भजनाय पुरन्ध्या बहुप्रज्ञया धिया कर्मणा आ विवासति परिचरति अभिमतफलयोजनेन सत्करोतीत्यर्थः ।

हे अध्वर्यु आदिकों ! (वः) तुम (त्रिष्टुभम्) तीन स्तोभोंसे युक्त (इषम्) अन्नको (वन्दद्वीराय) वीरोंकी प्रशंसा करनेवाले (इंदवे) इंद्रके अर्थ (प्र प्र) पहुँचाओ, और वह इंद्र (वः) तुम्हें (मेधसातये) यज्ञानुष्ठानके निमित्त (पुरन्ध्या) परमप्रज्ञायुक्त (धिया) कर्म से (आविवासति) परिचर्या करता है अर्थात् इच्छित फल देकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेव ऋषिः । पश्यतीति कश्यपः । कश्यपः पश्यको भवति इति श्रुत्यन्तरम् । तस्य कश्यपस्य सर्वज्ञस्येन्द्रस्य संबंधिनौ यौ अश्वौ । ययोः च विश्वं सर्वम् अपि व्रतं कर्म यज्ञं प्रति यजनीयदेशं प्रतीत्येवं निचाय्य निश्चित्य सयुजौ सहैव युञ्जाते इति स्वर्वि-

दः स्वर्गं लब्धवन्तो धीराः जनाः आहुः । अथवा कश्यपः प्रजापतिः कश्यपोऽष्टमः स महामेरुं न जहातीति श्रुत्यन्तरात् तस्य स्वर्विदः सर्वं पश्यतः यौ देवौ सयुजौ सहचरौ जना आहुः वेदविदस्तौ मित्रावरुणौ । अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः इत्यैतरेयब्राह्मणम् । सर्वस्य कार्यस्य तयोरेवान्तर्भावात् इन्द्राग्नी वा देवौ तयोरेव सर्वनिर्वाहकत्वात् तदभिप्रायेणेयमृक् मैत्रावरुणी ऐन्द्राग्नी वेति पूर्वमभिहितम् ॥ २ ॥

(कश्यपस्य) सर्वज्ञ इन्द्रके (यौ) जो अश्व हैं (ययोः) जिन अश्वों का (विश्वम्, अपि) सबही (व्रतम्) कर्म (यज्ञम्) यज्ञके प्रति हे (इति) ऐसा (निचाय्य) निश्चय करकै (सयुजौ) साथ ही जोड़े जाते हैं ऐसा (स्वर्विदः) स्वर्गको पानेवाले (धीराः) पुरुष (आहुः) कहते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३क २र

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । प्रियमेधा ऋषिः । हे नरः कर्मणां नेतारोऽध्वर्य्वादयः ! यूयम् इन्द्रम् अर्चत पूजयत स्तुत्या प्रार्चत प्रकर्षेणार्चतेन्द्रमेव हे प्रियमेधासः ! प्रियमेधसम्बधिनस्तद्गोत्रा यूयम् अर्चतेन्द्रम् । पुत्रकाः पुत्रा अप्यर्चन्त्विन्द्रम् । उत अपिच पुरमित् पुरमेव स्तोतृणामभिमतस्य पूरकम् । धृष्णु धर्षणशीलं तादृशमिन्द्रम् अर्चत ॥ ३ ॥

(नरः) हे कर्मों के नेता अध्वर्यु आदिकों ! तुम (अर्चत) इंद्रकी पूजा करो (प्रार्चत) विशेषरूप से पूजा करो (प्रियमेधासः) हे यज्ञके प्रेमियों ! (अर्चत) पूजो (उत) और (पुत्रकाः) हे पुत्रों ! (पुरमित्) भक्तों के मनोरथोंको अवश्य ही पूर्ण करनेवाले (धृष्णु) शत्रुओंको धमकानेवाले इन्द्रको (अर्चन्तु, अर्चत) वारंवार पूजन करो ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्द्धनं पुरुनिःषिधे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्राय इन्द्रार्थं वर्द्धनं वृद्धिसाधनम् उक्थं शस्त्रं शस्यम् अस्माभिः शंसनीयम् । कीदृशायेन्द्राय पुरुनिःषिधे पुरूणां बहूनां शत्रूणां निषेधकारिणे । शक्रः इन्द्रो नो

ऽस्मदीयेषु सुतेषु पुत्रेषु सख्येषु च सखित्वेष्वपि यथा येन प्रकारेण रारणात् अतिशयेन शब्दं कुर्यात् तथा शंस्यमिति पूर्वत्रान्वयः। अस्मदीयेन शस्त्रेण परितुष्ट इन्द्रः नोऽस्माकं पुत्रान् अस्मत्सख्यानि च बहुधा प्रशंसत्वित्यर्थः ॥ ४ ॥

(पुरुनिःषिधे) अनेकों शत्रुओंका नाश करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (वर्द्धनम्) वृद्धिका साधन (उक्थम्) मंत्ररूप शस्त्र (शक्रः) इन्द्र (नः) हमारे (सुतेषु) पुत्रोंमें (च) और (सख्येषु) मित्रोंमें (यथा) जिसप्रकार (रारणत्) अत्यन्त शब्द करे, तिसप्रकार (शंस्यम्) प्रशंसा करने योग्य है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । त्रिषमेध ऋषिः । विश्वानरस्य विश्वान् शत्रून् प्रत्यृतस्य अनानतस्य शत्रूणामप्रह्वस्य शवसो बलस्य पतिं स्वामिनमिन्द्रं वा अत्र इन्द्रसम्बन्धिनो मरुतोऽपि सङ्कीर्त्यन्ते हे मरुतः! वो युष्माकमित्यर्थः यद्यपि मरुत्संशब्दनं नास्ति तथापि व इति सामर्थ्याल्लभ्यते युष्माकं चर्षणीनाम् सैनिकानाम् एवैः गमनैः सह यद्वा। चर्षणीनामिन्द्रस्य सेनारूपाणां वो युष्माकं गमनैरिति सामानाधिकरण्यं युष्माकं रथानां च ऊती ऊतिभिर्गमनैश्च सह हुवे आह्वयामि। गन्तृभी रथैर्गन्तृभिर्नरैश्च सहेन्द्रं हुवे इत्यर्थः॥ यद्वा। हे यजमानाः! युष्मदीय सैनिकानां रथा यदा प्रतिशान्ति युद्धाय स्वसङ्ग्रामं तदानीं तेषां साहाय्यायेन्द्रं हुवे इत्यर्थः ॥ ५ ॥

(विश्वानरस्य) शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करनेवाले (अनानतस्य) शत्रुओंसे न नमनेवाले (शवसः) बलके (पतिम्) स्वामी इन्द्रको हे मरुतों! (वः) तुम्हारे (चर्षणीनाम्) सैनिकोंके (एवैः) गमनो सहित (रथानाम्) रथों की (ऊती) रक्षाके निमित्त (हुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥

१ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्त्तस्य शमतः।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ६

अथ षष्ठी । भरद्वाजऋषिः। शमतः कर्मानुष्ठानेन शान्तस्य वृत्तस्य निजमार्गवर्त्तिन इत्यर्थः । मर्त्तस्य मनुष्यस्य मध्ये जात्येकवचनं दिवो द्योतनादिगुणकस्य ते तव धिया कर्मणा स्तुत्या नरः मनुष्यः सखा स्तोता भवति सः नरः । यः बृहतो महतो द्विवो दीप्तस्य तव सम्बन्धिन्या ऊती ऊत्या रक्षया द्विषो द्वेष्टॄन् अंहो न आहननशीलं पापमिव तरति अतिक्रामति ॥ ६ ॥

(शमतः)कर्मानुष्ठान से शान्त अपने मार्गमें चलनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्योंमें (दिवः) द्योतन आदि गुणयुक्त (ते) तुम्हारा (धिया) स्तुति करनेसे (नरः) मनुष्य (सखा) स्तोता होता है (सः) वह मनुष्य (यः) जो (बृहतः) महान् (दिवः) प्रकाशवान् तुम्हारी (ऊती) रक्षासे (द्विषः) शत्रुओंको (अंहो न) पापकी समान (तरति) लाँघजाता है ॥ ६ ॥

३ १२ ३ १२ ३ २ ३ १ २
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नꣳ सुदत्र मꣳहय ७

अथ सप्तमी । अत्रिर्ऋषिः । हे शतक्रतो । बहुकर्मन्निन्द्र ! विभोः प्रभूतस्य राधसो धनस्य ते तव रातिः दानं विभ्वी महती अथ अतः कारणात् हे विश्वचर्षणे ! सर्वस्य द्रष्टः सुदत्र कल्याणदानेन्द्र ! नोऽस्मभ्यं द्युम्नं धनं मंहय प्रयच्छ ॥ ७ ॥

(शतक्रतो इन्द्र) हे विविधपराक्रमी इन्द्र ! (विभोः) बहुत से (राधसः) धनका (ते) तुम्हारा (रातिः) दान (विभ्वा) बड़ाभारी है (अथ) इस कारण (विश्वचर्षणे) सबके द्रष्टा (सुदत्र) मङ्गलमय दान करनेवाले हे इन्द्र ! (नः) हमें (द्युम्नम्) धन (मंहय) दीजिये॥७॥

१ २ १ २ ३ १ २र
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूꣳरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । प्रस्कण्व ऋषिः । हे अर्जुनि ! शुभ्रवर्णे ! उषः उषोदेवते ! ते तव ऋतूननु गमनान्यनुलक्ष्य द्विपात् मनुष्यादिकं चतुष्पाद् गवादिकं तथा पतत्रिणः पतत्रवन्तः पक्षोपेताःवयश्चित् पक्षिणश्च दिवो अन्तेभ्यः आकाशप्रान्तेभ्यः परि उपरि प्रारन् प्रकर्षेण गच्छन्ति ।

रात्रावन्धकारेणाभिभूताः सर्व प्राणिनस्त्वदागमनानन्तरञ्चेष्टावन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ ८॥

(अर्जुनि उषः) हे शुभ्रवर्णा उषा देवते ! (ते) तेरे (ऋतून् अनु) सर्वत्र प्रकाशरूप गमनके अनन्तर (द्विपात्) मनुष्य आदि (चतुष्पाद्) गौ आदि (पतत्रिणः) परोंवाले (वयश्चित्) पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः) आकाशके प्रान्तोंसे (परि) ऊपर (प्रारन्) यथेच्छ विचरते हैं ॥ ८ ॥

३ १ २र३ २ ३ । २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

कद्ध ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । आप्त्यस्त्रित ऋषिः । हे देवाः ! इन्द्रादयः ये ऽमी यूयं दिवो दीप्तस्य सूर्यस्य आरोचने दीप्तिविषये मध्ये अन्तरिक्षलोके स्थ भवथ सूर्यप्रकाश्यस्थाने इत्यर्थः । तेषां वो युष्माकं सम्बन्धि स्तोत्रविषयम् ऋतं सत्यं कत् कस्मिन् देशे वर्त्तते ? अमृतं नकारस्य स्थाने मकारः । अनृतं कत् कुत्रास्ति ? वो युष्मदीया प्रत्ना पुराणी आहुतिः का कीदृशी ? युष्मदीयं दानं किमभूदित्यर्थः । ईदृग्भूतदुःखानुभवेन मया पूर्वमनुष्ठितो यागसमूहो युष्मान् न प्राप्तोदित्यनुमिमे ॥ ९ ॥

(देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! (ये) जो (अमी) यह तुम (दिवः) दीप्त सूर्यके (आरोचने) प्रकाशित होने पर (मध्ये) अन्तरिक्षलोक में (स्थन) होते हो ऐसे (वः) तुम्हारे स्तोत्रके विषय का (ऋतम्) सत्य (कत्) कहां है (अनृतम्) अनृत (कत्) कहां है (वः) तुम्हारी (प्रत्ना) पुरातन (आहुतिः) आहुति (का) कौनसी है अर्थात् तुम्हारा दान क्या हुआ ? ऐसे दुःखके अनुभव से मुझे अनुमान होता है कि-मेरे कियेहुए यज्ञ तुम्हें प्राप्त नहीं हुए ॥९॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ऋचꣳ साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।

१ २र ३ २ ३ १२

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । याभ्याम् ऋक्सामाभ्यां कर्माणि शस्त्रस्तोत्रप्रमुखानि कृण्वते होतार उद्गातार कुर्वन्ति । ताम् ऋचं तत् साम च यजामहे वयं पूजयामः ते ऋक्सामे सदसि ऋत्विक्-

समूहे सदोमण्डपे विराजतः स्तोत्रशस्त्ररूपेण विशेषेण प्रकाशयतः। ते च ऋक्सामे देवते देवेषु इन्द्रादिषु यज्ञं वक्षतः प्रापयतः ॥ १० ॥

होता और उद्गाता (याभ्याम्) जिन ऋक् और सामसे (कर्माणि) स्तोत्र आदि कर्मानुष्ठान (कृण्वते) करते हैं (ऋचं साम) उस ऋचा और सामका (यजामहे) हम पूजन करते हैं (ते) वह ऋक् साम (सदसि) ऋत्विक्सभामें (विराजतः) स्तोत्रादिरूपसे प्रकाशित होते हैं (देवेषु) इन्द्रादि देवताओं में (यज्ञम्) यज्ञीयभागको (वक्षतः) पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्त. ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिंद्रं जज-
१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
नुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं
३ १ २ ३ १ २
तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

सन्त्येकादश या विश्वाः पृतना इति सम्मताः ।
जगत्य ऐन्द्र्यो रोदस्योः स्तुतिर्घृतवती इति ।
उभे यदिन्द्ररोदसी महापंक्तिरितीरिता ॥

अथ तृतीयखण्डे—सैषा प्रथमा । रेभ ऋषिः । विश्वाः सर्वाः व्याप्ता वा पृतनाः पृङ् व्यायामे (तु० आ०) व्याप्रियन्त इति पृतना सेनाः नरो नेतारः सजूः परस्परं सङ्गताः सन्तः अभिभूतरं शत्रूणामत्यर्थमभिभावितारम् इन्द्रं ततक्षुः आयुधादिभिस्तीक्ष्णीचक्रुः आयुधवन्तं चक्रुरित्यर्थः । यद्वा पृतना इति संग्राममनाम (नि० २, १७) व्याप्रियन्ते अत्रेति पृतनाः संग्रामाःसर्वानेव संग्रामानभिभावुकमिन्द्रं नरो नेतारोऽन्ये स्तोतारः अन्योन्यं सङ्गताः स्तुतिभिस्तीक्ष्णमकुर्वन्। यद्वा यष्टारो हविःप्रदानेन वीर्यवन्तं कुर्वन्तीति । किञ्च स्तोतारः राजसे राजतेस्तुमर्थे असेप्रत्ययः आत्मनो विराजनार्थं प्रकाशनार्थं सूर्यात्मानमिन्द्रं जजनुः जनयामासुः स्तोत्रशस्त्रैः स्वपक्षे प्रादुरभावयन्नित्यर्थः उत अपिच क्रत्वे स्वकीयवृत्रवधादिकर्मणे वरे श्रेष्ठ स्थेमनि स्थिरशब्दादिमनिच् (५, १, १२२) स्थैर्ययुक्ते स्थाने स्थितम् आमुरिं शत्रूणां मारयितारमिन्द्रम् आत्मनां धनलाभार्थं स्तोतारः स्तुवन्तीत्यर्थः । कीदृशम् ? उग्रम् उद्गूर्णबलम् अतएव ओजिष्ठम् ओजस्वितमम् तरो बलं तद्वन्तं तरस्विनम् संग्रामे शत्रुवधार्थं बलवन्तं वेगवन्तं वा॥१॥

(विश्वा) बहुतसी फैली हुई (नरः) चढ़ाई करनेवालीं (पृतनाः) सेनायें (सजूः) परस्पर इकट्ठी होकर (अभिभूतरम्) शत्रुओंका अत्यंत तिरस्कार करनेवाले (इंद्रम्) इन्द्रको (ततक्षुः) आयुधवाला करती हुई (च) और स्तोता (राजसे) अपने प्रकाशके अर्थ सूर्यात्मा इंद्रको (अजनुः) स्तोत्र आदिके द्वारा अपने यज्ञमें प्रकट करतेहुए (उत) और (क्रत्वे) अपने वृत्रवध आदि कर्मके अर्थ (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थिर स्थानपर स्थित (आमुरीम्) शत्रुओंको मारनेवाला (उग्रम्) तीव्रस्वभाव (ओजिष्ठम्) परमतेजस्वी (तरसम्) बली (तरस्विनम्) वेगवान् इंद्रकी धनप्राप्तिके लिये स्तुति करते हैं ॥८॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २

श्रत्ते दधामि पथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्

३ १ २

पृथिवी चिदद्रिवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सुवेदः शैलूषिर्ऋषिः । हे अद्रिवः ! वज्रवन्निन्द्र ! ते तव मन्यवे कोपाय तेजसे वा प्रथमाय मुख्याय श्रद्दधामि श्रद्धामाद्रातिशयं तद्विषयं करोमि । यत् येन मन्युना दस्युं कर्मणामुपक्षपयितारम् असुरम् अहन् अवधीः नर्यमिति क्रियाविशेषणम् । न रहितं यथा भवति तथा तेन हत्वा च मेघेनावृताः अपः उदकानि च विवेः इमं लोकं प्रत्यागमयः तस्मै मन्यव इत्यन्वयः यत् यदा उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ त्वा त्वाम् अनुधावताम् गच्छतां त्वदधीने भवतः इत्यर्थः । तदानीं पृथिवीचित् पृथिवीत्यंतरिक्षनाम (नि० १,३,९) प्रथितं विस्तीर्णमन्तरिक्षमपि शुष्मात् त्वदीयात् बलात् भ्यसाते बिभेति भ्यस भये (भ्वा० आ०) पञ्चमलकारे रूपम् बिभीयात् भयेन कम्पते इत्यर्थः ॥ २ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारिन् इन्द्र ! (ते) तुम्हारे (प्रथमाय) मुख्य (मन्यवे) क्रोधको (श्रद्धामि) श्रद्धा करता हूँ (यत्) जिस कोपसे (दस्युम्) कर्मोंके विघ्नकर्त्ता असुरको (अहन्) मारा (नर्यम्) निःशेषभाव से उसका वध करके (अपः) मेघोंसे ढकेहुए जलों को (विवेः) इसलोकमें पहुँचाया (यत्) जब (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावापृथिवी (त्वां अनुधावताम्) तुम्हारे अधीन होते हैं,

उस समय (पृथिवीचित्) विस्तारवाला अन्तरिक्ष भी (ते) तुम्हारे (शुष्मात्) बलसे (भयसाते) भयभीत होता है ॥२॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भू-

२र ३ १ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १

रतिथिर्जनानाम् । स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं

२ ३ १ २र ३ २ ३ २

वर्त्तनीरनु वावृत एक इत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वामदेव ऋषिः । हे विश्वाः ! सर्वाः प्रजाः ! दिवः स्वर्गस्य ओजसा बलेन पतिं स्वामिनमिन्द्रं समेत स्तोत्रेण हविषा वा सम्यक् प्राप्नुत । इन्द्रः एक इत् एक एव सन् जनानां यजमानानाम् अतिथिः अतिथिवत् प्रियो भूः भवति । पूर्व्यः पुरातनः स इंद्रः आजिगीषन्तं स्वशत्रून् जेतुमिच्छन्तं नूतनम् अद्यतनं स्तोतारं प्रति एक इत् एक एव वर्त्तनिर्मार्गः सन् अनुवावृते अनुवर्त्तयति ॥ ३ ॥

(विश्वाः) हे सकल प्रजाओं ! (दिवः) स्वर्ग के (ओजसा) बलके (पतिम्) स्वामी इन्द्रको (समेत) स्तोत्र और हविसे भले-प्रकार प्राप्त होओ (यः) जो इंद्र (एक इत्) अकेला ही (जनानाम्) यजमानोंका (अतिथिः) अतिथिकी समान प्रिय (भूः) होता है पूर्व्यः) पुरातन (सः) वह इंद्र (आजिगीषन्तम्) अपने शत्रुओं को जीतनेकी इच्छा करनेवाले (नूतनम्) इस समयके स्तोताको (एक इत्) एक ही वर्त्तनीः) विजयके मार्ग पर (अनुवावृते) चलाता है अर्थात् विजय कराता हूँ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इमे ते इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्रभूवसो । न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य्य नो वचः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । सव्यआङ्गिरसऋषिः । प्रभूतवसो प्रभूतधन ! हे इन्द्र ! अतएव पुरुष्टुत पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्तुत ! ये वयं त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रयतयावलम्ब्य चरामसि, चरामः यागे वर्त्तामहे । ते इमे वयन्ते तव स्वभूताः हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! त्वत्तोऽन्यः

कश्चिदपि गिरः स्तुतीः न हि सघत् न हि प्राप्नोति । अतस्त्वं नो ऽस्माकं वचः स्तुतिलक्षणां प्रतिहर्य कामयस्व क्षोणीरिव यथा क्षोणी पृथिवी स्वकीयानि भूतजातानि कामयते ॥ ४ ॥

(प्रभूवसो) अधिक धनवाले (पुरुष्टुत) अनेकों यजमानोंसे स्तुति कियेहुए (इंद्र) हे इंद्र ! (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तुम्हारा आश्रयरूपसे आलम्बन करके (चरामसि) यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं (ते-इमे, वयम्) वह हम (ते) तुम्हारे हैं (गिर्वणः) हे मंत्रोंसे स्तुति करनेयोग्य इन्द्र ! (त्वदन्यः) तुमसे अन्य कोई भी (गिरः) स्तुतियों को (न हि) नहीं (सघत्) प्राप्त होता है (तत्) तिससे (नः) हमारे (वचः) स्तोत्रको (क्षोणीरिव) जैसे पृथिवी अपनेमें उत्पन्न हुए प्राणिमात्रको स्वीकार करती है तैसे (प्रतिहर्य) स्वीकार करिये ॥ ४ ॥

३   १२ ३१२ ३   २   २ ३ १ २   ३ २
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहती-
३क २र   ३   १ २ ३ १   २ ३ २   ३ १ २ ३
रभ्यनूषत । वावृधानं पुरुहूतꣳ सुवृक्तिभिरमर्त्यं
१ २   ३ १ २
जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । विश्वामित्रः स्तौति । बृहतीः प्रभूताः गिरः अस्मदीयाः स्तुतिलक्षणा वाचः चर्षणीधृतं चर्षणीनां मनुष्याणामभिमतफलप्रदानेन धारकं पोषकं यद्वा आक्रमत्यनेन सर्वमिमिति चर्षणीर्बलं तद्धारकं मघवानम् उक्थ्यम् उक्थैः शस्त्रैः शंसनीयं वावृधानं बलधनादिसम्पत्त्या प्रतिक्षणं वर्द्धमानं पुरुहूतं बहुभिः स्तोतृभिराहूतम् अमर्त्यं मरणधर्मरहितं सुवृक्तिभिः शोभनस्तुतिवाक्यैः दिवे दिवे प्रत्यहं जरमाणं स्तूयमानं तम् इमम् इन्द्रम् अभ्यनूषत अभितः सर्वं स्तुवन्तु ५

(बृहतीः) बहुतसी (गिरः) हमारे स्तोत्रकी वाणियें (चर्षणीधृतम्) इच्छित फल देकर मनुष्योंके पोषण करनेवाले (मघवानम्) धन या यशवाले (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वावृधानम्) बल धन आदि सम्पदासे प्रतिक्षण बढ़नेवाले (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (अमर्त्यम्) अमर (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतिवाक्योंसे (दिवे दिवे जरमाणम्) प्रतिदिन स्तुति कियेहुए (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभ्यनूषत) सब ओर से स्तुति करो ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा व इंद्र मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
उशतीरनूषत । परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मर्य्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कृष्ण आङ्गिरस ऋषिः । स्वर्युवः स्वर्गेण मिश्रयित्र्यः सध्रीचीः सङ्गताः विश्वा व्याप्ताः उशतीः कामयमानाः मतयः स्तुतयः इन्द्रम् ईश्वरम् अच्छानूषत अभिष्टुवन्ति । किञ्च । जनयो जायाः यथा पतिं भर्त्तारं मर्य्यं न यथाच शुन्ध्युं शुद्धं दोषरहितं मघवानं धनवन्तम् ऊतये रक्षणाय परिष्वजन्त आलिङ्गन्ति छान्दसो लोट् । तद्वदिन्द्रं मे स्तुतयः परिष्वजते । परिष्वजन्त परिष्वजते इति च पाठौ ६

(यथा) जैसे (जनयः) स्त्रियें (मर्य पतिम्) मनुष्य पति को (न) और जैसे (शन्ध्युम) शुद्ध दोषरहित (मघवानम्) धनवान् को (ऊतये) रक्षाके लिये (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करती हैं तैसे ही (स्वर्युवः) स्वर्गसे मिलनेवाली (सध्रीचीः) इकट्ठी हुई (विश्वाः) व्याप्त (उशतीः) कामना करती हुई (मतयः) स्तुतियें (इन्द्रम्) ईश्वरको (अच्छानूषत) चारों ओरसे स्तुत करती हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता
१ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वस्वो अर्णवम् । यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं
३ १ २र ३ १ २र
भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । सव्य ऋषिः । त्यं तं प्रसिद्धं मेषं शत्रुभिः स्पर्द्धमानम् यद्वा । कण्वपुत्रं मेधातिथिं यजमानमिन्द्रो मेषरूपेणागत्य तदीयं सोमं पपौ स ऋषिस्तं मेष इत्यवोचत् अत इदानीमपि मेष इन्द्रोऽभिधीयते । मेधातिथेर्मेषेति सुब्रह्मण्यमन्त्रैकदेशस्य व्याख्यानरूपं ब्राह्मणमेवमाम्नायते मेधातिथिं ह काण्वं मेषो भूत्वा जहारेति । आगत्य सोमं अपहृतवानित्यर्थः । पुरुहूतं बहुभिर्यजमानैराहूतम् ऋग्मियम् ऋग्भिर्विक्रीयमाणं स्तूयमानमित्यर्थः । स्तुत्या हि देवता यद्वा विक्रीयते ऋग्भिर्मीयते

ऋग्मीः तं वस्वो अर्णवं धनानामावासभूमिम् । एवं शब्दात् इति गुण विशिष्टमिन्द्रं हे स्तोतारः ! गीर्भिः स्तुतिभिः आभिमुख्येन, हर्षं प्रापयत यस्य इन्द्रस्य कर्माणि मानुषं जात्येकवचनं मानुषाणि मनुष्याणां हितानि विचरन्ति विशेषेण वर्त्तन्ते । अत्र दृष्टान्तः, द्यावो न यथा सूर्य्य स्य रश्मयः सर्वेषां हितकराः भुजे भोगाय मंहिष्ठम् अतिशयेन; प्रवृद्धं विप्रं मेधाविनम् । तथाविधमिन्द्रम् अभ्यर्चत अभिपूजयत ॥ ७ ॥

(त्यम्) प्रसिद्ध (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (पुरुहूतम्) अनेकों यजमानोंके पुकारेहुए (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रोंसे स्तुति किये (वस्वो अर्णवम्) धनोंके निवासस्थान इन्द्र को हे स्तोताओ ! (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (अभिमदत) अभिमुख होकर प्रसन्न करो (यस्य) जिस इन्द्र के (मानुषम्) मानुष्योंके हितकारी कर्म (द्यावः न) सबकी हितकारी सूर्यकी किरणोंकी समान (विचरन्ति) विशेषरूपसे वर्त्त मान होते हैं (भुजे) भोगके निमित्त (मंहिष्ठम्) अत्यन्त बढेहुए (विप्रम्) मेधावी इंद्रको (अभ्यर्चत) पूजो ॥ ७ ॥

२उ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र

त्यꣳ सु मेषं महया स्वर्विदꣳ शतं यस्य

३ १२ ३ १ २र २ ३ १ २र ३ २

सुभुवः साकमीरते । अत्यं न वाजꣳ हवनस्य

३ २३ १ २ ३ १२ ३ १ २

दꣳ रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । सव्यऋषिः । त्यं तं प्रसिद्धं मेषं शत्रुभिः सह स्पर्द्ध-मानं स्वर्विदं स्वरादित्यो द्यौर्वा तस्य वेदितारं लब्धारं वा । यद्वा । स्वः सुष्ठु अरणीयं धनं तस्य लम्भयितारम । एवंगुणविशिष्टमिन्द्रं हे अध्वर्यो ! सुमहय सम्यक् पूजय । यस्य इन्द्रस्य शतं शतसंख्याकाः आवृत्त्यां प्रति आवर्त्तयामि । कीदृशम् ? रथं हवनस्यदं हवनमाह्वानं यागं वा प्रति वेगेन गच्छन्तम् । गमने दृष्टान्तः, अत्यन्नवाजं गमनसा-धनमश्वमिव महय पूजय ॥ ८ ॥

(यस्य) जिसकी (सुभुवः) श्रेष्ठ भूमियें (साकम्) साथ(ईरते) प्राप्त होती हैं (त्यम्) उस (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (स्वर्विदम्) धनके दाता (रथम्) रथकी समान अभीष्टस्थान पर पहुँचाने वाले (अत्यं वाजं न) गमन के साधन घोड़ेकी समान (हवनस्यदम्) यागस्थान में शीघ्रता से पहुँचानेवाले (इन्द्रम्) इंद्र

को (अवसे) रक्षा के लिये (सुवृक्तिभिः) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे (महय) पूजो (शतम्) सौ (आववृत्याम्) प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे
३ १ २ १ २ ३ १ २ र ३ १ २ ३
सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा
१ २ ३ २ ३ १ २
विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाज ऋषिः । द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ घृतवती दीप्तिमत्यौ उदकवत्यौ वा भवत इति शेषः । भुवनानां भूतानाम् अभिश्रिये अभिश्रयणीये भवत इति सर्वत्रानुसन्धेयम्, उर्वी विस्तीर्णे पृथ्वीबहुकार्य्यरूपेण प्रथिते च, मधुदुघे मधुन उदकस्य दोग्ध्र्यौ सुपेशसा सुरूपे, वरुणस्य सर्वनियामकस्य धर्मणा धारणे विष्कभिते पृथक् धारिते अजरे नित्ये भूरिरेतसा बहुरेतस्कौ बहुकार्य्ये वा भवतः अत्र साक्षात् द्यावापृथिव्योः स्तुतिः प्रसङ्गाद् वरुणस्येति द्रष्टव्यम्॥९॥

(द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक (घृतवती) जलवाले (भुवनानाम्) भूतोंके (अभिश्रिया) आश्रय करने योग्य (उर्वी) विस्तीर्ण (पृथ्वी) बहुत कार्यरूप से प्रसिद्ध (मधुदुघे) जल को पूरित करनेवाले (सुपेशसा) सुन्दररूपवाले (वरुणस्य) ईश्वरकी सर्वनियामक शक्तिके (धर्मणा) धारण करनेसे (विष्कभिते) ठहरे हुए (अजरे) नित्य (भूरिरेतसा) बहुत बीजवाले हैं ॥ ९ ॥

३ १ २ र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ।
३ १ २ र ३ १ २ र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।१०।

अथ दशमी मेधातिथि ऋषिः । महापंक्तिश्छन्दः । षडष्टाक्षराः पादाः, द्वौ चार्द्धर्चावर्धामहे हे इन्द्र ! उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ यत् यस्त्वम् आ पप्राथ स्वतेजसा आ पूरयसि प्रा पूरणे आदादिकः (प०) । छान्दसो लिट् । उषा इव यथा उषाः स्वभासा सर्वं जगदा पूरयति तद्वत् । तं महीनां महतां देवानामपि महान्तम् नायकम् ।

चर्षणीनां मनुष्याणामपि सम्राजम् ईश्वरम् इन्द्रम् त्वा त्वां देवी देवनशीला जनित्री साधुजनयित्री अदितिः अजीजनत् अजनयत् जने-र्णयन्तात् लुङि चङि रूपमेतत् । यस्मादेषा जनयित्री ईदृशं पुत्रमजीजनत् अतः कारणात् सा भद्रा कल्याणी प्रशस्ता जाता जनेर्णयन्तात् साधुकारिणि तृन् (३, २, १३५) जनिता मन्त्रे (६, ४, ५३) इति इडादौ णि-लोपो निपात्यते । ऋन्नेभ्य (४, १, ५) इति ङीप् ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (उभे रोदसी) द्यावापृथिवी दोनोंको (यत्) जो तुम (उषा इव) जैसे उषा अपने प्रकाशसे सब जगत् को पूर्ण कर देती है तैसे (आपप्राथ) अपने तेजसे पूर्ण करते हो ऐसे (महताम्) देवताओंके भी (महान्तम्) बड़े (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) ईश्वर (इन्द्रम्) इन्द्र (त्वा) तुम्हें (देवी जनित्री) देवमाता अदिति देवी (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई, (अजीजनत्) ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती हुई, इसकारण वह (भद्रा) श्रेष्ठ (जनित्री) जननी है ॥ १०

२ ३ १२ ३ १२ ३ २३ २ ३ १२
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा
३ १२ ३ १ १ ३ २ ३ १२३ १२
निरहन्नृजिश्वना । अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
३१२ ३ १२
मरुत्वन्तꣳ सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥

अथैकादशी । एषा गर्भस्रावित्र्युपनिषत् । हे ऋत्विजः ! मन्दिने स्तुतिमते स्तोतव्यायेन्द्राय पितुमत् हविर्लक्षणान्नेनोपेतं वचः स्तुतिलक्षणं वचनं प्रार्चत प्रकर्षेणोच्चारयत । यः इन्द्रः ऋजिश्वना एतत्संज्ञकेन राजर्षिणा सख्या सहितः सन् कृष्णगर्भाः कृष्णोनाम कश्चिदसुरः, तेन निषिक्तगर्भाः तदीया भार्य्याः निरहन् नितरामवधीत् कृष्णमसुरञ्च तत्पुत्राणामनुत्पत्त्यर्थं गर्भिणीस्तस्य भार्य्या अपि अवधीदित्यर्थः । अवस्यवः रक्षणेच्छवो यूय वृषणं कामानां वर्षितारं वज्रदक्षिणं वज्रयुक्तेन दक्षिणहस्तेन उपेतं मरुत्वन्तम् इन्द्रं सख्याय सख्युः कर्मणे हुवेमहि आह्वयामः । हुवेमहि हवामहे इति च पाठो ॥ ११ ॥

हे ऋत्विजो ! (मन्दिने) स्तुति के योग्य इन्द्रके अर्थ (पितुमत्) हविरूप अन्नसे युक्त (वचः) स्तुतिको (प्रार्चत) अधिकतासे उच्चारण करो (यः) जिन इन्द्रने (ऋजिश्वना) ऋजिश्वाको साथ लेकर (कृष्ण-

गर्भाः) कृष्णनामा असुर की गर्भवती स्त्रियों को (निरहन्) कृष्णासुर सहित निःशेषरूपसे मारदिया (अवस्यवः) रक्षाकी इच्छावाले हम (वृषणम्) मनोरथों कीवर्षा करनेवाले (वज्रदक्षिणम्) दाहिने हाथ में वज्रधारी (मरुत्वन्तम्) इन्द्रको (सख्याय) मित्रकी समान अनुकूलता करने के लिये (हुवम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३उ २क

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥

अष्टाविंशतिरिन्द्रेति मुख्याः सप्तदशोष्णिहः ।
आद्या दशान्त्या ककुभः पिबेत्यष्टादशी विराट् ॥
तु चे वेत्था ह्यपामीवामित्यादिन्यपरिष्टुनिः ।
आगन्त गाव इत्येते मरुतामिन्द्रदेवताः ।
अन्या ऋचोऽभिधीयन्ते ऋषयस्तत्र तत्र हि ॥

तत्र चतुर्थे खण्डे—सैषा प्रथमा । नारद ऋषिः । हे इन्द्र ! सोमेषु सुतेष्वभिषुतेषु सत्सु तान् पीत्वा क्रतुं कर्मकर्त्तारम् उक्थ्यं स्तोतारं च पुनीषे शोधयसि । यद्वा सोमेष्वभिषुतेषु उक्थ्यं क्रतुं यागं तैः सोमैः पुनीषे यजमानैः पूतं कारयसि किमर्थम् ? वृधस्य वर्द्धकस्य दक्षस्य बलस्य विदे लाभाय । स तादृश इन्द्रः महान् हि महान् खलु अत एवंकर्त्तुं शक्नोतीति भावः ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (सोमेषु सुतेषु) सोमोंके निष्पन्न होनेपर उनको पीकर (वृधस्य) वर्धक (दक्षस्य) बलके (विदे) लाभार्थ (क्रतुम्) कर्मकर्त्ताको (उक्थ्यम्) स्तोताको भी (पुनीषे) पवित्र करते हो (सः) वह तुम इंद्र (महान् हि) अवश्य ही महान् हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । प्रगाथोगांगूत्त्यश्वसूक्तिनावृषी । पुरुहूतं बहुभिराहूतं पुरुष्टुतं बहुभिः स्तुतं तमु तमेव इन्द्रं हे स्तोतारः ! अभिप्रगायत अभिमुखं प्रकर्षेण स्तुध्वम् । एतदेव स्पष्टयति, तविषं महान्तम् इन्द्रं गीर्भिः वाग्भिः आविवासत परिचरत ॥ २ ॥

हे स्तोताओं ! (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (पुरुष्टुतम्) बहुतोंके स्तुति कियेहुए (तमु) उस इन्द्रकी ही (प्रगायत) अभिमुख होकर वारंवार स्तुति करो (तविषम्) महान् इंद्रकी (गीर्भिः) मंत्रों से (आविवासत) आराधना करो ॥२॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।

३ १ २ ३ १ २

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अद्रिवः ! वज्रवन्निन्द्र ! ते त्वदीयं तं मदं सोमपानजनितं हर्षं गृणीमसि गृणीमः प्रशंसामः गॄ शब्दे क्र्यादिः, प्वादीनां ह्रस्वः (७, ४, ८०) । इदन्तोमसि (७, १, ४६) इति इकारागमः ! कीदृशम् ? वृषणं वर्षितारं कामानाम् । पृत्सु वैरिसम्पर्कजनितेषु संग्रामेषु । अतएव बह्वृचाः पृत्स्विति पठन्ति पृत्सु समत्स्विति संग्रामनामसु (नि० २, १७, २१, २२) पठितम् । सासहिं शत्रूणामभिभवितारं लोककृत्नुं लोकस्य स्थानस्य कर्त्तारं हरिश्रियं हरिभ्यामश्वाभ्यां श्रयणीयं सेव्यम् । उशब्दः सर्वेषां समुच्चये पादपूरणे वा ॥ ३ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इंद्र (ते) तुम्हारे (तम्) उस (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (पृत्सु) वैरिसम्बन्धी संग्रामोंमें (सासहिम) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (लोककृत्नुम) लोकोंके कर्त्ता (उ) और (हरिश्रियम्) हरिनामक अश्वों के सेवनीय (मदम्) सोमपानजनित हर्षको (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पर्वत ऋषिः । हे इन्द्र ! विष्णवि विष्णौ सोमपानार्थमागते सति अन्यदीये यागे सोमं यत् यदि त्वम् विष्णुना सार्द्धं पिबसि । यद्वा यदि वा आप्त्ये अपाम्पुत्र त्रिते एतत्संज्ञके राजर्षौ यजमाने सोमं पिबसि घेति पूरणं यद्वा यदि च मरुत्सु च सोमपानायागतेषु अन्यदीये यज्ञे मन्दसे माद्यसि तथाप्यस्मदीयैरेव इन्दुभिः सोमैः सम्यक् माद्य ॥ ४ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (विष्णवि) विष्णुके सोमपानके निमित्त आनेपर

दूसरेके यागमें (यत्) यद्यपि (सोमम) सोमको पीते हो (यद्वा) और यद्यपि (आप्त्ये त्रिते) आप्तके पुत्र त्रितके यज्ञमें सोम पीते हो (यद्वा) और यद्यपि (मरुत्सु) मरुतोंके सोमपानके निमित्त आने पर अन्य के यज्ञमें (मन्दसे) सोम पीकर प्रसन्न होते हो तथापि हमारे ही (सोमेन्दुभिः) श्रेष्ठ सोमोंसे प्रसन्न हूजिये ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पञ्चाद्यादिसूक्तानां विश्वमना वैयश्व ऋषिः । हे अध्वर्यो ! अध्वरस्य नेतः ऋत्विक् मधोः मदकरस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य मदिन्तरम् अत्यर्थं मादयितृतमं सोमरसमेव आसिञ्च इन्द्रार्थमभिक्षर इदु इत्यवधारणे वीरः समर्थः सदावृधः सर्वदा हवि र्भिर्वर्द्धनीयः । यद्वा । सर्वेषां स्तवकस्य वर्द्धकोऽयमेवन्द्रः स्तवतेहि स्तोत्रशस्त्रादिभिः स्तूयते अतः स्तुतायेन्द्राय सोमो दातव्यः तस्मा दासिञ्चेति सम्बन्धः ॥ ५ ॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञके नेता ऋत्विक् (मधोः) मदकारी (अंधसः) सोमके (मदिन्तरम् इदु) अत्यन्त आनन्द देनेवाले सोमरसको ही (आसिञ्च) इन्द्रके निमित्त टपकाओ (वीरः) समर्थ (सदावृधः) सर्वदा हवियोंसे बढ़ाने योग्य यह इंद्र (एव) ही (स्तवते हि) स्तोत्रादिसे स्तुत कियाजाता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे ऋत्विजः ! इन्दुं स्पन्दनशीलं सोमम् इन्द्राय इन्द्रार्थम् आसिञ्चत आभिमुख्येन प्रत्याक्षारयत आश्रयणाद्रव्येण सेचनं कुरुत समभिजुहुतेत्यर्थः ततः सोम्यं सोममयं मधु मदकरं सोमरसं पिबाति पिबतु । पीत्वा च स इन्द्रः महित्वना स्वमहित्वेनैव राधांसि अन्नानि स्तोतृभ्यः प्रचोदयते प्रकर्षेण चोदयतु ॥ ६ ॥

हे ऋत्विजो (इन्दु) टपकनेवाला सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (आसिञ्चत) अभिमुख होकर सींचो, तदनन्तर (सोम्यम्) सोममय (मधु) मदकारी रसको (पिबाति) इन्द्र पिये और पीकर वह

इन्द्र (महित्वना) अपनी महिमासे (राधांसि) अन्न (प्रचोदयते) स्तुति करनेवालों को अधिकतासे देय ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ऐतो न्विन्द्रँ स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
३ १ २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

अथ सप्तमी । हे सखायः ! समानख्याना मित्रभूता ऋत्विजः ! नु क्षिप्रम् एत आगच्छतैव । किमर्थं तदाह स्तोम्यं स्तोमार्हं नरं सर्वस्य नेतारं तं इन्द्रं स्तवाम स्तोत्रं करवाम । य इन्द्रः एक इत् एकाकी असहाय एव सन् विश्वाः सर्वाः कृष्टीः शत्रुसेनाः अभ्यस्ति अभिभवति तं स्तवामेति शेषः ॥ ७ ॥

(सखायः) हे मित्रसमान ऋत्विजों ! (नु) शीघ्र ही (एत) आओ (स्तोम्यम्) स्तोम के योग्य (नरम्) सबके नेता (तम्) उस इन्द्र की (स्तवाम) स्तुति करें (यः) जो इन्द्र (एक एव) अकेला ही (विश्वाः) सकल (कृष्टीः) शत्रुओंकी सेनाओं का (अभ्यस्ति) तिरस्कार करता है ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । नृमेध ऋषिः । हे उद्गातारः ! विप्राय मेधाविने बृहते महते ब्रह्मकृते ब्रह्मणः अन्नस्य कर्त्रे विपश्चिते विदुषे पनस्यवे स्तुतिमिच्छते इन्द्राय बृहत् बृहन्नामकं साम गायत पठत ॥ ८ ॥

हे उद्गाताओं ! (विप्राय) मेधावी (बृहते) महान् (ब्रह्मकृते) अन्न के कर्त्ता (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुति चाहनेवाले (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (बृहत्) बृहत्सामको (गायत) गाओ ॥८॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोतम ऋषिः । यः इन्द्रः एक इत् एक एव दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्ताय मनुष्याय यजमानाय वसु धनं विदयते विशेषेण

ददाति। अङ्गेति क्षिप्रनाम अप्रतिष्कुतः परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूल-शब्दरहित इत्यर्थः। एवम्भूतः स इन्द्रः क्षिप्रम् ईशानः सर्वस्य जगतः स्वामी भवति ॥ ९ ॥

(यः) जो इंद्र (एक इत्) अकेला ही (दाशुषे) हवि समर्पण करनेवाले (मर्त्ताय) मनुष्यके अर्थ (वसु) धन (विदयते) विशेष रूपसे देता है (अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूलशब्दरहित वह (इन्द्रः) इंद्र (अङ्ग) शीघ्र (ईशानः) सब जगत्‌का स्वामी होता है ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥

अथ दशमी। विश्वमना ऋषिः। सखायः मित्रभूता हे ऋत्विजः ! वज्रिणे वज्रहस्तायेन्द्राय ब्रह्म स्तोत्रम् आशिषामहे वयमाशास्महे च यद्वा।ब्रह्म अस्माभिर्दीयमानं हवीरूपमन्नम् आशास्मः। शासु अनुशिष्टौ (अदा०प०) व्यत्ययेनात्मनेपदम् (३, १, ८५)। अतएव आशिषामहि इति बह्वृचा आमनन्ति तत्र वः सर्वेषामेव युष्माकमर्थाय नृतमाय सर्वेषां नेतृतमाय। यद्वा संग्रामेषु आयुधानां नेतृतमाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय तस्मै इन्द्राय अहमेव सुस्तुषे सुष्ठु स्तौमि ॥ १० ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विजो ! (वज्रिणे) वज्रधारी इंद्र के अर्थ (ब्रह्म) स्तोत्रकी (आशिषामहे) प्रार्थना करते हैं (वः) तुम सबोंके ही निमित्त (नृतमाय) सर्वोपरि नेता (धृष्णवे) शत्रुओंको भय देनेवाले इंद्रके अर्थ मैं ही (सुस्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्त

३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
१ २र ३ १ २र
यद्धंथ्सि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सैषा प्रथमा। प्रगाथ ऋषिः। हे इन्द्र ! ते तव तच्छवो बलम् उपमाम् अन्तिकं देवतातये यजमानाय यज्ञार्थे वा गृणे स्तुवे। यद् यस्मात् हे शचीपते ! वृत्रम् ओजसा बलेन हंसि तस्मात् ते शवो गृणे इति सम्बन्धः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे (तत् शवः) प्रसिद्ध बलकी (उपमाम्) समीप में (देवतातये) यजमान वा यज्ञके निमित्त (गृणे)

स्तुति करता हूँ (यत्) क्योंकि (शचीपते) हे इन्द्र ! (ओजसा) बलसे (वृत्रम्) वृत्रको (हंसि) नष्ट करते हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २र३ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
३ १ २र ३ १ २र
अयꣳ स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषि । हे इन्द्र ! त्वं यस्य सोमस्य मदे पानेन जनिते हर्षे सति शम्बरम् असुरं दिवोदासाय राज्ञे रन्धयन् रध हिंसासंराद्ध्योः (दि०प०) हन्ता भवसि त्यदिति क्रियाविशेषणं तत् प्रसिद्धं यथा भवति तथा हे इंद्र ! सः अयं सोमः ते त्वदर्थं सुतः अभिषुतः । अतएव त्वं पिब ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (यस्य) जिस सोमके (मदे) पीनेसे हर्ष उत्पन्न होनेपर (त्यत्) उस (शम्बरम्) शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदासके अर्थ (रन्धयन्) मारतेहो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) सोम (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) सम्पादन किया है इसकारण तुम (पिब) पियो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २
एन्द्र नो गाधि प्रिय सत्राजितगोह्य ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नृमेध ऋषिः । हे प्रिय ! सर्वेषां प्रियतम ! हे सत्राजित् ! महतां शत्रूणां जेतः ! हे अगोह्य ! केनापि तिरस्कर्तुमशक्य इंद्र ! गिरिर्न पर्वत इव विश्वतः सर्वतः पृथुः पृथुतमः दिवः स्वर्गस्य पतिः ईश्वरश्च त्वं नोऽस्मान् आगधि आगच्छ ॥ ३ ॥

(प्रिय) सबके प्रिय (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतनेवाले (अगोह्य) जिनका कोई भी तिरस्कार न करसके ऐसे (इन्द्र)हे इन्द्र! (गिरिः,न) पर्वतकी समान (विश्वतः) सब ओरसे (पृथुः) बड़े (दिवः) स्वर्गके (पतिः) ईश्वर भी तुम (नः) हमारे समीप (आगहि) आइये ॥३॥

१ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
२ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
येना हꣳसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पर्वत ऋषिः । हे इन्द्र ! यः त्वं सोमपातमः अतिशयेन सोमस्य पाता हे शविष्ठ ! बलवत्तम ! शव इति बलनाम (नै० २,९,३) तस्माद्धिन्नन्तादातिशायनिक इष्ठन् (५, ३, ५५) विन्मतोर्लुक् टिलोपः (६,४,१५५) हे ईदृशेन्द्र ! तस्य तव सोमपानजनितो यो मदः चेतति सम्यग् जानाति वृत्रवधादीनि कार्याणि कर्त्तुम् । य इत्यस्य चेततीत्यनेनापि सम्बन्धाद् यदुवृत्तान्नित्यम् (८,१,६६) इति न निहन्यते अथवैतदेकमेव वाक्यम् हे बलवत्तमेन्द्र ! सोमपातमः सोमस्य पातृतमो यस्त्वं मदः सोमैर्मादयितव्यस्तर्पयितव्यः।सन् चेतति । पुरुषव्यत्ययः(३,१,८५) चेतसि सम्यग् जानासि। मदोऽनुपसर्गे (३,३,६६) इति मदेः कर्मण्यप् प्रत्ययः । येन सोमपानजनितेन मदेन अत्रिणाम् अत्तारं राक्षसादिकं निहंसि निहिनस्सि निकृष्टां हिंसां प्रापयसि तं मदं तादृङ्मदोपेतं त्वां वा ईमहे याञ्चाकर्माय (नि०३,१९,१) याचामहे यद्वा ई गतौ दैवादिकः (प०) । छान्दसो विकरणस्य लुक् (२,४,७३) ईयामहे उपगच्छामः स्तुतिभिः सम्भजामहे इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो तुम (सोमपातमः) अधिकतासे सोम पीनेवाले हो (शविष्ठ) हे परमबली ! उस सोम पीनेवाले तुम्हारा जो (मदः) मद (चेतति) वृत्रवध आदि कार्योंके करनेको जानता है (येन) जिस सोमपानके मदसे (अत्रिणाम्) राक्षसादिको (निहंसि) दुर्गति पूर्वक मारते हो (तम्) तुम्हारे उस मदकी (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ २उ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तुचे तुनाय नो तत्सु द्राघीय आयुर्जीवसे ।
१ २ ३ १ २
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । इरिमिठि ऋषिः । हे सुमहसः ! शोभनतेजस्काः ! हे आदित्यासः ! अदितेः पुत्राः ! नोऽस्माकं तुचे पुत्राय तुनाय तनोतेर्लुक् । तनोति कुलमिति तुनः पौत्रः । उकारोपजनश्छन्दसः । अत एव बह्वृचाः तनाय इति पठन्ति । तस्मै तुनाय पौत्राय च जीवसे जीवनाय द्राघीयो दीर्घतमं तत् प्रसिद्धम् आयुः जीवितं सु सुष्ठु कृणोतन कुरुत ॥ ५ ॥

(सुमहसः आदित्यासः) हे श्रेष्ठ तेजवाले अदितिके पुत्र देवताओं! (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (तुनाय) पौत्रके अर्थ (जीवसे)

जीवनके अर्थ (द्राघीयः) बड़ी (तत्) प्रसिद्ध (आयुः) आयु (युकुणोतन) शोभन प्रकारसे दो ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र ३ १२ ३१२
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
१२ ३ १ २३१२
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । विश्वमना ऋषिः । इदानीमृषिरिन्द्रं सम्बोध्याह । हे वज्रहस्त वज्रयुक्तहस्तेन्द्र ! निर्ऋतीनाम् उपद्रवकारिणां रक्षसां परिवृजं परिवर्जनं हिरण्यधारणे त्वमेव वेत्थ जानीषे । तत्र दृष्टान्तः अहरहरित्यादिः शुन्ध्युः अस्मिन्नुदिते सति ब्राह्मणा आत्मीयं कर्म कृत्वा शुद्धा भवन्तीति शोधनहेतुत्वाच्छुन्ध्युरादित्यः । आदित्यः परिपदामिव परितः पद्यमानानां यजमानानां यद्वा परिपदां समानाधिकरणः परितः पततां पक्षिणां वर्जनं स्वस्थानत्यागम् अहरहः प्रतिदिनं यथा वेत्ति । उदिते सूर्ये पक्षिणः स्वस्थानं परित्यज्य सर्वतो गच्छन्ति खलु एवं त्वयीन्द्रे स्वबलेन प्रकाशमाने सति शत्रवः स्वपुराणि त्यक्त्वा पलायन्त इत्यर्थः ॥ ६ ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी इन्द्र (निर्ऋतीनाम्) विघ्नकर्त्ता राक्षसों के (परिवृजम्) दूर करनेको (वेत्था हि) तुम ही जानते हो, इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि—(अहरहः) प्रतिदिन (शुन्ध्युः) सूर्योदय होनेपर ब्राह्मण अपने कर्मको करके शुद्ध होते हैं ऐसा शुद्धिका हेतु आदित्य (परिपदां इव) चारों ओर उड़नेवाले पक्षियोंका जैसे अर्थात् जैसे प्रतिदिन सूर्यका उदय होनेपर पक्षी अपने स्थानको त्यागकर चारों ओरको चलेजाते हैं तैसेही हे इन्द्र ! तुम्हारे बलका प्रकाश होनेपर शत्रु अपने नगरोंको त्याग कर भागजाते हैं ॥ ६ ॥

१ २र३ २ ३ २ ३१२ ३ २
अपामीवामप स्निधमप सेधत दुर्मतिम् ।
१ २ ३१२ ३ १ २
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । इरिमाठ ऋषिः । छ० उष्णिक् । हे, आदित्यासः ! आदित्याः ! अमीवां रोगम् अपसेधत अस्मत्तोऽपगमयत । स्निधं बाधकं शत्रुं च अपसेधत । दुर्मतिम् अस्माकं दुःखस्य मंतारञ्च अपसेधत । अपित्र हे आदित्याः ! नोऽस्मान् अंहसः पापात् युयोतन पृथक्कुरुत ॥ ७ ॥

(आदित्यासः) हे आदित्यों ! (अमीवाम्) रोगको (अपसेधत) हमारे समीपसे हटाओ (स्त्रिधम्) बाधा देनेवाले शत्रुको (अप) हमसे दूर करो (दुर्मतिम्) हमें दुःख देना विचारनेवालेको (अप) हमसे दूर करो (नः) हमें (अंहसः) पापसे (युयोतन) अलग करो ॥ ७ ॥

२ ३ १२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः
३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्याᳬ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वसिष्ठ ऋषिः । छ० विराट् । हे इंद्र ! सोमं पिब । स सोमः त्वां मन्दतु मादयतु हे हर्यश्व ! ते त्वदर्थं सोतुः अभिषवकर्त्तुः बाहुभ्याम् अर्वा न रश्मिभ्यामश्व इव सुयतः सुष्ठु परिगृहीतः अद्रिः ग्रावाऽयं सोमं सुषाव ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (सोमम्) सोमको (पिब) पियो वह सोम (त्वा) तुम्हे (मन्दतु) आनंद देय (हर्यश्व) हे इंद्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोतुः) सोम सम्पादन करनेवाले की (बाहुभ्याम्) रस्सियोंसे (अर्वा न) घोड़ा जैसे (सुयतः) सुन्दरताके साथ ग्रहण कियाहुआ (अयम्) यह (अद्रिः) पाषाण (सुषाव) सोमको संपादित करता हुआ ॥ ८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—सैषा प्रथमा । सौभरिर्ऋषिः । छ० ककुप् । हे इन्द्र ! त्वं ! जनुषा जन्मनैव अभ्रातृव्यः, व्यन् सपत्ने(४,१,१४५)इति व्यन्प्रत्ययः । सपत्नरहितः अना अनेतृकः ऋतश्छन्दसि (५,४,१५८) इति कपः प्रतिषेधः । अनियन्तृक इत्यर्थः अनापिः बन्धुवर्जितश्च सनादसि चिरादेव भ्रातृव्यादिवर्जितोऽसि । यश्च त्वम् आपित्वं बान्धवम् इच्छसे इच्छसि तत्र युधेत् युद्धैव युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतृणामर्थाय सखा भवसीति ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (त्वम्) तुम (जनुषा) जन्मसे ही (अभ्रातृव्यः)

शत्रुरहित (अना) नियन्तासे रहित (समात्) समातनसे(अनापिः) बान्धवरहित हो और जब तुम (आपित्वम्, इच्छसे) किसी बान्धव की इच्छा करते हो, तब (युधत्) युद्ध करतेहुए स्तुति करनेवालोंके सखा होजाते हो ॥ १ ॥

१ २ ३१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
१ २ ३ १ १ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सौभरिर्ऋषिः । सखायः समानख्याना हे ऋत्विग्यजमानाः ! यः इन्द्रः पुरा पूर्वम् इदम् दर्शनीयतया विद्यमानं वस्यः वसीयः वसोरीयसुनीकारलोपश्छान्दसः प्रशस्तं वसुनोऽस्मान् प्राणिनाय प्रकर्षेणानीतवान् । तमु तमेव धनानामानेतारम् इंद्रं वो युष्माकं धनलाभार्थम् ऊतये रक्षणाय च स्तुषे सौभरिरहं स्तौमि ॥ २ ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विक् यजमानों ! (यः) जो इंद्र (पुरा) पहिले (इदम्) इस (प्रवस्यः) श्रेष्ठ धनको (नः) हमारे अर्थ (प्राणिनाय) अधिकतासे देताहुआ (तमु) उस ही धनके लानेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (वः) तुम्हें धन प्राप्त होनेके अर्थ (ऊतये) रक्षाके अर्थ भी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात
३ १ २
समन्यवः । दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सौभरिर्ऋषिः । हे प्रस्थावानः प्रस्थातारः प्रगन्तारो मरुतः! आगन्त अस्मानागच्छन्त । मा रिषण्यत अनागमनेन नोऽस्मान्मा हिंसिषत । हे समन्यवः समानतेजस्काः ! समानक्रोधाः ! वा दृढाचित् दृढान्यपि पर्वतादीनि हे यमयिष्णवः नियमयितृत्वशीलाः! नियमयितारः ! मापस्थात अस्मत्तोऽन्यत्र मा तिष्ठत अस्मास्वेवावतिष्ठध्वमित्यर्थः ॥ ३ ॥

(प्रस्थावानः) हे प्रस्थान करनेवाले मरुतो ! (आगन्त) हमारे समीप आइये (मा रिषण्यत) न आनेसे हमें हानि न पहुँचाइये (समन्यवः) समान तेजवाले (दृढाचित्) दृढ़ पर्वतादिकोंको भी (यमयिष्णवः) नियममें रखनेवाले हे मरुतो ! (मापस्थात) हमें त्यागकर अन्यत्र न रहो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २३ १ २

आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।

१ २

सोमꣳ सोमपते पिब ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । सोभरिर्ऋषिः । अश्वपते अश्वानां स्वामिन् ! गोपते गवां पालयितः उर्वरापते सर्वशस्याढ्या भूमिरुर्वरा तस्याः पते ! हे इन्द्र ! इन्दवे दीप्ताय तुभ्यम् अयं सोमोऽभिषुत इति शेषः। तस्माद् आयाहि सोमं प्रत्यागच्छ, आगत्य सोमपते ! हे इन्द्र ! सोमं पिब॥४॥

(अश्वपते) हे अश्वोंके स्वामी ! (गोपते) हे गौओंके स्वामी (उर्वरापते) हे सकल अन्नोंसे भरी भूमिके स्वामी इन्द्र ! (इंदवे) प्रकाशवान् आपके अर्थ (अयम्) यह सोम प्रस्तुत किया है (आयाहि) आइये (सोमपते) हे सोमके स्वामी ! (सोमम्) सोमको (पिब) पीजिये ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ

३ १ २र ३ १ २

ब्रुवीमहि । सꣳस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । सोभरिर्ऋषिः । वृषभ ! वर्षितः ! हे इन्द्र ! गोमतः गवादियुक्तस्य जनस्य संस्थे स्थाने युद्धे श्वसन्तम् अस्मान् प्रति क्रोधातिशयेन श्वासकारिणं शत्रुं युजा सहायेन त्वया ह स्वित् त्वयैव खलु वयं प्रति ब्रुवीमहि प्रतिवचनं कुर्मः निराकरिष्याम इत्यर्थः ॥ ५ ॥

(वृषभ) हे मनोरथ पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (गोमतः) गौ आदि पशुधनवाले (जनस्य) भक्तके (संस्थे) स्थान वा युद्धमें (श्वसंतम्) हमारे ऊपर अधिक क्रोध होनेके कारण श्वास लेतेहुए शत्रुको (युजा, त्वया ह, स्वित्) तुम्हारी सहायतासे ही (प्रतिब्रुवीमहि) हम उत्तर देसकेंगे अर्थात् शत्रुको हटासकेंगे ॥ ५ ॥

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी सौभरिऋषिः। समन्यवः समानतेजस्काः समानक्रोधा वा हे मरुतः! गावश्चित् गावश्च युष्मन्मातृभूताः सजात्येन समानजातित्वेन एकस्माद् व्रजत इति एवं सबन्धवः समानबन्धुकाः सत्यः ककुभो दिशः प्राच्यादिदिग्भागान् प्राप्य मिथः परस्परं रिहते लिहन्ति चेति पूरकः ॥ ६ ॥

(समन्यवः) हे समान तेजवाले मरुतों ! (गावश्च) तुम्हारीमाता रूप गौएं भी (सजात्येन) समान जातिकी होनेसे (सबन्धवः) समान बान्धवोंवाली होती हुई (ककुभः) पूर्वादि दिशाओंको प्राप्त होकर (मिथः) परस्पर (लिहते) चाटती हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णᳬं शतक्रतो
२ ३ १ २ ३ १ २
विचर्षणे। आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। इयोर्नृमेधऋषिः। शतक्रतो ! बहुकर्मन् ! विचर्षणे विविधद्रष्टरिन्द्र ! त्वं नोऽस्मभ्यम् ओजो बलं नृम्णं धनञ्च आ भर आहर। वीरं वीर्यैपेतं पृतनासहं सेनानामभिभवितारं त्वाम् आह्वयामहे इति शेषः ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) विविधपराक्रमी (विचर्षणे) हे अनेकों दृष्टिवाले इंद्र (त्वम्) तुम (नः) हमें (ओजः) बल (नृम्णम्) धन (आभर) दो (वीरम्) वीरतायुक्त (पृतनासहम्) सेनाओंका तिरस्कार करनेवाले तुम्हें (आ) आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अधा हीन्द्र गीर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। छ० ककुप्। हे गीर्वणः! गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! अधा हि सम्प्रति त्वा त्वां कामो काम्ये निमित्ते। यद्वा। काम इति सुपां सुः(७,१,३९) कामान् ईमहे याचामहे। किञ्च। याचमानाः सन्तः उपससृग्महे उप सृजामः स्तुतिभिस्त्वां संयोजयाम इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तमाह उदेव यथोदकेन ग्मन्ता गच्छन्तः पुरुषाः उदभिः अञ्जलिना उत्क्षिप्योदकैः समीपस्थान् क्रीडार्थं संसृजन्ति तद्वादित्यर्थः। ससृज्महे इति बह्वृचाः पठन्ति ॥ ८ ॥

(गीर्वणः) हे इन्द्र ! (अधा हि) इस समय (त्वा) तुम्हारे समीप

(कामः) इच्छित पदार्थोंको (ईमहे) याचना करते हैं और (उपसस्रुग्महे) आपको स्तुतियोंसे युक्त करते हैं, इस पर दृष्टांत कहते हैं, कि—(उदेव ग्मंतः) जैसे जल सहित जातेहुए पुरुष (उदभिः) अञ्जलिसे जल उछालकर समीपके पुरुषोंको क्रीड़ामें संयुक्त करते हैं ८

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विव-

२ ३ १ २र

क्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । ऋषिः सौभरिः । हे इन्द्र ! गोश्रीते श्रीञ् पाके । गोर्विकारो दधि पयश्च गोशब्देनोच्यते । तेन दध्ना पयसा च श्रीते मिश्रिते मदिरे मदकरे विचक्षणे स्वर्गप्रापणशीले त्वदीये मधौ सोमे सीदन्तो निवसन्तः । तत्र दृष्टान्तः वयो यथा पक्षिणो यथा एकत्र संङ्घीभूय तिष्ठन्ति तद्वत् सीदन्तो वयं त्वाम् अभि आभिमुख्येन नोनुमः पुनः पुनः भृशं वा स्तुमः ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (गोश्रीते) गौके दूध घी से मिलेहुए (मदिरे) हर्षदायक (विचक्षणे) स्वर्गमें पहुँचानेवाले (ते) तुम्हारे (मधौ) सोमके समीप (वयो यथा) इकट्ठे होकर बैठेहुए पक्षियोंकी समान हम (त्वा अभि नोनुमः) तुम्हारे अभिमुख होकर वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।

१ २ ३ १ २

वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे वज्रिन् वज्रयुक्त ! अपूर्व्य त्रिषु सवनेषु प्रादुर्भूतत्वादभिनव ! भरन्तः सोमलक्षणैरन्नैस्त्वां पोषयन्तो वयं चित्रं चायनीयं विविधरूपं वा त्वामु त्वामेव अवस्यवः अवो रक्षणमात्मन इच्छंतः सन्तः हवामहे त्वामाह्वयामः । तत्र दृष्टांतः स्थूरं न यथा भरन्तो व्रीह्यादिभिर्गृहं पूरयन्तो जनाः स्थूरं स्थूलं गुणाधिकं कच्चित् कञ्चिन्मानवं यथा ह्वयन्ति तद्वत् ॥ १० ॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी (अपूर्व्य) तीनोंसवनोंमें प्रकट होनेसे नवीन इंद्र (भरन्तः) सोमरूप अन्नसे आपका पोषण करते हुए हम (चित्रम) विविधरूपवाले (त्वामु) आपको ही (अवस्यवः) अपनी

रक्षाके अर्थ चाहतेहुए (हवामहे) आह्वान करते हैं (स्थूरं न) जैसे कि—अन्न आदि से अपने घरको भरनेवाले अधिक गुणी (कच्चित्) किसी मनुष्यको बुलाते हैं ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

३ २३ १ २ ३२३ १ २ ३क २र १ १र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्य्यः । या इन्द्रेण
३ १ २३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् १

स्वादोरष्टादशस्वृक्षु चरमा नतमित्यसौ ।
उपरिष्टाद्बृहत्याम्नाताः सप्तदशपङ्क्तयः ॥
चन्द्रमानतमित्येते वैश्वदेव्यौ प्रतीत्यसौ ।
आदित्यर्चा तिस्र आग्नेय्य आतं अग्न इधीमहि ॥
आग्नी नाग्नीन्तमित्येता मरुतो अद्य चौषसी ।
सौमी भद्रन्न इत्येवा शिष्टा ऐन्द्र्य उदीरिताः ॥
आङ्गिरो गोतमो नाम ऋषिः सम्परिकीर्त्तितः ।

अथ सप्तमे खण्डे—सैषा प्रथमा । स्वादोः स्वादुभूतस्य रसयुक्तस्य इत्था विषूवतः इत्थमनेन प्रकारेण सर्वेषु यज्ञेषु व्याप्तियुक्तस्य मधोः मधुररसस्य सोमस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी एवंविधं सोमं गौर्यो गौरवर्णा गावः पिबन्ति या गावः वृष्णा कामाभिवर्षकेणेन्द्रेण सयावरीः सह गच्छन्त्यः सत्यः मदन्ति हृष्टा भवन्ति । ताः इन्द्रपीतस्य सोमस्यावशेषं पिबन्तीत्यर्थः । शोभथा वचनव्यत्ययः (३, १, ८५) इन्द्रेण सह शोभन्ते । वस्वीः पयःप्रदानेन निवासकारिण्यः ता गावः स्वराज्यं स्वस्य स्वकीयस्येन्द्रस्य यद्राज्यं राजत्वन्तद् अनु लक्ष्य अवस्थिता इत्यर्थः ॥ १ ॥

(स्वादोः) रसयुक्त (इत्था) इसप्रकार (विषूवतः) सब यज्ञोंमें काम आनेवाले (मधोः) मीठे सोमको (गौर्यः) श्वेतवर्णकी गौएं (पिबन्ति) पीती हैं (याः) जो गौएं (वृष्णा, सयावरीः) मनोरथों की वर्षा करनेवाले इन्द्रके साथ गमन करतीहुई (मदंति) प्रसन्न होती हैं (शोभथाः) शोभाको प्राप्त होती हैं (वस्वीः) दूध देतीहुई निवास करनेवाली वह गौएं (स्वराज्यम् अनु) अपने स्वामी के राज्यमें स्थित रहती हैं ॥ १ ॥

३ २र   ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   १ २

इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्द्धनम्। शविष्ठ

३ १ २   ३ १   २र३ २ ३ २ ३ १ २

वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु

३ १ २

स्वराज्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे शविष्ठ। अतिशयेन बलवन्! वज्रिन्! वज्रवन्निन्द्र! इत्था हि इत्थम् एव अनेन शास्त्रोक्तप्रकारेणैव सोमे त्वया गृहीते सति मदः मदैः स्तुतिकर्मणः स्तोता वर्द्धनं तव वृद्धिकरं ब्रह्म स्तोत्रं चकार। अनेन कृतवान् हि शब्दस्त्वेतत् पादपूरणम्, अतस्त्वम् ओजसा बलेन पृथिव्या सकाशात् आगत्य अहिम् हन्तारं वृत्रं निःशशाः निःशेषेण शशाः मा बधस्वेति शासनं कृत्वा पृथिव्याः सकाशान्निरगमय इत्यर्थः। किं कुर्वन्? स्वराज्यं स्वस्य राज्यं राजत्वम् अनु लक्ष्य अर्चन् पूजयन् स्वस्वामित्वं प्रकटयन्नित्यर्थः ॥ २ ॥

(शविष्ठ वज्रिन्) हे वज्रधारी बलवान् इंद्र! (इत्था हि) इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से (सोमे) तुम्हारे सोमको ग्रहण करलेने पर (मदः) स्तुति करनेवाला (वर्धनम्) तुम्हारी वृद्धि करनेवाले (ब्रह्म) स्तोत्रको (चकार) करता हुआ, इसकारण तुम (स्वराज्यम् अनु, अर्चन्) अपने राज्यमें अपना स्वामित्व प्रकट करतेहुए (ओजसा) बलके द्वारा (पृथिव्याः) पृथ्वीसे (अहिम्) वृत्रासुर को (निःशशाः) पूर्णरूप से शासन करो अर्थात् उसको वध न करके भूमण्डलसे निकाल दो ॥ २ ॥

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २र

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।

२उ   ३२ ३ २ ३ १ २र   ३ १ २र ३

तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु

१ २

प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। वृत्रहा वृत्रस्यावरकस्य वृष्टिनिरोधकस्य मेघस्यासुरस्य वा हन्ता, यद्वा आवरकाणां शत्रूणां हन्ता इंद्रः मदाय हर्षार्थं शवसे बलार्थञ्च नृभिः यज्ञस्य नेतृभिः ऋत्विग्भिः वावृधे स्तोत्रशस्त्र

रूपाभिः स्तुतिभिः प्रवर्द्धितो बभूव । स्तुत्या हि देवता प्राप्तबला सती प्रवर्द्धते । तमित् तमेव इन्द्रं महत्सु प्रभूतेषु आजिषु संग्रामेषु ऊतिम् अस्माकं रक्षकम् हवामहे । आह्वयामहे तथा तम् इन्द्रम् अर्भे अल्पे संग्रामे हवामहे । अस्माभिराहुतः स चेन्द्रः वाजेषु संग्रामेषु नोऽस्मान् प्राविषत् प्रावतु प्रकर्षेण रक्षतु ॥ ३ ॥

(वृत्रहा, इन्द्रः) वृत्रासुरका नाशक इंद्र (मदाय) हर्षके लिये (शवसे) बलके लिये (नृभिः) यज्ञकर्त्ताओंसे (वावृधे) बढ़ाया गया, क्योंकि स्तुति करनेसे देवतामें बल आता है (तमित्) उस ही (महत्सु आजिषु) बड़े २ संग्रामोंमें (अर्भे) छोटे संग्रामोंमें (ऊतीम्) रक्षा करनेवाले इंद्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं (सः) हमारा आह्वान किया हुआ वह इन्द्र (वाजेषु) संग्रामोंमें (नः) हमारी (प्राविषत्) अधिकतासे रक्षा करे ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १ २र३
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधी-
२३ १ २ ३ १ २
रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अद्रिरिति मेघनाम (नैo १, १०, १) हे अद्रिवन् ! वाहनरूपमेघयुक्त ! वज्रिन् ! वज्रवन्निन्द्र ! तुभ्यमित् तवैव षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । तवैव वीर्यं सामर्थ्यम् अनुत्तं शत्रुभिरतिरस्कृतम् । यद्ध येन वीर्येण खलु मायिनं मायाविनं मृगं मृगरूपमापन्नं त्यं तं वृत्रम् असुरं त्वमपि माययैव अवधीः हतवानसि। अतः कारणात् तव वीर्यं यत् तत् प्रसिद्धं भवति। अर्चन्ननु स्वराज्यमिति पादो व्याख्यातः ॥ ४ ॥

(अद्रिवन् वज्रिन् इन्द्र) हे मेघरूप वाहनवाले वज्रधारी इन्द्र ! (तुभ्यमित्) तुम्हारी ही (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुत्तम्) शत्रुओंसे तिरस्कृत नहीं हुई है (यद्ध) जिस सामर्थ्यके द्वारा निश्चय (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यमें अपनी प्रभुता दिखातेहुए तुमने (मायिनम्) मायावी (मृगम्) मृगरूपधारी (त्यम् वृत्रम्) उस वृत्रासुरको (तव मायया) अपनी मायासे ही (अवधीः) मारडाला है, इसकारण ही तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।

१ २ ३ २उ ३ २३ १२ ३१ २र
इन्द्र नृम्णꣳ हि ते शवो हवो वृत्रं जया
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अथ पंचमी । हे इन्द्र ! प्रेहि प्रकर्षेण गच्छ । अभीहि हन्तव्यान् शत्रून् आभिमुख्येन प्राप्नुहि । प्राप्य च धृष्णुहि तान् शत्रून् अभिभवेति तव वज्रो न नियंसते शत्रुभिः न नियम्यते अप्रतिहतगतिरित्यर्थः । तथा ते तव शवः त्वदीयं बलं नृम्णं नृणां पुरुषाणां नामकम् अभिभावकम् । हि यस्मादेवं तस्मात् वृत्रम् असुरं मेघं वा हनः जहि । तदनन्तरं तेन निरुद्धा अपः उदकानि जयाः जय, वृत्रं हत्वा तेनावृतमुदकं लभस्वेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (प्रेहि) प्रकर्षके साथ चढ़ाई करो (अभीहि) अभिमुख जाकर मारने योग्य शत्रुओं को पकड़ लो (धृष्णुहि) उन शत्रुओंका तिरस्कार करने पर (ते) तुम्हारा (वज्रः) वज्र (न नियंसते) शत्रुओंसे नहीं रुकता है (ते) तुम्हारा (शवः) बल (नृम्णम्) मनुष्योंको नमानेवाला है (हि) ऐसा है इस कारणसे(स्वराज्यम्, अनु अर्चन्) अपने राज्यमें ही अपनी प्रभुता दिखाते हुए (वृत्रं हनः) असुर को मारो(अपः.जयाः)फिर उसके रोकेहुए जलोंको जीत कर लेलो॥५॥

२ ३१२ ३ १ २ ३ १२ ३ १२
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
युंक्ष्वा मदच्युता हरी कꣳ हनः कं वसौ
३ १ २ ३ १ २
दधोऽस्माꣳ इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । अत्रेदमाख्यानम् । रहूगणपुत्रो गोतमः कुरुसृञ्जयानां राज्ञां पुरोहित आसीत् । तेषां राज्ञाम्परैः सह युद्धे सति स ऋषिरनेन सूक्तेन इन्द्रं स्तुत्वा स्वकीयानां जयं प्रार्थयामासेति । तस्य च तत् पुरोहितत्वं वाजसनेयिभिराम्नातम् गोतमो ह वै राहूगणः उभयेषां कुरुसृञ्जयानां पुरोहित आसीत् इति । यद् यदा आजयः संग्रामाः उदीरते उद्गच्छन्ति उत्पद्यन्ते तदानीं धनं धृष्णवे यो धृष्णुः धर्षयिता शत्रूणां जेता भवति तस्मै धीयते निधीयते । जयतो धनं भवतीत्यर्थः । हे इन्द्र ! त्वां तादृशेषु युद्धेषु प्रवृत्तेषु मदच्युता शत्रूणां मदस्य

गर्वस्य च्यावयितारौ हरी त्वदीयावश्वौ युंक्ष्व रथे त्वदीये योजय । योजयित्वा च कंचिद्राजानं तव परिचरणमकुर्वन्तं हनः हन्याः । कं चन त्वां परिचरन्तं वसौ धने दधः स्थापयसि अतो जयाजयौ त्वमेव कारयितासि । तस्मात् हे इंद्र ! अस्मान् अस्मदीयान् राज्ञः वसौ धने दधः स्थापय ॥ ६ ॥

रहूगणका पुत्र गोतम कुरु सृञ्जय राजाओंका पुरोहित हुआ था, उन राजाओंका शत्रुओंके साथ युद्ध होनेपर गोतम ऋषि ने इस सूक्त से इंद्र की स्तुति करके अपने यजमानोंके विजयकी प्रार्थना की थी, यही बात इस मंत्रमें है, कि—

(यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) आरम्भ होते हैं उस समय (धृष्णवे) जो शत्रुओंको जीतता है उसके अर्थ (धनम्) धन (धीयते) स्थापन किया जाता है अर्थात् जीतनेवालेको धन मिलता है (इन्द्र) हे इन्द्र ! ऐसे युद्धोंके चलने पर (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले (हरी) घोड़ोंको (युङ्क्ष्व) जोड़ो और (कम्) किसी अपनी आराधना न करनेवाले राजाको (हनः) मारो (कम्) किसी अपनी आराधना करनेवाले राजाको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो अर्थात् हार जीत तुम ही देते हो अतः हे इन्द्र ! हमारे राजाओंको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो ६

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ १ २ ३
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ७

अथ सप्तमी । हे इन्द्र ! त्वया दत्तान्यन्नानि अक्षन् यजमाना भुक्तवन्तः भुक्त्वा च अमीमदन्त हि तृप्ता आसन् खलु । प्रियाः स्वकीयाः तनूः अवाधूषत अकम्पयन् अतिशयितरसास्वादेन वक्तुमशक्नुवन्तः शरीराण्यकम्पयन् । तदनन्तरं स्वभानवः स्वायत्तदीप्तयः विप्राः मेधाविनः ऋत्विजः नविष्ठया अतिशयेन नूतनया मती मत्या स्तुत्या अस्तोषत अस्तुवन् अतः हे इंद्र ! ते त्वदीयौ हरी एतत्संज्ञावश्वौ नु क्षिप्रं योज रथे योजय ॥ ७ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (अक्षन्) यजमानोंने तुम्हारे दिये हुए अन्नोंको खाया और खाकर (हि) निश्चय (अमीमदन्त) तृप्त हुए (प्रियाः, अवाधूषत) परमोत्तम रसका स्वाद लेकर उसको कहनेमें असमर्थ होकर उन्होने आनंदके कारण अपने शिर हिलाये, तदनंतर (स्वभा-

नवः) तेजसे छिपते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् ऋत्विजोंने (नविष्ठया मतो) अतिनवीन स्तुतिसे (अस्तोषत) स्तुति करी, इसकारण (ते, हरी) अपने हरि नामक घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) रथमें जोडो ७

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३

कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास

२उ ३क २र ३ १ २

इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! गिरः अस्मदीयाः स्तुतीः उपो उपेत्र सुशृणुहि उपगम्य सम्यक् शृणु । अतथा इव पूर्वं यथाविधस्त्वं तद्विपरीता माभूः अस्मासु पूर्वं यथा अनुग्रहबुद्धियुक्तः तथाविध एव भवेत्यर्थः अपि च नोऽस्मान् सूनृतावतः प्रियसत्यात्मिकावाक् सूनृता तया स्तुतिरूपया वाचा युक्तान् कदाकरः करोषि । त्वमपि अर्थयासइत् अर्थयसे एव न तदास्मे । अस्माभिः प्रयुक्ताः स्तुतीस्त्वमपि स्वीकरोषीत्यर्थः । अतो हे इन्द्र ! ते हरी त्वदीयावश्वौ नु क्षिप्रं योज रथे योजय । कदा यदेति । कर इदर्थ इति कर आदर्थ इति च पाठः ॥ ८ ॥

(मघवन् इंद्र) हे धनवान् इंद्र ! (गिरः) हमारी स्तुतियोंको (उपो) समीप आकर (सुशृणुहि) सम्यक्प्रकारसे सुनो (अतथा इव) और तुम पहिले जैसे थे उसके विपरीत मत बनो अर्थात् पहिले जैसा अनुग्रह करते थे तैसा ही करते रहिये और (नः) हमें (सूनृतावतः) स्तुतिरूप प्यारी और सत्य वाणीसे युक्त (कदाकरः) कब करोगे, तुम (अर्थयासइत्) हमारी की हुई स्तुतियोंको स्वीकार करते ही हो, इसकारण (ते हरी) अपने घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) अपने रथमें जोडो ॥ ८॥

३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २

चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

१ २ ३ १ २

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति

३ १ २ ३ १ २

विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥